A Critical Study of Adhyatma Ramayan

अध्यात्मरामायण का आलोचनात्मक अध्ययन

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी0फिल उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

लेखिका —
मुन्नी शुक्ला एम0 ए0

निर्देशक —
डा0 सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव

संस्कृत विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

नवम्बर, 1970

निवेदन

संस्कृत का आदिकाव्य 'वाल्मीकिरामायण' अनेक शताब्दियों से विद्वज्जनों की प्रशंसा पाता रहा है। मर्यादा-पुरुषोतम भगवान् श्रीरामचन्द्र का व्यक्तित्व युग-युग से भारतीय जनता को कर्तव्य एवं धर्म के क्षेत्र में अनुप्राणित करता आ रहा है। प्रत्येक व्यक्ति, शिक्षित अथवा निरक्षर रामकथा से येनकेनप्रकारेण परिचित है।

शैशव में पूज्या माँ के मुख से रामायण के कथांशों को सुनकर मेरी रूचि राम-कथा की ओर जाग्रत हुई। संस्कृत-बोध न था, अतः हिन्दी 'रामचरित-मानस' का ही पारायण कर रामकथामृतपान से आनन्दित हुई।

बाद में छठी कक्षा से स्कूल में संस्कृत पढ़ने का सुयोग मिला। जब मैंने हाई-स्कूल पास किया तभी संस्कृत भाषा के अध्ययन की इच्छा ने अत्युत्कट रूप धारण कर लिया। ईश्वर की कृपा से ही मेरी संस्कृताध्ययन विषयक इच्छा पूरी हुई और मैंने संस्कृत विषय लेकर एम0 ए0 किया।

इसके बाद मुझे संस्कृत में शोध-कार्य करने की प्रेरणा अपने पूज्य गुरू डा0 धर्मराज सिंह से मिली। वे मेरे स्कूल कालेज या विश्वविद्यालय में से किसी एक भी कक्षा में गुरू नहीं रहे किन्तु जीवन में, बाल्यकाल से प्रत्येक सत्कार्य का पठ मुझे उन्होंने ही पढ़ाया है। उनका अपूर्वत्याग, संयमी-जीवन एवं अकारण करूणा ही सर्वदा मेरी प्रेरणा एवं आधार रही है। उनकी सद्भावना एवं आशीष् से ही मैं कुछ कर सकी। मैं विचारों के ऊहापोह में थी कि किस विषय पर कार्य करूंगी। राम-कथा के प्रति शैशव की रूचि, 'अमिट प्रेम' बन कर रह गई और मैंने रामकथा से सम्बन्धित कार्य करने का निश्चय किया।

भगवान् राम की ही कृपा से मुझे पूज्य गुरुवर डा० सुरेशचन्द्रजी श्रीवास्तव्य के निर्देशन में कार्य करने का परम सौभाग्य मिला। 'दर्शन-वर्ग' के अध्यापक होकर भी उन्होंने 'साहित्य-वर्ग' के विद्यार्थी को अपने निर्देशन में कार्य करने के लिए स्वीकृति दी यह उनकी उदारता एवं शिष्यजनों के प्रति स्नेह ही था। पूज्य गुरु जी के आदेश से ही मैंने अध्यात्मरामायण पर शोध-कार्य करने का निश्चय किया।

मेरे शोध का विषय 'ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ् अध्यात्मरामायण' निश्चित किया गया। जिस शीर्षक का हिन्दी रूपान्तर मैंने 'अध्यात्मरामायण का आलोचनात्मक अध्ययन' निश्चित किया।

शोध-काल में मुझे बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ा जो प्रायः आधिदैविक थी। कई बार निराशा के घोर अन्धकार में ऐसा लगा कि अब कार्य सम्पन्न करना कठिन ही नही दुःसाध्य है। ऐसी स्थिति में पूज्य डा० साहब के पितृ-तुल्य मधुर एवम् उज्ज्वल स्नेह ने निराशा के तिमिर में प्रकाश दिया। अनेक दुःखमय परिस्थितियों में उन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाया अत्युक्ति न होगी यदि कहूँ कि उनका व्यक्तित्व ही मेरे धैर्य एवं उत्साह का प्रेरक रहा। गुरुतर-कार्य को करने का निर्देश मुझे श्रद्धेय गुरुवर से सदा मिलता रहा। उनके सानुग्रह निर्देश के बिना मुझसे कुछ न हो पाता।

पूज्य अध्यक्ष महोदय डा० आद्याप्रसाद जी मिश्र के प्रति मैं अपना हार्दिक आदर करती हूँ जिनके विशद ज्ञान एवं अमृतमय स्वभाव से मेरी प्रकृति को प्रतिपग पर चेतावनी मिलती रही। विभाग के समस्त विद्यार्थीगणों के लिए पूज्य डा० साहब 'प्रकाश-पुंज की तरह है जिसके आलोक में हम विद्यार्थी जन अपना मार्गान्वेषण करने में सक्षम होते हैं। हृदय में साहित्यिक चेतना जाग्रत् करने वाले तथा जीवन में दार्शनिक दृष्टि प्रवर्तित करने वाले पूज्य प्रवर गुरुवर के आभार से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती। उनके लिये मेरे श्रद्धायुत कोटिशः नमन, भूतपूर्व अध्यक्षा पूज्या महोदया कुमारी सुश्री एम्० हिर्लेकर के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिनका ममतामय एवं दयालु स्वभाव जीवन में चिरस्मृति बन कर रहेगा।

इसके अतिरिक्त विभाग के पूज्य गुरुजन मेरी श्रद्धा एवं विनीत आत्म-निवेदन के अधिकारी हैं जिन्होंने मुझे इस कार्य के योग्य बनाया।

मैं उन समस्त विद्वज्जनों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिनकी रचनाओं से मैं अत्यन्त लाभान्वित हुई हूँ। अन्त में मैं अपने आत्मीयों के लिये किन शब्दों में अपना आदर और स्नेह एवं अपने मन की वह कोमल भावनाये व्यक्त करूं यह समझ नहीं पा रही हूँ, जिनकी अपरिमित चिन्ता एवम् अथक सहयोग से यह कार्य इस-स्थिति तक पहुंच सका है।

अन्त में श्री मेवालाल मिश्र के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ, जिनके प्रयास से थोड़े से समय में ही शोध-प्रबन्ध का टंकणकार्य सम्पन्न हो सका। टंकण यंत्र की बाध्यता से 'अनुस्वारस्ययियिपरसवर्णः' नियम की अवहेलना अनिच्छा से मुझे करनी पड़ी है। इसके लिए विज्ञसुधीजन क्षमा करेंगे।

— मुन्नी शुक्ला

प्राक्कथन

संस्कृत का सम्पन्न साहित्यिक-विलास एवं सांस्कृतिक-वैभव अनूठा है। 'राम-कथा' का अक्षय स्रोत 'वाल्मीकि-रामायण' संस्कृत का आदिकाव्य है। राम-कथा का गान सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि की वाणी से हुआ। वाल्मीकि भारतीय-साहित्य के वे महान् कवि हैं जिनका इस देश के साहित्य और संस्कृति पर सार्वभौम प्रभाव है। राम-कथा इस देश की ऐसी साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक निधि है जो युग-युग से यहां की जनता को प्रकाश देती आयी है और अनन्तकाल तक देती रहेगी।

राम-कथा के विकास, सम्वर्धन, परिवर्तन आदि में देश की अनेक ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियां और प्रवृतियां काम करती रही हैं। वाल्मीकि के बाद की इन्हीं प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के परिणामस्वरूप, राम-कथा विभिन्न रूपों में देखने को मिलती है। परिवर्तित राम-कथा पर आधारित अनेक ग्रन्थों का संस्कृत-साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अध्यातम-रामायण भी इस कोटि के ग्रन्थों में अन्यतम् है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में 'अध्यात्मरामायण' का विवेचनात्मक अध्ययन ही किया गया है। इस प्रबन्ध के माध्यम से मेरी रूचि अध्यात्मरामायण में वर्णित राम-कथा के स्वरूप का, उसके परिवर्तन एवं परिवर्धन की संभावित प्रेरणाओं एवं प्रयोजनों का तथा इस ग्रन्थ की साहित्यिक विशिष्टताओं और दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय पाना चाहती है।

अध्यात्मरामायण का कथानक या वर्ण्य-विषय वाल्मीकि-रामायण के समान ही है। किन्तु लगभग दो सहस्र वर्षों के अन्तराल ने वाल्मीकि की राम-कथा को बहुत कुछ अभिनव रूप प्रदान किया है। 'राम-कथा' राम के अवतारवाद की दिव्य आभा से आलोकित होकर प्रस्तुत हुई है। वाल्मीकि के

राम असीम ऐश्वर्य से विभूषित भले ही रहे किन्तु मानव मात्र थे किन्तु अध्यात्मरामायण में राम और सीता दिव्य अलौकिक परिवेश में प्रस्तुत हुए हैं। राम ब्रह्म हैं और सीता, ब्रह्म की माया, मूल प्रकृति हैं। ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें वर्णित 'राम' आध्यात्मिक राम हैं। अध्यात्मरामायण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है -- अधि आत्मनि इति अध्यात्मम्, अध्यात्मम् (च य :) राम: स अध्यात्मराम:, अध्यात्मरामस्य अयनम् गमनम गति: चरितम् इतियावत् तदधिकृत्य कृतं काव्यम् तथोक्तम अध्यात्म-रामायणम्। आध्यात्मिक राम के चरित्र का आधार लेकर विरचित काव्य हुआ 'अध्यात्मरामायण' ।

ग्रन्थकार ने स्थल-स्थल पर राम के पारमार्थिक स्वरूप के वर्णन की योजना का प्रसङ्ग उपस्थित किया है। कथाकार के द्वारा 'अध्यात्मतत्व' का विवेचन प्रधान रूप से किये जाने के कारण ही इसका अध्यात्मरामायण नाम अन्वर्थ है। आध्यात्मिक तत्व स्वयं भगवान् राम हैं। राम के ब्रह्मत्व - निरूपण का संरम्भ देखकर लगता है कि राम के ब्रह्म स्वरूप की अवतारणा करना ही उसका मुख्य उद्देश्य रहा है। इस ग्रन्थ में काव्य के माध्यम से गूढ़ दार्शनिक व्याख्या की सरस प्रस्तावना है।

अध्यात्मरामायण के पूर्ववर्ती वाल्मीकि के रामकाव्य में राम का चित्रण ईश्वर के अवतार के रूप में हुआ है।

वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड एवं उत्तर-काण्ड में रामावतार का उल्लेख हुआ है किन्तु ये दोनों काण्ड प्रक्षिप्त माने जाते हैं। लंकाकाण्ड का भी अवतार वाला अंश प्रक्षिप्त कहा जाता है। अत: इसमें वर्णित रामावतार का व्यापक प्रचार इन प्रक्षेपों में है। श्री बुल्के के अनुमान से प्रथम श0ई0पू0 में रामावतार की भावना का प्रचार हो गया था।[1] बौद्धों के पालि-साहित्य में बुद्ध को राम का अवतार मानने की कल्पना मिलती है।[2] रामायण और

---

1 राम-कथा -- श्री बुल्के, अनु0 27
2 वैष्णवधर्म -- परशुराम चतुर्वेदी, पृ0 65

महाभारत के रामावतार से सम्बन्धित प्रसङ्0गों के आधार पर कहा जा सकता है कि रामावतार का बीजारोपण ईसा की प्रथम या द्वितीय श0 पूर्व हो चुका था। संभवत: रामावतार की भावना के साथ ही राम-भक्ति का प्रादुर्भाव भी हुआ होगा।

अध्यात्मरामायण रामावतार और रामभक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। इसमें राम विष्णु के अवतार हैं। वे साक्षात् ब्रह्म हैं। रामकथा के माध्यम से दार्शनिक तत्वों ब्रह्म, माया, जीव, जगत् इत्यादि का विवेचन तथा इनके सम्बन्धों का निर्वचन सम्पूर्ण ग्रन्थ में हुआ है किन्तु दार्शनिक सिद्धान्तों का क्रम-बद्ध निरूपण नहीं हुआ है। कथा के प्रसङ्0गों की पृष्ठभूमि में पूरे ग्रन्थ में शङ्0कराचार्य के अद्वैत-वैदान्त के ही सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है।

शङ्0कराचार्य के निर्गुण, निराकार — ब्रह्म राम इस कथा के नायक है। इस निर्गुण, निराकार ने भक्तों के अनुग्रह के लिए सगुणा-साकार रूप धारण किया है। परमानन्दस्वरूप पर ब्रह्म ने दशरथ-पुत्र के रूप में अवतीर्ण होकर सारी मानव-लीला सम्पन्न की। प्रश्न उठता है कि क्या निर्गुण इस प्रकार की क्रिया कर सकता है जैसी राम ने मनुष्य रूप धारण कर की शंकर-पार्वती-संवाद में इसका समाधान जोरदार ढंग से किया गया है।

भक्ति और ज्ञान के विषय में अध्यात्मरामायण पर बहुत कुछ प्रभाव श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीता का है। अध्यात्मरामायण में निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की भक्तियों को प्रश्रय मिला है। किन्तु भक्ति-मार्ग में निर्गुण भक्ति को श्रेष्ठ कहा गया है। जो निर्गुण निराकार है, वही सगुण साकार रूप धारण करता है — यह कह कर जिस प्रकार ग्रन्थकार ने निर्गुण एवं सगुण में अविरोध प्रदर्शित किया है उसी प्रकार ज्ञान और भक्ति में भी पूर्ण सामंज्जस्य स्थापित किया है। भक्ति ज्ञान-मार्ग की विरोधिनी नहीं है प्रत्युत बुद्धि-नैर्मल्य-कारिणी होने के कारण उसकी सहायिका है। उसे ज्ञान-मार्ग की सीढ़ी कहा गया है। भक्तियोग का पर्यवसान ज्ञान-योग में होता है। कहा गया है — तावद्मामर्च्चयेद्देवं प्रतिमादौ स्वकर्मभि: यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत्।

यद्यपि दार्शनिकतत्त्वों का सुविस्तृत वर्णन हुआ है किन्तु ग्रन्थ का लक्ष्य दार्शनिक समस्याओं को उपपत्तियों से सिद्ध करना नहीं है प्रत्युत जन-साधारण में रामकथा के माध्यम से भक्तिभाव में भावित अद्वैत-वेदान्त के सिद्धान्तों का विवेचन एवं प्रतिपादन करना है। दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रति-पादन बिना हेतु प्रदर्शन के करने से ग्रन्थ में कोई न्यूनता नहीं आती। ग्रन्थ-कार का उद्देश्य दार्शनिक मतवादों की सिद्धि करना या विरोधी मतवादों का खण्डन करना नहीं है। वस्तुत: भक्ति और ज्ञान की विधाओं में भक्त-वत्सल राम के सर्वज्ञत्व, सर्वकारणत्व, अनिर्वचनीयत्व एवं सच्चिदानन्दत्व का प्रतिपादन करने में ही ग्रन्थकार का प्रारम्भ से संरम्भ रहा है। लेखक ने नित्यानन्दस्वरूप चिन्मय ब्रह्म को भक्त-जनों की अभीष्ट कार्य-सिद्धि-हेतु निराकार से नराकार का जामा पहनाया है। इस राम में निखिल भक्त-जन तथा योगि-जन रमण करते हैं। पर ब्रह्म ने सर्वलोकरंजक कमनीय राम-रूप भक्त दु:खनिवारण के लिये धारण किया है। वास्तव में वे अद्वय, अचिन्त्य पर ब्रह्म हैं। राम निर्गुण ब्रह्म है इसको बताने के लिए ग्रन्थकार प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सजग है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही—'रामंविद्धि पर ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्' की अविकल ध्वनि सुनायी पड़ती है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की भाँति 'रामजिज्ञासा' से ही ग्रन्थ का आरम्भ होता है। पार्वती की राम-विषयक संदेह ग्रन्थि का छेदन शङ्कर के द्वारा तात्त्विक विवेचन कराके, किया गया है।

राम के मानवीय कार्यों को देखकर कहीं अध्येता अथवा श्रोता राम को साधारण-मानव न समझ बैठें इस चिन्ता से ग्रन्थकार ने 'चक्रे विकारी-परिणामहीनो विचार्यमाणे न करोति किंचित्' का स्मरण स्थल-स्थल पर किसी-न किसी प्रकार करा ही दिया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अध्यात्मरामायण की राम-कथा और उसमें निहित कर्म, ज्ञान और भक्ति का सम्यक् विवेचन तथा वाल्मीकि के बाद की राम-कथा का रूप परिवर्तन क्यों और कैसे हुआ — इन सब बातों पर यत्किंचित प्रकाश डाला गया है।

अध्यात्मरामायण का कृतित्तिव एवं निर्माणकाल अभी तक विवादास्पद विषय बना हुआ था और बिना इस बात का निर्णय किये तद्विषयक शोध सारहीन और अधूरा ही रहेगा। अत: अध्यात्मरामायण की कथा की विवेचना के साथ-साथ इन समस्याओं को भी यावच्छक्य निर्णीत करने की चेष्टा की गई है। इन समस्त तथ्यों का सम्यक् आकलन करने की दृष्टि से प्रस्तुत प्रबन्ध पाँच-परिच्छेदों में विभाजित किया गया है।

1. अध्यात्मरामायण का कर्तृत्व एवं रचनाकाल
2. अध्यात्मरामायण की कथा और उसकी तुलनात्मक समीक्षा
3. अध्यात्मरामायण में भक्ति का निरूपण
4. अध्यात्मरामायण के दार्शनिक सिद्धान्तों का आकलन
5. अध्यात्मरामायण की साहित्यिक-समीक्षा

प्रथम परिच्छेद में अध्यात्मरामायण के रचयिता एवं रचनाकाल की समस्या पर विचार किया गया है। इसमें अध्यात्मरामायण को ब्रह्माण्ड-पुराण का एक अंश मानने की अन्ध परम्परा एवं अध्यात्मरामायण का कृतित्व वेदव्यास को सोचने का युक्तियों सहित खण्डन किया गया है। कुछ लोगों ने अध्यात्मरामायण का कर्ता वैष्णव आचार्य रामानन्द को माना है। उनका आधार अध्यात्मरामायण में शङ्कर एवं रामानुज प्रतिपादित मतों का पूर्ण सामंजस्य होना है किन्तु ग्रन्थ के तलस्पर्शी अनुशीलनकर ने पर ग्रंथ निर्भ्रान्त रूप से शङ्कर वेदान्त की सशक्त प्रतिध्वनि ही ठहरता है। इस ग्रन्थ पर विशिष्टाद्वैत दर्शन का प्रभावस्वीकार करना सत्य से कोसों दूर स्थित होना ही निश्चित होता है।

अत: इस ग्रन्थ का लेखक कोई शङ्कर वेदान्तानुयायी राम-भक्त ही लगता है। वैष्ण-आचार्य रामानन्द के द्वारा, जो विशिष्टाद्वैत के समर्थक थे, यह ग्रन्थ नहीं लिखा गया है।

द्वितीय परिच्छेद में अध्यात्मरामायण की कथा के विविध आयामों पर विचार किया गया है। कथानक में वाल्मीकिरामायण से साम्य के स्थलों के

उल्लेख के अतिरिक्त उससे भेद होने कारणों एवम् इनके कारणों के आधार-सूत्रों का भी अध्ययन प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। कथानक गत भेद की उद्-भावना की प्रेरणा क्या हो सकती है वह साहित्यिक-अभिरूचि या दार्शनिक जिज्ञासा की सिद्धि के उद्देश्य से प्रेरित है अथवा अन्य किसी ऐतिहासिक परम्परा का प्रतिफल है — इन प्रश्नों पर भी विचार किया गया है।

तृतीय परिच्छेद में भक्ति और विशेषकर राम-भक्ति के विकास का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भक्ति के प्रामाणिक ग्रन्थों का सम्यग् अध्ययन करके भक्ति की विकासात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। राम-भक्ति के विकास का अनुशीलन करने के लिए भक्ति के विविध रूपों का ऐतिहा-सिक क्रम भी वर्णित करने की चेष्टा की गई है। भक्ति का उद्भव कब और कैसे, कहाँ से हुआ राम की भक्ति का संभावित सूत्रपात — काल क्या है राम-भक्ति के विकास में पुराणों का क्या योगदान है आल्वार-भक्तों के गीतों में रामभक्ति का कौन सा रूप मिलता है रामभक्ति को शास्त्रीय रूप कब और कैसे प्राप्त हुआ तथा रामभक्ति, रामोपासना और रामपूजा का स्वरूप अध्यात्मरामायण में क्या है इन सब तथ्यों का विवेचन भक्ति से सम्बन्धित परिच्छेद में हुआ है।

चतुर्थ परिच्छेद में अध्यात्म-रामायण में सन्निविष्ट दार्शनिक तत्वों ब्रह्म, ईश्वर, जीव, जगत् आदि का विवेचन किया गया है। ये विवेचन पूरे ग्रन्थ में बिखरे पड़े हैं। कभी-कभी प्रासङ्0गक कथाओं के माध्यम से और कभी-कभी चरित्रों के पारस्परिक संवादों के माध्यम से हुए हैं। मंगलाचरण में ही राम के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ अपनी तत्व-मीमांसा विषयक मान्यताओं में शङ्0कर के अद्वैत से प्रभावित है। शङ्0कर के अद्वैत ब्रह्म ही इसमें वर्णित राम हैं। वे जीव-जगत् की जन्मस्थिति और लय के कारण हैं। वे शुद्ध चेतन और सर्वव्यापक हैं। समस्त जीव एवं समस्त जगत् राम की माया के कारण ही स्थित एवं नाना रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं। सकल सृष्टि, मूल-प्रकृति राम की माया अर्थात् इस ग्रन्थ की नायिका सीता के द्वारा सम्पादित कार्य है। जीव

की क्रियायें अविद्या के कारण हैं। अखण्ड निर्गुण तत्व राम हैं। अविद्या-जन्य अध्यास के कारण ही जीव सुखी और दु:खी प्रतीत होता है। अध्यास का रज्जु में सर्प भ्रम के समान परिहार होते ही माया अपने समस्त कार्यों सहित लुप्त हो जाती है। आत्मज्ञान के द्वारा ही इस भ्रम का परिहार होता है। जीवब्रह्मैक्य ही मोक्ष का उपाय है। ज्ञान ही मोक्ष का मार्ग है। इस मार्ग तक पहुंचने के लिए भक्ति साधन रूप में सहायिका है।

पंचम परिच्छेद में ग्रन्थ का काव्य-कला की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। काव्य शास्त्र के आधार पर अध्यात्मरामायण के कलापक्ष की समीक्षा की गई है। कुछ लोगों ने इस ग्रन्थ को दार्शनिक विवेचनों का आकलन मात्र कहा है और साहित्य की दृष्टि से इस ग्रन्थ का महत्व नहीं माना है। ऐसी मान्यता का आधार कदाचित् यह है कि राम तो निर्गुण और निराकार हैं। अत: लोकव्यवहार के कार्यों को उनके द्वारा किया हुआ नहीं माना जा सकता। गुण और कार्यों से हीन वस्तु में रसभिव्यक्ति कैसे हो सकती है ग्रन्थ में निरन्तर यह ज्ञान कराया जा रहा है कि राम के कार्य माया के हैं तो उन कार्यों की सत्य रूप में प्रतीत नहीं हो सकती और सत्य प्रतीति का अपलाप होते ही रसानुभूति समाप्त हो जाती है। इस आरोप का खण्डन यह है कि राम-निर्गुण ब्रह्म हैं — इस बात का ज्ञान होने के पहले तो उनके कार्यों में रसानुभूति होती है और पूर्णरूपेण होती है। अत: रसादि के परिपाक की दृष्टि से ग्रन्थ को साहित्यिक रचना समझा जा सकता है। अलङ्0कारों का भी उपयोग ग्रन्थ में हुआ है। अधिक अलङ्0कारों का प्रयोग ग्रन्थकार ने नहीं किया है। केवल चमत्कार ही साहित्यिक रचना नहीं होती है। क्योंकि मम्मट ने तो दोष-रहित गुणों के सहित, अनलङ्0कृती रचना को ही काव्य कहा है।

अध्यात्मरामायण में संक्षिप्त संवादात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। अनेक छन्दों का प्रयोग भी ग्रन्थ में हुआ है। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग अधिक मात्रा में है। जो संवादात्मक एवं विवेचनात्मक शैली के लिये उपयुक्त ही है।

अध्यात्मरामायण में वर्णित राम की स्तुतियों में सरस एवं कोमल पदावलियों का प्रयोग हुआ है। मधुर एवं साभिप्राय व्यंजनों का प्रयोग भी इनमें हुआ है। गुण और रीतियों का भी समीचीन सन्निवेश हुआ है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में प्रस्तुत प्रबन्ध में वाल्मीकि के ग्रन्थ के चरित्रों से अध्यात्मरामायण के चरित्रों में साम्य एवं वैषम्य पर सम्यक् रीतियों से विचार किया गया है। इसमें अध्यात्मरामायणकार की मौलिक अभिव्यक्ति तथा पात्रों में उसकी अभिव्यक्ति भी वर्णित की गयी है।

अनुक्रमणिका

प्रथम-परिच्छेद

'अध्यात्मरामायण का रचयिता और रचनाकाल'

मर्यादा-पुरूषोतम राम के चरित्र का गान करने वाले आदि कवि महर्षि वाल्मीकि हैं। आदि कवि की कृति युगों से कर्तव्य और धर्म के क्षेत्र में जन-मानस को अनुप्राणित करती रही है। वाल्मीकि-रामायण में वर्णित रामकथा का बहुत समय से अनेक रूपों में वर्णन होता रहा है। इसी मूल-स्रोत से राम-कथा की अन्य धारायें भी निकली हैं। इनमें नयी कल्पनाओं तथा नवीन उद्भावनाओं का भी समावेश हुआ है।

महर्षि वाल्मीकि ने मर्यादा-पुरूषोतम राम का क्षत्रिय राजा के रूप में वर्णन किया था। बाद में जब राम को विष्णु या नारायण का अवतार माना जाने लगा ‡ पुराणों में राम को विष्णु का सातवा अवतार कहा गया है‡, तब राम कथाओं में दिव्यतत्व का भी प्रभाव यत्र-तत्र सुस्फुट होने लगा। इस कोटि की रचनाओं में 'अध्यात्मरामायण' भी एक है। इसमें राम पर ब्रह्म माने गये हैं और सीता को मूलप्रकृति कहा गया है। इसमें अद्वैत-ज्ञान और राम भक्ति को मोक्ष का मार्ग बताया गया है। इस ग्रन्थ में वर्णित भगवान् राम के चरित्र में वह दिव्य आभा एवम् अलौकिक शक्ति विद्यमान है, जो पाप-पङ्0कनिमज्जित[1] हृदयों को भी पवित्र कर देने की सामर्थ्य रखती है। उन राम के नाम[2] में भी अप्रतिम शक्ति निहित है।

वाल्मीकि के ग्रन्थ की तरह इसमें भी सात काण्ड हैं और इन काण्डों केवेही नाम रखे गये हैं। कथा यद्यपि वाल्मीकि-रामायण की तरह है, किन्तु

---

1 अध्यात्मरामायण में वर्णित अहल्या तथा अन्य शापित राक्षसादि।
2 राम का उल्टा नाम जप कर ही रत्नाकर-सा दस्यु वाल्मीकि महर्षि बन गया।

कई स्थलों पर कुछ भेद हैं। इसका विवेचन प्रस्तुत प्रबन्ध में आगे किया जायेगा। कथा में कुछ नवीन प्रसङ्गों का प्रयोजन राम के पर-ब्रह्मत्व को सिद्ध करना, उनकी भक्ति का प्रतिपादन करना एवं दार्शनिक तत्वों का विवेचन करना है। जैसा कि ग्रन्थ के अध्ययन से स्पष्ट है कि अध्यात्मरामायण का योगदान राम-कथा के विकास में नहीं है, क्योंकि कथा तो अति संक्षेप में तथा संक्षिप्त सम्वादात्मक शैली में वर्णित है। लेखक का मुख्य उद्देश्य है - ज्ञान एवं भक्ति का विशद विवेचन करना एवम् उनके सम्बन्ध का निर्वचन करना।

ग्रन्थ में राम के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों का वर्णन अर्थात् निराकार एवं साकार दोनों पक्षों का अङ्कन किया गया है। लेखक ने ज्ञान एवं भक्ति तथा निर्गुण एवं सगुण में पूर्ण सामन्जस्य स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। ज्ञानमयी राम-भक्ति को ही मोक्ष का मार्ग बताया गया है। राम-कथा के माध्यम से सम्पूर्ण ग्रन्थ में मोक्ष साधना की साङ्गोपाङ्ग प्रस्तावना ही लेखक को अभीष्ट है। इस उद्देश्य में लेखक को कितनी सफलता प्राप्त हुई है, इसका विचार आगे किया जायेगा। इस अध्याय में तो इस ग्रन्थ के कर्तृत्व का निर्धारण ही प्रतिपाद्य विषय है।

प्रचलित धारणा के अनुसार अध्यात्मरामायण को 'ब्रह्माण्डपुराण' का एक अंश माना जाता है और इसके लेखक 'व्यास' माने गये हैं। किन्तु, आश्चर्य यह है कि 'ब्रह्माण्डपुराण' के किसी संस्करण में 'अध्यात्मरामायण' नाम के किसी ग्रन्थ का उल्लेख भी नहीं है। अध्यात्मरामायण के, ब्रह्माण्ड-पुराण का अंश होने की परम्परागत मान्यता को अन्धाधुन्ध स्वीकार अनेक विद्वानों ने किया है। इस बात को प्रमाणित करने वाले प्रमाणों के अभाव में भी उन्होंने कदाचित् परम्परा को ही प्रामाणिक मान लिया है। इन मान्यताओं की समीक्षा करनी अनिवार्य है।

।1। सेतु टीका की मान्यता :-

हिम्मतवर्मा-कृत, अध्यात्मरामायण की 'सेतु' नाम की टीका में यह उल्लेख है कि वेदव्यास ने 'नारद-ब्रह्म-सम्वाद' रूप में, ब्रह्माण्ड-पुराण में

अध्यात्मरामायण नाम की संहिता लिखी है।[1]

ǁ2ǁ गीता-प्रेस वाले संस्करण का मत :-

अध्यात्मरामायण के गीता-प्रेस, गोरखपुर वाले संस्करण की भूमिका में यह स्पष्ट उल्लेख है कि अध्यात्मरामायण ब्रह्माण्ड-पुराण में उत्तर-खण्ड के अन्तर्गत मानी जाती है।[1] सम्पादक महोदय ने भी अन्य विद्वानों की परम्परा का अनुसरण किया है। अध्यात्मरामायण के माहात्म्य के माहात्म्य सर्ग की पुष्पिका में भी यही बात लिखी गई है।[2]

ǁ3ǁ अन्य विद्वानों के मत :-

अध्यात्मरामायण के अंग्रेजी अनुवादकर्ता लाला बैजनाथ ने भी इसी धारणा का प्रकाशन अपने अनुवाद की भूमिका में किया है।[3] डा० राजपति दीक्षित ने भी अपने शोध-प्रबन्ध[4] में लिखा है - " कुछ प्रामाणिक रामायणों में आध्यात्मरामायण विशेष महत्वपूर्ण है। यह ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तर्गत है।" विदेशी विद्वान् डाउसन इत्यादि ने भी इसे ब्रह्माण्ड-पुराण के अन्तर्गत माना है।[5]

---

1 दयालुर्भगवान् साक्षाद्वेदव्यासोलोकानां स्फुटं बोधयितुं नारदब्रह्मसंवादरूपेण ब्रह्माण्डपुराणे अध्यात्मरामायणाख्य संहितां चक्रे।
— हिम्मतवर्मा कृत अध्यात्मरामायण की ' सेतु' नाम्नी टीका, पृ० ǁहस्तलिखितǁ

1 'यह आख्यान ब्राह्मण-पुराण के उत्तर-खण्ड के अन्तर्गत माना जाता है।'
— अध्यात्मरामायण ǁभूमिका, पृ० 6 गीताप्रेस, गोरखपुर प्रका०ǁ

2' इति श्री ब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे अध्यात्मरामायण माहात्म्यं सम्पूर्णम्,

4 डा० राजपति दीक्षित कृत ' तुलसीदास और उनका युग।'

5. ए क्लासिकल डिक्शनरी आफ हिन्दु माइथोलोजी - डाउसन पृ० २६

आफ्रेक्ट महोदय ने अपने कौटलागस् कैटलागोरम में लिखा है कि 'अध्यात्मरामायण' ब्रह्माण्डपुराण का एक भाग है।[1] इस प्रकार यह एक सामान्य धारणा है कि अध्यात्मरामायण ब्रह्माण्डपुराण का एक अंश है और इसके लेखक व्यास हैं।

किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं दिया है। संभवत: इन विद्वानों ने ब्रह्माण्डपुराण को देखने का प्रयास भी नहीं किया।

<u>ब्रह्माण्डपुराण सम्बन्धी मत का खण्डन</u> :-

'अध्यात्मरामायण' ब्रह्माण्डपुराण का एक अंश है या नहीं इस बात का निश्चय करने के लिए ब्रह्माण्डपुराण के समस्त संस्करणों को देखने पर यह पता चलता है कि इस पुराण में अध्यात्मरामायण का कहीं कोई उल्लेख भी नहीं है। इसके अंशरूप में उसकी सत्ता तो बहुत दूर की बात है।

(1) विनायकराव कारमलकर ने अपने शोध पत्र[2] में लिखा है कि उन्होंने ब्रह्माण्डपुराण की बहुत सी प्रकाशित प्रतियां देखीं किन्तु उनमें कोई भी अध्यात्मरामायण से युक्त नहीं है। वास्तव में अध्यात्मरामायण का 59 श्लोकों का माहात्म्य सर्ग ब्रह्माण्डपुराण में प्राप्य है।

विनायक राव जी के इस मत का, कि अध्यात्मरामायण का माहात्म्य सर्ग ब्रह्माण्डपुराण में मिलता है, खण्डन शास्त्री जी के शोध-पत्र द्वारा ही हो जाता है।

(2) श्री आर० एस० शास्त्री ने अपने शोध पत्र[3] में लिखा है कि अध्यात्मरामायण का कोई अंश ब्रह्माण्डपुराण में, जिनके परम्परागत लेखक व्यास हैं, नहीं मिलता। शास्त्री जी ने यह भी लिखा है कि अध्यात्मरामायण का माहात्म्य-सर्ग भी इसमें नहीं मिलता है, जिसे कि ब्रह्माण्डपुराण के उत्तर-खण्ड में प्राप्य बताया जाता है।

---

1 टी० आफ्रेक्ट कैटालागस कैटलागोरम, पृ० 520-2।

न तो अध्यात्मरामायण से युक्त इस पुराण की कोई हस्तलिखित प्रति ही मिलती है और न प्रकाशित प्रति में ही इसके अड्0ग के रूप में अध्यात्मरामायण है।

§3§ नारदीय पुराण के पूर्व-भाग में 62 से 109 अध्यायों में सभी पुराणों की विषयानुक्रमणिका प्रस्तुत की गई है, किन्तु इस अनुक्रमणिका के ब्रह्माण्ड पुराण सम्बन्धी भाग में ऐसा कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है जिसके आधार पर इस मान्यता की पुष्टि हो सके। इस साक्ष्य से यह शंका भी निर्मूल हो जाती है कि सम्भवत: ब्रह्माण्ड पुराण का कोई ऐसा संस्करण अध्यात्म-रामायण से युक्त रहा हो जो अब उपलब्ध नहीं होता।

§4§ ब्रह्माण्ड पुराण के विभाजन से भी इस समस्या पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ब्रह्माण्ड पुराण का विभाजन पूर्व-खण्ड, उत्तर खण्ड के रूप में नहीं हुआ है। बल्कि इसका विभाजन चार भागों में हुआ है। ये भाग इस प्रकार हैं — 1. प्रक्रियापाद, 2. अनुषड्0पाद, 3. उपोद्घातपाद, 4. उप-संहारपाद। अत: , इस विभाजन की दृष्टि से भी अध्यात्मरामायण को ब्रह्माण्ड के उत्तर खण्ड का अंश मानने की परम्परा सर्वथा निर्मूल सिद्ध होती है।

ब्रह्माण्ड पुराण के उपोद्घातपाद में रावण इत्यादि राक्षसों तथा बालि, सुग्रीव आदि वानरों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।[1] इसी पाद में सीता की उत्पत्ति का वर्णन तथा मिथिला राजवंश का वर्णन हुआ है।[2] इस बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि ब्रह्माण्ड पुराण में अध्यात्मरामायण का कथानक होता तो फिर इस पुराण में पुन: राम-कथा विषयक कथांशों का वर्णन करने की आवश्यकता न होती।

मैंने स्वयं ही ब्रह्माण्ड पुराण की प्रतियां देखीं, किन्तु किसी एक में भी अध्यात्मरामायण का कथानक अथवा उसका माहात्म्य सर्ग नहीं मिला।

कुछ अन्य विद्वानों का यह भी विचार है कि यह ग्रन्थ न तो व्यासकृत है एवं न तो ब्रह्माण्ड पुराण का कोई अंश।

---

1 ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय 7

2 ब्रह्माण्डपुराण उपोद्घातपाद, अ0 64

{1} स्वर्गीय पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र {मुरादाबाद} ने अपने' अष्टादशपुराणदर्पण' में अध्यात्मरामायण को उप-पुराण एवम् अन्य पुराणों की तुलना में नवीन रचना कहा है।[1] इससे इनका स्वारस्य इस ग्रन्थ को व्यास कर्तृक न मानने में ही सिद्ध होता है।

{2} डा० भण्डारकर ने भी मराठी सन्त 'एकनाथ' के साक्ष्य पर इसे एक आधुनिक रचना {1400-1600} माना है।[2] भण्डारकर के मत का आधार एक नाथ की कृति 'भावार्थ-रामायण' का एक पद है, जिसमें'अध्यात्म-रामायण' नाम की रचना के लिये 'आधुनिक निरूपण' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अध्यात्मरामायण न तो ब्रह्माण्डपुराण और न किसी अन्य पुराण का कोई खण्ड या भाग है, जिससे कि इसे व्यासकृत कहा जा सके और न ही यह किसी प्राचीन ऋषि या पुरातन कवि की रचना है। इतना निश्चित हो जाने पर कि यह ग्रन्थ पुराण का कोई अंश नहीं है, प्रत्युत किसी भक्त-दार्शनिक या भक्त कवि की स्वतंत्र रचना है, यह निर्णीत करने की समस्या उठती है कि इसके रचयिता का नाम क्या है उसका समय क्या है उसका स्थान क्या है

अध्यात्मरामायण के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह रचना अधिक प्राचीन न रही होगी। राम को ईश्वर रूप में या ईश्वरावतार रूप में माने जाने वाले युग के बाद ही इसकी रचना हुई होगी। इसमें वर्णित रामभक्ति और राम-पूजा की ओर लेखक का संरम्भ देखकर भी अनुमान किया जा सकता है कि यह रचना उस समय हुई होगी जब ' राम-पूजा' और'राम-भक्ति' का व्यापक प्रभाव भारतीय जनमानस पर था। लगता है कि अध्यात्म-रामायण की रचना राम-भक्तों के उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुई होगी जिस उद्देश्य की पूर्ति श्रीमद्भागवत के द्वारा कृष्ण-भक्तों की होती है।

'रामभक्ति' के विकास एवं प्रसार के देश एवं काल के सम्बन्ध में

---

1 वेंकटेश्वर प्रेस बाम्बे, संवत् 1962, पृ० 414

2

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि राम-भक्ति का विकास सर्वप्रथम दक्षिण भारत में ही हुआ। आल्वारों के भक्ति साहित्य में राम-भक्ति को भी प्रमुख प्रश्रय मिला है। कुलशेखर, शठकोप आदि की रचनाओं में राम-भक्ति का वर्णन हुआ है।

रामानन्द-सम्प्रदाय या रामावत-सम्प्रदाय में राम-पूजा का शास्त्रीय निरूपण किया गया है। राम के प्रति दास्य भक्ति का प्रतिपादन करने वाली कुछ वैष्णव संहितायें और उपनिषदें इस सम्प्रदाय में धर्म-ग्रन्थ के रूप में मानी जाती हैं। इनमें राम को पर ब्रह्म से अभिन्न माना गया है।[1] इस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य स्वामी रामानन्द जी ने सर्वप्रथम जनसाधरण में 'रामभक्ति का प्रचार किया था ।

अध्यात्मरामायण में भी राम परब्रह्म हैं और उनकी भक्ति सब भक्तियों में श्रेष्ठ है। यही मोक्ष का एक मात्र मार्ग है। अध्यात्मरामायण में 'राम-भक्ति' का विशद निरूपण एवम् उसका महत्व देखकर प्रतीत होता है कि ' राम-भक्ति' का मोक्ष प्रदायी रूप में प्रतिपादन इसका मुख्य लक्ष्य है।

अत: यह सम्भावना होती है कि 'राम-भक्ति' के व्यापक प्रभाव-काल में ही राम-भक्ति के प्रतिपादनार्थ तथा भक्ति एवं ज्ञान के समन्वयार्थ किसी राम-भक्त ने भी इसकी रचना की होगी किन्तु वह रामभक्त लेखक कौन इस सम्बन्ध में अभी तक कोई पूर्ण निर्णीत तथ्य सामने नहीं आ सका है। इस विषय में प्रमुख विद्वानों के जितने मत हैं, संक्षेप में उनका अभिप्राय क्रमश : यह है —

§1§ श्री आर0 एम0 शास्त्री जी का मत -

शास्त्री जी का मत है कि इस ग्रन्थ के रचयिता काशी के रामानन्द थे जो रामावत-सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे और भविष्य पुराण में संकेतित रामशर्मा से अभिन्न थे। यह रामानन्द मुख्यतया शङ्0करानुयायी थे। रामानुजीय भक्ति-मार्ग का समन्वय भी इन्होंने इस ग्रन्थ में किया है। ये कबीर के गुरू माने जाते है और इस प्रकार इनका समय 13 वीं श0 का उत्तरार्द्ध एवम् 14 वीं का पूर्वार्द्ध

---

1 रामतापनीयोपनिषद् इत्यादि।

माना जाना चाहिये।[1]

§2§ जे0 एन0 फर्कुहर ने दाक्षिणात्य रामानन्द को रामानन्द सम्प्रदाय का प्रवर्तक मानते हुये अपने लेख[2]
में उल्लेख किया है कि रामानन्द दक्षिण से वाल्मीकि-रामायण के साथ 'अध्यात्मरामायण' तथा 'अगस्त्य संहिता' को लाये थे। अध्यात्मरामायण के कर्तृत्व के विषय में इन्होंने कुछ नहीं कहा।

§3§ परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'वैष्णव धर्म' में लिखा है कि 'राम-भक्ति' के साहित्य में अध्यात्मरामायण को एक ऊंचा स्थान प्राप्त है, जो रामानन्द के रामावत-सम्प्रदाय की ही रचना जान पड़ती है।[3]

चतुर्वेदी जी ने भी अध्यात्मरामायण के कर्तृत्व के सम्बन्ध में निश्चित मत प्रस्तुत नहीं किया है, केवल संभावना प्रकट की है।

इन मतों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के कर्तृत्व के सम्बन्ध में विधिवत् विचार केवल शास्त्री जी ने किया है। चतुर्वेदी जी का मत सर्वथा अनिश्चयात्मक और पोषक-प्रमाणहीन है। फर्कुहर ने तो ग्रन्थ के कर्ता की समस्या का स्पर्श ही नहीं किया। अतएव अध्यात्मरामायण के रचयिता के सम्बन्ध में कुछ भी निर्णय देने के पूर्व शास्त्री जी के मत तथा उसके पोषक प्रमाणों की एक संक्षिप्त समीक्षा अनिवार्य प्रतीत होती है।

<u>शास्त्री जी के मत की समीक्षा</u> :-

श्री शास्त्री जी ने रामानन्द सम्प्रदाय के प्रवर्तक को ही इस ग्रन्थ का कर्ता माना है। शास्त्री जी ने अनुमान किया है कि शैव-धर्म का परित्याग कर वैष्णव धर्म अपना लेने के पश्चात् तथा अपने रामानन्दीय वैष्णव-सम्प्रदाय की

1

2

3 वैष्णव धर्म, परशुराम चतुर्वेदी

स्थापना के पूर्व काशी के रामानन्द ने अध्यात्मरामायण की रचना की। इसके लिये शास्त्री जी ने 'भविष्यपुराण' के प्रतिसर्गपर्व के कुछ स्थलों को प्रमाणरूप में उपन्यस्त किया है।

प्रथम तर्क :- शास्त्री जी ने प्रथम तर्क इस स्थापना की दृष्टि से, यह दिया है कि भविष्यपुराण में यह उद्धरण है कि किसी रामशर्मा ने अध्यात्मरामायण की रचना की और इसी रामशर्मा का परिचय वहां पर यह दिया गया है कि यह काशी के एक शिव-भक्त थे, जिन्हें भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर राम-लक्ष्मण का ध्यान और बलभद्र की पूजा वर के रूप में दी। भक्त रामानन्द हो गया और द्वादशवर्षीय कृष्णचैतन्य के पास जाकर उनके आदेश से अध्यात्म-रामायण की रचना की।[1]

दूसरा तर्क :- अध्यात्मरामायण के भक्तिपरक तथा सगुणनिष्ठ विचारों को देखकर, वैष्णव-आचार्य रामानन्द को, इस ग्रन्थ का कर्ता स्वीकार किया जा सकता है।

तीसरा तर्क :- विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय वाले इन रामानन्द का सम्बन्ध काशी से था और उन्होंने अपनी रामोपासना में शाङ्0कर-अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का समन्वय किया है।

चौथा तर्क :- भविष्य पुराण में आई हुई दो कथाओं में भी वैष्णव रामानन्द के शाङ्0कर - सिद्धान्त से प्रभावित होने की बात सिद्ध होती है।

पांचवां तर्क :- अध्यात्मरामायण में वर्णित भक्ति पर रामानुज का प्रभाव है।

छठवां तर्क :- अपने सम्प्रदाय में आध्यात्मिक ज्ञानी के साथ-साथ योग साधक के रूप में भी रामानन्द की प्रतिष्ठा है। अध्यात्मरामायण में भी योग का प्रभाव परिलक्षित होता है।

सातवां तर्क :- रामानन्द की दी हुई गुरू-परम्परा में कुछ नाम शाङ्0कर - मतानुयायियों की भांति 'आनन्दान्त' हैं तथा कुछ वहीं है जो अध्यात्मरामायण

---

1 भविष्यपुराण - चतुर्थ खण्ड, 19 अध्याय, श्लोक, 21, 22

की दी हुई गुरू-परम्परा में हैं।

<u>आठवां तर्क</u> :- अध्यात्मरामायण और रामतापनीय उपनिषद् के कुछ स्थलों में साम्य है। यह उपनिषद् रामानन्दीय वैष्णवों में विशेष रूप से पवित्र मानी जाती है।

<u>अन्त:साक्ष्य</u> - 1. यद्यपि अध्यात्मरामायण के कथानक का वर्णन शिव-पार्वती-सम्वाद रूप में हुआ है, किन्तु इसका लेखक कोई मानव होगा जिसका व्यक्तित्व कई स्थानों पर अभिव्यक्त हुआ है।

2. ग्रन्थ में रामतारक-मन्त्र, प्रेम-लक्षणा भक्ति को उत्पन्न करने वाली नवधा-भक्ति का निरूपण, सालिग्राम, अगस्त्य-संहिता, विशेष गुरू-भक्ति इत्यादि के साथ 'राघवानन्द' और 'रामानन्द' शब्दों का उल्लेख इस रचना को रामानन्द की कृति सिद्ध करता है।

3. अध्यात्मरामायण में रामानन्द शब्द विच्छेदयुक्त रूप में 80 स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है तथा विच्छेद रहित शब्द भी एक स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।[1] दूसरे अन्य ग्रन्थों में 'राम' और 'आनन्द' शब्द की समीपता इतने वृहत् पैमाने पर नहीं मिलती। इससे सिद्ध होता है कि यह स्वामी रामानन्द की ही कृति है।

4. मानस पर अध्यात्मरामायण का स्पष्ट प्रभाव इसे रामानन्द की रचना सिद्ध करता है। तुलसीदास रामानन्द सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे।

5. निर्गुण और सगुण का समन्वय भी इसे रामानन्द की कृति सिद्ध करता है। रामानन्द ने भी इन दोनों मार्गों का समर्थन किया था। उनके अनुयायियों में निर्गुण-मतावलम्बी अनुयायी कबीर थे और तुलसी सगुण उपासना के समर्थक थे।

6. अध्यात्मरामायण में 'दीनार' शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि ये रचना बहुत प्राचीन न होगी।

7. इस ग्रन्थ की सभी हस्तलिखित प्रतियां रामानन्द के समय से प्राचीन नहीं हैं। इसी प्रकार इसकी टीकायें प्राचीन नहीं हैं। कुछ तो बहुत

---

1 'रामानन्दे नियोजय'

हाल की हैं, जैसे - सेतु टीका 18 वीं शताब्दी में लिखी गई।

शास्त्री जी के इन तर्कों की समीक्षा करते समय सबसे पहले इस बात पर ध्यान जाता है कि उनकी मान्यता का आधार स्तम्भ भविष्य-पुराण की कतिपय उक्तियां हैं और उनके अन्य तर्क, वैष्णवाचार्य रामानन्द तथा भविष्य पुराण में निर्दिष्ट अध्यात्मरामायण के कर्ता रामशर्मा या रामानन्द की अभिन्नता को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुए हैं।

जहां तक भविष्य पुराण के निर्देश की बात है और उसको सिद्ध करने में शास्त्री जी के संरम्भ का प्रश्न है, बिना किसी पुष्ट विरोधी प्रमाण के सामने आये भविष्य पुराण के कथनों की प्रामाणिकता का खण्डन करने का कोई औचित्य नहीं जान पड़ता। परम्परा का खण्डन प्रबल विरोधी पक्ष के उपस्थित होने पर ही किया जा सकता है क्योंकि 'न ह्यमूला जनश्रुतिः' प्रायः जनश्रुति निर्मूल नहीं होती। किसी पुराण, स्मृति या किसी कवि की रचनाओं में अध्यात्मरामायण के कर्ता के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं प्राप्त होता और न किसी अन्य लेखक के द्वारा इस ग्रन्थ के लिखे जाने का ही कहीं निर्देश मिलता है।

ऐसी स्थिति में भविष्य-पुराण में निर्दिष्ट रामशर्मा या रामानन्द ने ही अध्यात्मरामायण की रचना की होगी - शास्त्री जी की इस मान्यता को सर्वथा स्वीकार किया जा सकता है। इस अंश तक उनसे मतभेद करने का कोई कारण या प्रयोजन हमें दृष्टिगोचर नहीं होता। किन्तु ये रामानन्द, वही हैं जिन्होंने वैष्णव-रामानन्दी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। और जो रामानुज के दार्शनिक विचारों के अनुयायी थे, रामानन्द के शिष्य थे, और जिन्होंने रामानन्द-सम्प्रदाय में समादृत 'वैष्णवमताब्जभास्कर' और रामार्चन-पद्धति' की रचना की है - इस विषय में शास्त्री जी की मान्यता से, मेरे लिये, सहमत होना कठिन है। प्रत्युत मेरी तो यह धारणा है कि अध्यात्म-रामायण के कर्ता ये रामानन्द रामानुज के मतावलम्बी अथवा रामावतसम्प्रदाय के प्रवर्तक कथमपि नहीं हो सकते। इस स्थापना के आधारस्वरूप अधोलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

1. अध्यात्मरामायण का कर्ता रामानुज के विचारों से बिल्कुल प्रभावित नहीं है और न उसके रामानुज मतानुयायी होने का कोई भी सङ्0केत

ही अध्यात्मरामायण में मिलता है। न तो अध्यात्मरामायण में कहीं रामानुजका नाम लिया गया है और न कहीं रामानुज के द्वारा अभिमत विशिष्टाद्वैत अर्थात् चिद्अचिद्विशिष्ट आत्म-तत्व का प्रतिपादन ही किया गया है। रामानुज के द्वारा माने गये वासुदेव तत्व या नारायण तत्व के व्यूहों का भी - जो कि रामानुज मत का एक मुख्य स्तम्भ है - सर्वथा अभाव है। अध्यात्मरामायण के राम सारी सृष्टि अनिर्वचनीय माया से करते हैं[1], सारा संसार माया का खेल सदसद्विलक्षणा माया का खेल है। इसमें राम विज्ञानैकविग्रह हैं[2], स्वगतभेदशून्य हैं[3], ज्ञानरूप हैं[4], तुरीय हैं[5], ये बङ जब रजो गुण युक्त होते हैं, तब ब्रह्मा कहे जाते हैं[6], जब सत्वाविष्ट होते हैं, तब विष्णु कहे जाते हैं और तमसगुण से युक्त होकर रूद्र बनते हैं। इस ग्रन्थ में माया, जल में फेन जाल के सदृश संसार रूपी कार्य का सृजन करती है। यह माया रामाधार और रामविषया है। इस ग्रन्थ में जीव, अविद्याकृत देहादि संघात में प्रतिबिम्बित चिछक्ति मात्र हैं[7], नित्य नहीं। राम का शरीर मायातनु होता है। वह स्वमायागुण विम्बित रूप है।[8] राम की भक्ति इस ग्रन्थ में अन्तिम काम्य पदार्थ नहीं है, भक्ति मुक्ति का साधन अवश्य है, किन्तु साक्षात् नहीं। प्रत्युत, भक्ति से विज्ञान और विज्ञान से मुक्ति मिलती है - इस परम्परा से इसके राम निर्गुण हैं। उनका सगुणत्व मायिक है। जीव सर्वगत एवं विभु परिमाण का है। मुक्ति दशा में वह राम के साथ 'सारूप्य' का लाभ करता है। संसार मिथ्यारोपित अध्यस्त और स्वप्नवत् है। आत्म-तत्व के अनुभव से अद्वय आनन्द एवं सत् तथा ज्ञानरूप आत्मा का ज्ञान हो

---

1 अ० रा० 1/3/22

2 अ० रा० 1/3/21

3 अ० रा० 6/6/30, 31

4 अ० रा० 1/3/21

5 अ० रा० 1/3/22

6 अ० रा० 1/5/50 तथा 3/8/52

7 अ० रा० 1/7/34

8 अ० रा० 1/5/50 तथा 7/2/69

जाने से जीव सद्यः मुक्त हो जाता है।[1] इसी उपदेश से तारा की जीवन्मुक्ति हुई है।[2] कौन अध्येता नहीं जानता कि इस ग्रन्थ में ज्ञान-कर्म-समुच्चय का खण्डन किया गया है।[3] इन सभी सिद्धान्तों का रामानुजीय-सिद्धान्तों से अत्यधिक विरोध है। इसमें पंन्चीकरण प्रक्रिया [4] स्वीकृत की गई है।

ऊपर बताये गये सिद्धान्तों में से एक-एक सिद्धान्त रामानुज को सर्वथा अनभीष्ट हैं। विशिष्टाद्वैत के सर्वथा विरोधी हैं। इसलिये इस ग्रन्थ में अथवा इस ग्रन्थ के कर्ता पर रामानुज के विशिष्टाद्वैत का प्रभाव स्वीकार करना सर्वथा भ्रान्त है। जहाँ तक निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप की मान्यता का प्रश्न है, यह भी रामानुज के मत का प्रभाव नहीं है। शङ्0कराचार्य स्वयं पर ब्रह्म के सगुण रूप को स्वीकार करते हैं।[5] उनका कहना केवल यह है कि चरमसत्ता के रूप में आत्म-तत्व सर्वथा निर्गुण है।

अतः अध्यात्मरामायण का कर्ता रामानन्दी या रामावत सम्प्रदाय के प्रवर्तक वैष्णव आचार्य रामानन्द न होकर कोई अन्य रामानन्द होंगे, जो शाङ्0करवेदान्तानुयायी होने के साथ ही राम-भक्त भी रहे होंगे। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि रामानन्द नाम के कौन से आचार्य या कवि थे, जिन्हें कि भविष्य पुराण के सङ्0केत के आधार पर तथा अध्यात्मरामायण में यत्र-तत्र प्रयुक्त 'रामानन्द' शब्द के विच्छिन्न एवम् अविच्छिन्न प्रयोग की व्यंजना के आधार पर अध्यात्मरामायण का लेखक माना जा सकता है।

जैसा कि पहले कह चुके हैं, टी0 आफ्रेक्ट महोदय ने कई रामानन्दों की सत्ता स्वीकार की है। बहुत सम्भव है, इस ग्रन्थ के लेखक इन्हीं में से

---

1 अ0 रा0 4/3/31

2 अ0 रा0 4/3/37-38

3 अ0 रा0 7/5/ रामगीता

4 अ0 रा0 3/3 सर्ग

5 यत्तूक्तं हिरण्यश्मश्रुत्वादिरूपश्रवणं परमेश्वरे नोपपद्यते इति, अत्र

कोई एक रामानन्द रहे होंगे, जो निश्चित ही वैष्णव-आचार्य रामानन्द से भिन्न रहे होंगे।

1. किसी रामानन्द को कबीर का गुरू भी कहा जाता है। कई शताब्दियों से यह मान्यता प्रचलित है और विद्वानों के द्वारा सिद्ध सत्य की भांति प्रकट की जाती है कि कबीर के गुरू वैष्णव आचार्य स्वामी रामानन्द हैं। हिन्दी-साहित्य के प्रमुख इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,[1] डा० राम कुमार वर्मा[2], डा० श्यामसुन्दर दास[3] कबीर के विशेषज्ञों [4] ने कबीर को रामानन्द स्वामी का शिष्य स्वीकार किया है। प्राय: किसी भी विद्वान ने कबीर और रामानन्द के इस सम्बन्ध में कोई अन्त: साक्ष्य नहीं प्रस्तुत किया है। परशुराम चतुर्वेदी ने उल्लेख किया है -'वास्तव में जब तक कोई पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, तब तक स्वामी रामानन्द, शेख तकी, पीताम्बर पीर व किसी भी एक व्यक्ति को हमें कबीर साहब का गुरू व पीर नहीं मान लेना चाहिये।' किन्तु स्वयं उन्होंने भी कोई ऐसा प्रमाण नहीं दिया जिससे कि यह सिद्ध किया जा सके कि यह परम्परा ठीक है। प्राय: अंग्रेजी विद्वानों के मतों के ही आधार पर हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने अपनी धारणाएं बनायी हैं।

स्वामी रामानन्द के ग्रन्थों तथा कबीर के ग्रन्थों का अध्ययन कर उनके विचारों की विवेचना करके ही रामानन्द तथा कबीर के सम्बन्ध को पुष्ट किया जा सकता है।

कबीर दास ने रामानन्द स्वामी की ही तरह राम को विश्व का स्रष्टा माना है। ‡क: आपुही कर्ताभिये: कर्तारा‡। बहुविधि बासन गढ़े कुंभारा‡[1] यह ब्रह्म ज्योतिस्वरूप है, दिव्यगुणों का समुद्र है।[2] भगवान् के पार्षदों तथा अर्चावतार आदि में कबीर का कोई विश्वास नहीं है। मूर्ति-पूजा की तो उन्होंने जी खोलकर निन्दा की।[3]

---

1 बीजक - सं० प्रेमचन्द, पृ० 40

2 पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान - कबीर ग्रन्थावली, पृ० 12

3 दुनियां ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजै जाको पीसो खाय।।

कबीरदास के राम वैष्णव रामानन्द के राम से अभिन्न नहीं थे। अवतारी राम में — दशरथी राम में - कबीरदास का विश्वास बहुत कम था। निर्गुण निरंजन राम में उनका विश्वास अधिक था। उन्होंने स्पष्ट कहा है तीनों लोक राम को दशरथ का पुत्र कहता है, किन्तु राम-नाम का मर्म ही दूसरा है।[1] कबीर का राम अगम्य है, अगोचर है, अन्त:करण में निवास करता है। इस अनुपम तत्व को न तो मुंह है, न माथा है, न तो उसका कोई रूप है। स्पष्ट है, राम निर्गुण हैं। डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, ' इसी त्रिगुणातीत द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभावविनिर्मुक्त, अलख, अगोचर, अगम्य, प्रेम-पारावार भगवान् को कबीरदास ने निर्गुण राम कहकर सम्बोधित किया है। वह समस्त ज्ञान-तत्वों से भिन्न है। फिर भी सर्वमय है, अनुभवैक-गम्य है - केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है। इसी भाव को बतलाने के लिए कबीरदास ने बार-बार गूँगे का गुड़ कहकर उसे याद किया है। वह किसी भी दार्शनिक वाद के मानदण्ड से परे है, अनुभूति का विषय है, सहज भाव से भावित है, यही कबीर का निर्गुण राम है।[2]

स्पष्ट ही, यह निर्गुण राम निश्चित रूप से रामानन्द के राम से भिन्न तत्व है।

जहां वैष्णव रामानन्द जीव और ईश्वर दोनों को ही अनादि तत्व मानते हुये जीव को ईश्वराधीन मानते हैं, कबीरदास ने इन दोनों तत्वों को अभिन्न बताया है। जिस प्रकार दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार ईश्वर भी कण-कण में दृष्यमान है।[3] जीव अज है।[4] यह नित्य है।[5] कबीर ने ईश्वर को जीव का पति कहा है,[6] पिता कहा

---

1 बीजक - सं0 प्रेमचन्द, पृ0 63
2 कबीर - डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ0 126, 27
3 बीजक - सं0 प्रेमचन्द, पृ0 130
4 जब हम रहलीं, रहल न कोई।
  हमरे नांह रहल सब कोई। - बीजक, सं0 प्रेमचन्द, पृ0 5
5 मैं न मरौ मरिबो संसारा
6 बीजक - सं0 प्रेमचन्द, पृ0 125

है।[1] राम में और अपने में अभिन्नता ॥आत्मा-आत्मीयत्व-सम्बन्ध॥ भी की है।[2] फिर भी यह कथापि नहीं कहा जा सकता कि कबीर ने जीवतत्व का विवेचन वैष्णव रामानन्द के अनुसार किया है। विशिष्टाद्वैत मत में जीव, चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का विशेषण है, उसका अंश है, उसका शेष है। कबीर का विवेचन बहुत कुछ अद्वैत से प्रभावित है। जीव-ब्रह्म के बीच में शरीर मात्र या मायामात्र का मिथ्या अस्तित्व प्रतीत होता है। तत्वत: दोनों एक हैं।[3] ऐसा जीव-तत्व का निरूपण कबीर ने किया है।

वैष्णव मान्यताओं का प्रभाव कौन कहे कोई साम्य भी कबीर की रचनाओं में नहीं दृष्टिगोचर होता।

कबीर ने प्रकृति तत्व का कोई विवेचन नहीं किया। वे मायावाद से प्रभावित थे। माया शब्द का प्रयोग उन्होने उसी अर्थ में किया जिस अर्थ में अद्वैत वेदान्त में माया शब्द का प्रयोग किया गया है। डा0 द्विवेदी ने लिखा है -'कबीरदास ने माया के सम्बन्ध में जो कुछ कहा वह वस्तुत: अद्वैत वेदान्त द्वारा निर्धारित अर्थ में ही।'[4]

रामानन्द सम्प्रदाय में मायावाद का विरोध किया जाता रहा। स्वयं रामानन्द ने माया शब्द का प्रयोग नहीं किया। इनके मत में जगत् को सत्य को माना गया है, प्रापन्चिक नहीं। आनन्दभाष्य में मायावाद का खण्डन किया गया है। अत: डा0 द्विवेदी का यह कथन कि कबीर ने भक्ति सिद्धान्त के साथ ही माया सम्बन्धी उपदेश भी रामानन्द आचार्य से ही पाया था - प्रामाणिक नहीं मालूम पड़ता।

---

1 बीजक - सं0 प्रेमचन्द, पृ0 207

2 वही, पृ0 104

3 वही, पृ0 103

4 कबीर - डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ0 109

मोक्ष के विषय में - साकेत-धाम में कबीर की आस्था नहीं थी।[1] उन्होंने लिखा है - हे राम ! मुझे तारकर कहां ले चलोगे वह बैकुण्ठ कैसा है वस्तुत: तारना व तरना तभी तक है, जब तक तत्व का ज्ञान नहीं हो जाता है।[2] उनके मत से साधु-सङ्गति ही बैकुण्ठ है। बैकुण्ठ की लालसा से मुक्ति नहीं मिल सकती।[3] कबीर सायुज्य-मुक्ति में विश्वास नहीं रखते। मुक्ति के विषय में उन्होंने कहा है -'सन्ध्या और गायत्री-जप करते करते बहुत लोग मर गये, पर मुक्ति किसी को न मिल सकी, जिसने कुल-मर्यादा को खो दिया वही विदेही हो गया।'[4]

इन तर्कों के आधार पर कबीर के गुरू, वैष्णव रामानन्द को नहीं स्वीकार किया जा सकता। इसके अतिरिक्त कबीर की रचनाओं में कहीं भी स्पष्ट रूप से रामानन्द का नाम नहीं आया है। जहां कहीं'रामानन्द' शब्द आया भी है,[5] वहां पर इस शब्द का तात्पर्य व्यक्ति परक न होकर आध्यात्मिकआनन्दपरक ही है।

अत: अन्त: साक्ष्य के आधार पर असंदिग्ध रूप से वैष्णव आचार्य को कबीर साहब का गुरू नहीं स्वीकार किया जा सकता। कबीर की गुरू के प्रति इन शब्दों में - ' गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पांय।
बलिहारी गुरू आपने, जे गोविन्द दियो बताय।।

श्रद्धा देखकर, जिसमें कि उन्होंने गुरू का स्थान ईश्वर से भी ऊंचा माना है, लगता है कि यदि वैष्णव आचार्य, रामानन्द उनके गुरू होते तो वे अपने ही गुरू के विचारों (मूर्ति-पूजा आदि) का इतना प्रबल एवं प्रकट विरोध कभी न करते। कम से कम इतने उन्मुक्त कण्ठ से और अपशब्दों सहित विरोध तो बिल्कुल न करते।

---

1 वहां न दोजग भिस्त मुकामा। इहां हि रामा इहां रहिमाना
2 कबीर ग्रन्थावली, पृ0 105
3 वही, पृ0 105
4 बीजक, सं0 प्रेमचन्द, पृ0 9
5 रामानन्द राम रसमाने, कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके

यदि कहा जाय कि रामानन्द की शिष्य-परम्परा में रहकर भी कबीर ने अपनी स्वतन्त्र मनोवृति के अनुसार ही ऐसा किया होगा, तो दार्शनिक जगत् में गुरू-शिष्यों के मुख्य मतों में इतना मतभेद नहीं हुआ करता। प्रक्रिया में मतभेद हो सकता है, चरम सता के स्वरूप के सम्बन्ध में नहीं।

कबीर को वैष्णव आचार्य का शिष्य बताने की भ्रान्ति अथवा परम्परा न तो बाह्य किसी साक्ष्य से पुष्ट होती है, और न अन्त: साक्ष्य ही इस बात को प्रमाणित या संकेतित करता है।

इस परम्परा का प्रसार करने में मौलिक योगदान भक्त नाभादास के भक्त माल का है। उसी के आधार पर सम्भवत: भविष्य पुराण में अनेक परम्परासम्बद्ध कथन रामानन्द के विषय में किये गये हैं।

कदाचित् कबीर बहुत प्रसिद्ध एवं जन-सामान्य में समादृत हुये थे, इसीलिये उनका सम्बन्ध अपने सम्प्रदाय से दिखाने के लिए रामानन्दी सम्प्रदाय वालों ने उनको वैष्णव आचार्य रामानन्द का शिष्य कहना प्रारम्भ किया होगा।

बहुत सम्भव है, इन लोगों को इस कार्य में सहायता मिली हो इस बात से कि कबीर के गुरू जो आचार्य थे वे भी काशी निवासी और कदाचित् 'रामानन्द' नामधारी ही थे।

2. वैष्णव मताब्जभास्कर और रामार्चन-पद्धति के रचयिता, वैष्ण-वाचार्य रामानन्द ने इन दोनों ग्रन्थों में ग्रन्थ-कर्ता की हैसियत से अपना नाम दिया है और अपने, रामानुज सहित, पूर्व-गुरूओं की वन्दना भी की है।[1] किन्तु अध्यात्मरामायण में इन दोनों बातों का सर्वथा अभाव है। न तो ग्रन्थकर्ता ने उसमें अपना नाम दिया है और न ही गुरूओं की वन्दना की है। इसलिये उक्त ग्रन्थों का कर्ता अध्यात्मरामायण का कर्ता नहीं हो सकता। मनुष्य में स्वभाव भेद और विश्वास भेद होना असम्भव है।

---

1 वैष्णव मताब्जभास्कर: - मङ्गलाचरण, श्लोक 3 से 15 तक (श्रीभगवद्रामानन्दस्वामिविरचित, प्रकाशक श्री 108 श्री स्वामी रामकृष्णानन्द जी महाराज, जयपुर, संवत् 1985 ।

3. भक्ति का जो स्वरूप अध्यात्मरामायण में वर्णित है, वह विशिष्टाद्वैत मत से सर्वथा भिन्न और शङ्0कराचार्य के मतवाद के अनुकूल तथा श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता की भक्ति के प्रभाव से ओत-प्रोत है। किन्तु रामानुजीय भक्ति और वैष्णव रामानन्दी भक्ति से इस भक्ति में आकाश-पाताल का अन्तर है। इस भक्ति का पर्यवसान निर्गुण-भक्ति में है, जबकि वैष्णवों की भक्ति सगुण रूप की है। यहाँ पर वैष्णवी-भक्ति और अध्यात्म-रामायण की भक्ति के विषय में कुछ विस्तृत भेदनिरूपण करना आवश्यक प्रतीत होता है।

क. वैष्णव भक्ति रामानुरागमयी है और अध्यात्मरामायण में भक्ति का स्वरूप स्वरूपानुसन्धानपरायण, निर्गुण ज्ञानपरक है।

ख. नवधा-भक्ति का जो निरूपण अध्यात्मरामायण में हुआ है, उससे सर्वथा भिन्न नवविधभक्तिस्वरूप वैष्णव आचार्यों ने बताया है।

ग. रामानुज ने भक्ति को अन्तिम तत्व माना है। उनकी दृष्टि में ज्ञान-क्रियादि भक्ति के सहायक रूप में ही है। किन्तु अध्यात्मरामायण में भक्ति को सर्वथा साधनरूप में स्वीकार किया गया है। मोक्ष-प्राप्ति का एक मात्र मार्ग आत्मज्ञान है।[1] भक्ति उसकी सहायिका है।[2] भक्ति से अन्त:करण निर्मल होता है और निर्मलान्त:करण से आत्मज्ञान प्राप्त होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। भक्ति से ही ज्ञान-विज्ञान की उत्पत्ति सम्भव है।[3]

घ. रामानुजीय भक्ति का लक्ष्य विश्व की परा-भक्ति है। भक्ति के द्वारा ही सायुज्यादि मुक्तियाँ प्राप्त होती है। अध्यात्मरामायण में भक्ति का लक्ष्य मोक्ष बताया गया है।[4]

ङ0. रामानुज सम्प्रदाय में भक्ति को साक्षात् सायुज्य-मोक्ष-दात्री कहा गया है। किन्तु, अध्यात्मरामायण में यह ज्ञान के माध्यम से मोक्ष देती

---

1 विद्या विमोक्षाय विभाति केवला। 7/5/20 अध्यात्मरामायण

2 अ0 रा0 6/3/31

3 अ0 रा0 2/1/29

4 अ0 रा0 3/10/44

है। वहाँ ज्ञान ही मोक्ष-साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। भक्ति उस ज्ञान की सहायिका एवं जननी मात्र है।[1]

च. रामानुज तथा रामानन्दी सम्प्रदाय में सगुण के प्रति घोर निष्ठा है। अध्यात्मरामायण के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अध्यात्मरामायण के लेखक की सम्पूर्ण आस्था निर्गुण के प्रति है। सगुण को किंचित् महत्व उसने दिया है। किन्तु सगुण रूप की उपासना उनके लिए है, जो निर्गुण उपासना में असमर्थ हैं।[2] अध्यात्मरामायण का अन्तिम काम्य निर्गुण निर्विशेष है। राम का सगुण मानव-रूप ग्रन्थ में अभिप्रेत है, किन्तु, वह मायामय है। राम सर्वथा निर्विकार, निरंजन एवं निर्गुण ब्रह्म हैं।[3]

छ. रामानुज के मत में सगुण ब्रह्म की उपास्य है। अध्यात्मरामायण में निर्गुण निराकार ही मुख्य रूप से उपास्य है।

अत:, रामानुजीय भक्ति का प्रभाव अध्यात्मरामायण पर होना सर्वथा अमान्य है।

4. अध्यात्मरामायणकार कभी भी विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय का - जो कि संसारसत्यत्व को मानने के कारण घोर द्वैतवादी है - मानने वाला नहीं हो सकता। और फिर उस सम्प्रदाय का प्रवर्तक हो, यह तो सर्वथा असम्भव है।

5. मुक्ति का स्वरूप भी अध्यात्मरामायण में बिल्कुल शङ्0कराभिमत है। रामानुजीय प्रभाव उस पर बिल्कुल नहीं है।

6. यदि भक्ति के सन्निवेश के कारण ही वैष्णव-भक्ति के प्रचारक की रचना मानना किसी को अभीष्ट हो तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि इस ग्रन्थ में उपदिष्ट भक्ति का स्वरूप इससे भिन्न और गीता तथा भागवत के प्रभाव-स्वरूप है। जिस प्रकार गीता तथा भागवत का प्रभाव दार्शनिक विवेचन आदि प्रसङ्0गों में है उसी प्रकार इस ग्रन्थ की भक्ति धारा का भी मूलस्रोत गीता और रामायण में ही देखने को मिल जाता है। उसके अनुसंधान के लिये अन्यत्र नहीं

---

1 अ0 रा0 6/8/67

2 अ0 रा0 6/8/43, 44

3 अ0 रा0 3/2/33

भटकना पड़ता।

7. स्वयं शङ्0कराचार्य के द्वारा भी भक्ति-मार्ग का उल्लेख या सन्निवेश किया गया है। अतः यह कहना - कि अद्वैतोन्मुख ग्रन्थ में भक्ति का समावेश किस प्रकार संभव हो सकता है अर्थात् चरम-तत्व को निर्गुण और निराकार मानने वालों में भक्ति कहाँ सम्भव उचित नहीं।

8. रामानन्दी-सम्प्रदाय में अध्यात्मरामायण नामक ग्रन्थ की पूजा मर्यादा तो दूर रही उसका जिक्र तक नहीं किया जाता। यह बात कैसे सम्भव हो सकती है कि सम्प्रदाय-प्रवर्तक के द्वारा रचित ग्रन्थ का उस सम्प्रदाय में कोई नाम ही न ले, या स्मरण ही न करे

अध्यात्मरामायण पूर्णरूप से शङ्0कराचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों से ओत-प्रोत है। अतः शाङ्0करवेदान्तानुसारी अध्यात्मरामायण जैसा प्रौढ़ ग्रन्थ लिखने के पश्चात् कोई व्यक्ति अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन कर विशिष्टाद्वैत को मानने लगे, कैसे हो सकता है

अतः अध्यात्मरामायण का लिखने वाला कोई अद्वैत मत का मानने वाला ही रहा होगा। सम्भवतः यह कबीर के गुरू रहे होंगे, जो कट्टर अद्वैती रहे होंगे और जिनकी पूर्ण आस्था निर्गुण तत्व के प्रति रही होगी। इनके विचार से राम निर्गुण निराकार थे, दशरथ का पुत्र होना तथा उनके अन्य सभी कार्य माया-मय थे। इन रामानन्द का सम्बन्ध भी काशी से अवश्य रहा होगा और इन्हीं रामानन्द नाम के व्यक्ति ने अध्यात्मरामायण जैसे अद्वैत परक ग्रन्थ की रचना की होगी।

वैष्णव आचार्य रामानन्द के हाथों में इस कृतित्व की जिम्मेदारी सौपना सर्वथा अनुचित है। क्योंकि एक ही व्यक्ति एक साथ दो विभिन्न दार्शनिक मतवादों का समर्थक नहीं हो सकता।

<u>अध्यात्मरामायण का सम्भावित देशकाल</u> :- ऐसी परिस्थिति में यह सम्भावना कर सकते हैं कि अध्यात्मरामायण के कर्ता सम्भवतः रामानन्द नाम के ही कोई व्यक्ति थे, जिनको कि निर्गुण रामवादी कबीर का गुरू माना जा सकता है और जो विशिष्टाद्वैतपंथी रामावत सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानन्द से सर्वथा भिन्न थे।

कबीर के गुरू का सम्बन्ध काशी से बताया जाता है। भविष्यपुराण में वर्णित रामशर्मा को भी, जिन्होंने भविष्यपुराण के आधार पर अध्यात्मरामायण की रचना की थी, काशी का ही बताया गया है। यह राशर्मा सम्भवत: काशी के रामानन्द ही रहे होंगे जो काशी के रामावतसम्प्रदायप्रवर्तक वैष्णवआचार्य रामानन्द से भिन्न थे। इस आधार पर प्रबल विरोधी तर्कों के अभाव में यह सम्भावना की जा सकती है कि अध्यात्मरामायणकार अद्वैतवेदान्ती रामानन्द भी काशी में रहते थे। कमस से कम इस ग्रन्थ के प्रणयन काल में तो उनका काशी निवास ही था।

<u>काल</u> - कबीर के स्थिति काल में ही रामानन्द का अस्तित्व भी रहा होगा। कबीर के जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

डा० श्यामसुन्दर दास 1455 या 56 में कबीर का आविर्भाव स्वीकार करते हैं। डा० बर्थ्वाल के अनुसार कबीर का जन्म सं० 1427 में हुआ होगा। अधिक पुष्ट प्रमाणों के अभाव में कबीर का जन्म सं० 1427 में माना जा सकता है। अत: उनके गुरू का समय भी यही अर्थात् 14 वीं श० रहा होगा।

<u>निष्कर्ष</u> - अध्यात्मरामायण के कर्ता रामानन्द नाम के कोई राम-भक्त थे जो पूर्णरूपेण शाङ्०कर अद्वैत के अनुयायी तथा पोषक थे। ये संभवत: कबीर के कुरू थे और इनका सम्बन्ध काशी से था। इनका स्थतिकाल 14 वीं श० का पूर्वार्द्ध था। इस प्रकार से अध्यात्मरामायण 14 वीं श० की रचना प्रतीत होती है। ग्रन्थ के अन्त:साक्ष्य में कोई भी ऐसा तथ्य सुलभ नहीं होता जिससे कि उक्त स्थापनाओं में कोई बाधा या विरोध प्राप्त हो। बाह्य साक्ष्य भी इस सम्बन्ध में या तो मौन हैं या इन स्थापनाओं के अविरोधी ही हैं। इस ग्रन्थ के रचना काल के सम्बन्ध में दिये गये शास्त्री जी के तर्कों का भी स्वारस्य इस ग्रन्थ को 14 वीं श० ई० को मानने में ही है।

द्वितीय-परिच्छेद

अध्यात्मरामायण में भक्ति :-

भक्ति शब्द भज् सेवायाम् धातु से क्तिन प्रत्यय लगाकर बना है। क्तिन प्रत्यय भाव अर्थ में होता है। इस प्रकार वैयाकरणों ने 'भजन' भक्ति: माना है। कृदन्तीय प्रत्ययार्थ परिवर्तनों के द्वारा 'भज्यते नया इति भक्ति:' अथवा ' भजन्तिअनया इति भक्ति:' आदि व्युत्पत्तियाँ भी उपस्थित की जा सकती हैं।

अत: भक्ति का अर्थ सेवा या भजन होता है। भक्ति एक भाव है। यह भाव न तो सेव्य के भय के कारण उत्पन्न होता है और न तो सेवक के स्वार्थ के कारण। इसमें केवल शुद्ध अनुराग तत्व की प्रेरणा होती है। भक्ति का शास्त्रीय विवेचन नारद-भक्ति-सूत्र तथा शाण्डित्यभक्तिसूत्र इत्यादि ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

यहाँ पर सर्वप्रथम, वैदिक साहित्य में भक्ति-तत्व का ज्ञान और उसका परिचय था या नहीं, विचारणीय है। भारतीय भक्ति मार्ग का सूत्रपात वैदिक साहित्य में हुआ। वैदिक साहित्य में भक्ति शब्द का प्रयोग चाहे न हुआ हो और भक्ति का विकसित रूप भले ही देखने को नमिले किन्तु भक्ति के बीज रूप का दर्शन स्तुति परक ऋचाओं में अवश्य होता है। याजुष मन्त्रों में भी श्रद्धापूर्वक यज्ञ या उपासना करने का विधान है। ऋग्वेद में 'श्रद्धे श्रद्धापयेह न:' {ऋग्वेद 10/151/5} के द्वारा श्रद्धा को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया गया है। आथर्वण संहिता में तो भक्ति शब्द का भी प्रयोग आया है।

'देव । संस्कान् । सहस्त्रापोषस्येशिषे । तस्य नो रास्व, तस्य नो धेहि, तस्य ते भक्तिवांस: स्याम' में[1] भक्ति शब्द का प्रयोग किया गया है।

उपनिषदों में भक्ति शब्द स्पष्टतया प्रयुक्त हुआ है। श्वेताश्वतर

---

1 अथर्ववेद 6/79/3

उपनिषद् में -' जिसकी ईश्वर में पराभक्ति है और ईश्वर में जैसी भक्ति है, वैसी ही गुरू में भी है, उसके सामने सब कुछ कहा जा सकता है।'[1] अन्य उपनिषदों में यद्यपि भक्ति शब्द का प्रयोग न मिले किन्तु भक्ति-भाव की उपस्थिति अवश्य दृष्टिगोचर होती है। केनोपनिषद् में उल्लेख है - 'वह ब्रह्म भजनीय होने के कारण उपासना करने के योग्य है।'[2]

भक्ति का मूलरूप यदि उपासना माना जाय तो उपनिषदों में उसका विधिवत् विनियोग हुआ है। इन उपासनाओं को विद्या भी कहा गया है। उपनिषदों में उपासनाओं पर असाधरण रूप से जोर दिया गया है। उनके अनुसार उपासनायें मुख्यतया दो प्रकार की होती हैं — 1. प्रतीकोपासना, 2. अहंग्रहोपासना। प्रतीकोपासना प्राय: विषयोन्मुख और अहंग्रहोपासना अन्तर्मुख होती है। प्रतीकोपासना के फिर चार भेद किये गये हैं — §1§ सम्पत् विषय में गुणों के आधानपूर्वक उपासना को सम्पत् उपासना कहते हैं। जैसे ससीम मनस् को असीम रूप में मानना। §2§ आरोप-विषय के अवयवों में भी अवयवी रूप से सम्बन्ध प्रदर्शित करना। जैसे उद्गीथोपासना में उद्गीथ, सामन् का अङ्ग है और सामन् ओंकार से सम्बिन्धित है। इसलिये उद्गीथ का भी ओंकार से साक्षात् सम्बन्ध माना गया है। §3§ संवर्ग - उपास्य विषय में किसी क्रिया का आधान करना संवर्ग है। जैसे - प्राणों में वायु की विनशकारिता आहित की जाती है। §4§ अध्यास - शास्त्रों से आज्ञप्त गुणों को विषय में आरोपित करना।

सारांशत: सम्पत् में, विषय में गुणों का आधान किया जाता है, आरोप में सम्बन्ध का आधान किया जाता है, संवर्ग में क्रिया और अध्यास

---

1 यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन:।।
— श्वेता0 उप0 6/13

2 तद्ववननित्यत्युपासितव्यम् । केन0 उप0 4/6

में शास्त्रोक्त लक्षणों का विषय में आधान किया जाता है। ये चारों उपासनायें प्रतीकोपासना कही जाती हैं। ये बहिर्मुखी या बाह्यविषया होती हैं।

अहंग्रहोपासना जो कि भक्तिभावना के निकटतम है, भी दो रूपों वाली मानी गई है।

1. सगुणोपासना,
2. निर्गुणोपासना।

जब आभ्यन्तर आत्म-तत्त्व में गुणों का सम्बन्ध स्वीकार करते हुए उपासना की जाती है तब उसे समगुणोपासना कहते हैं और जब आभ्यन्तर आत्मतत्त्व को सकल गुणोसम्बन्धों से रहित में मानकर सतामात्र रूप में स्वीकार किया जाता है और उपासना की जाती है उसे निर्गुणोपासना कहते हैं। जैसे बृहदारण्यकोपनिषद् में निर्गुणोपासना का यह संकेत है — 'आत्मेत्येवोपासीत'[1] इस प्रकार भक्ति का मूलरूप उपासना उपनिषदों में पूर्णरूप से मिलता है। 'सूर्य ही ब्रह्म है ऐसी उपासना करे।'[2] मोक्ष की प्राप्ति के लिये मैं आपकी शरण लेता हूँ।[3] इसमें भक्ति के साथ आत्मसमर्पण या शरणागति का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। भक्ति के आवान्तर भेदों का स्पष्ट विवेचन वेदों में नहीं हुआ है। किन्तु उसका बीज वहाँ वर्तमान है। अत: कहा जा सकता है कि भारतीय भक्ति-मार्ग का सूत्रपात वैदिक साहित्य में हुआ।

पुराणों में भी भक्ति-तत्त्व का अभाव नहीं है। शिपुराण में मुक्ति का मूल ज्ञान, ज्ञान का मूल भक्ति, भक्ति का मूल प्रेम, प्रेम का मूल शिव-गुण-श्रवण। गुण-श्रवण का मूल सत्सङ्ग तथा सत्सङ्ग का मूल सद्गुरू माना गया

---

1 बृ0 उ0 1/4/7

2 आदित्योब्रहेत्युपासीत् - छा0 उ0 प0 3/19/1

3 मुमुक्षवै शरणमहं प्रपद्ये - श्वे0 उप0 6/18

है।[1] देवता तथा भक्ति के सम्बन्ध में बीजाइ0कुर की उपमा प्रस्तुत की गई है। जिस प्रकार अइ0कुर से बीज तथा बीज से अइ0कुर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार देवता प्रसाद से भक्ति तथा भक्ति से देवता की प्रसन्नता प्राप्त होती है।[2] विष्णु पुराण में भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है — 'कर्मफल के वश होकर जिन जिन योनियों में परिभ्रमण करूं, उन सभी योनियों में तुम्हारे प्रति मेरी अचल भक्ति बनी रहे। अविवेकी मनुष्य की विषयों में जैसी आसक्ति रहती है। तुम्हारा स्मरण करते हुए तुम्हारे प्रति भी मेरी वैसी ही प्रीति रहे तथा वह मेरे हृदय से कभी विलग न हो।[3]

महाभारत में भक्त दश अश्वमेघ यज्ञों के करने वाले से भी श्रेष्ठ है क्योंकि अश्वमेघ करने वाले को तो 'क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति' के अनुसार पुन: संसार में आना है। परन्तु कृष्ण को प्रणाम करने वाला कभी जन्म नहीं लेता।[4]

महाभारत के पश्चात् गीता तो मानो भक्ति को प्रामाणिकता प्रदान करने का मुख्य साधन ही है। गीता में स्वयं भगवान् कहते हैं कि उनके भक्त का कभी विनाश नहीं होता।[5] जिसकी बुद्धि एवं मन भगवान्

---

1 ज्ञानंमूलं तथाध्यात्मं तस्य भक्ति: शिवस्य च।
भक्तेश्च प्रेम सम्प्रोक्तं प्रेम्णस्तु श्रवणं मतम्। 30 ।। 78
श्रवणस्य सतां सइ0ग: सइ0गस्य सद्गुरू: स्मृत:,
सम्पन्ने च तथा ज्ञाने मुक्तिर्भवति निश्चितम्। 31 । 78

2 शि0 पु0 1/14

3 नाथ योनि सहस्त्रेषु येषु-येषु ब्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वचलाभक्तिरच्युवास्तु सदात्वयि ।।
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरत: सा मे हृदयान्मापसर्पतु।। - विष्णु0 1/20/20

4 एको पि कृष्णस्य कृत: प्रणामो, दशाश्वमेधावभृथेन तुल्य:।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म, कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।। महा0 शान्ति0 47/92

5 क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति।। - गीता 9/31

में अर्पित हैं, वह उन्हें सबसे प्रिय है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति-तत्व का वेदों तथा वैदिक साहित्य में अभाव नहीं है। भक्ति शब्द तथा भक्ति-भावना का दर्शन वैदिक साहित्य में होता है।

भक्ति का शास्त्रीय विवेचन हमें शाण्डिल्य व नारद भक्ति सूत्र में उपलब्ध होता है। शाण्डिल्य नारद से पूर्ववर्ती थे। जिनका उल्लेख नारद ने अपने सूत्रों में किया है। नारद के मत से ईश्वर के प्रति अनुराग भक्ति है।[2] आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना भक्ति है।[3] शा० भ० में भक्ति को रस-रूपा माना है।[4] नारद के अनुसार भक्ति का स्वरूप प्रेमरूपा व अमृतरूपा है।[5] भक्ति के साधन के लिए उन्होंने विषय तथा सङ्गत्याग[6] अखण्डभजन,[7] भगवद्गुणश्रवण व कीर्तन तथा मुख्यतया महापुरूषों की कृपा व भगवत्कृपा के लेशमात्र से माना है।[8] उन महापुरूषों का दुर्लभ सङ्ग भी भगवत्कृपा से ही प्राप्त होता है। शाण्डिल्य ने अपने भक्ति सूत्र में तीन प्रकार की गौणी भक्ति स्वीकार की है।[9] गौणी भक्ति सत्व रजसतमस् अथवा

---

1 गीता 12/7 -तेषामहं
2 सा त्वस्मिन् परमप्रेमारूपा — ना०भ०सू० 2
3 आत्मरत्यविरोधेन शाण्डिल्य: — ना०भ०सू० 18
4 द्वेषप्रतिपक्ष भावाद्रसशब्दाच्चराग: — शा०भ०सू० 6
5 सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा ।। — ना०भ०सू० 2
  अमृत स्वरूपा च — ना०भ०सू० 3
6 तत्तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागाच्च — ना०भ०सू० 35
7 अव्यावृत भजनात् — ना०भ०सू० 36
8 मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा — ना०भ०सू० 38
9 गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभदाद्वा — ना०भ०सू० 56

आर्त जिज्ञासु अर्थार्थी भेद से तीन प्रकार की होती है। यह प्रेम-लक्षणा भक्ति एक होकर भी ग्यारह प्रकार की होती है।[1]

भारतीय दर्शन के इतिहास में भक्ति, कितने ही दार्शनिक विद्वानों के स्वतंत्र निरूपण का विषय हुई है। शंकराचार्य, केवलाद्वैती ज्ञानमार्गी थे। उनकी दृष्टि में केवल ब्रह्म ही सत्य है, तथा उसकी प्राप्ति ज्ञान के द्वारा हो सकती है। फिर भी उन्होंने भक्ति का महत्व स्वीकार किया है। इसका मूलाधार भी उनके पास निर्गुणोपासना रूपका था। ब्रह्मसूत्र भाष्य में भी 'महते हि फलाय ब्रह्मोपासनमिष्यते'[2] के द्वारा उन्होंने भक्ति (उपासना) को महान् फलदायिनी माना है। 'विवेकचूड़ामणि' में मोक्ष-प्राप्ति के साधनों में भक्ति ही सब से श्रेष्ठ कही गई है।[3] 'प्रबोध-सुधाकर' के अनुसार मलिन अन्त:करण को शुद्ध करने के लिये भक्ति परम आवश्यक है।[4] भक्ति के स्वरूप का निरूपण करते हुए शंकराचार्य ने कहा है - अपने वास्तविकस्वरूप का अनुसन्धान ही भक्ति है। कोई कोई आत्मतत्व के अनुसंधान को भक्ति कहते हैं।[5] प्रबोध सुधाकर में स्थूल और सूक्ष्म भेद से भक्ति दो प्रकार की कही गई है - प्रारम्भ में स्थूल तथा बाद में सूक्ष्म।[6] माध्व-मत के सार निरूपण में भक्ति को ही मुक्ति का साधन माना गया है।[7]

---

1 गुणमाहात्म्यासक्ति - एकधाप्येकादशधा भवति नाO भO सूO 82

2 ब्रO सूO शांO भाO 1/1/10/24

3 मोक्षकारणसामग्र्यांभक्तिरेव गरीयसी। विवेक चूड़ामणि 32

4 शुद्धयति हि नान्तरात्मा कृष्णापदाम्भोजभक्तिमृते
वसनमिव क्षारोदैर्भक्तया प्रक्षाल्यते चेत: । प्रबोध सुधाकर

5 स्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते ।। 32।।
स्वात्मतत्वानुसंधानं भक्तिरित्यपरे गजु: ।। 33 ।। विवेक चूड़ामणि

6 स्थूला सूक्ष्मायेति द्वेधा हरिभक्तिरूदिष्टा ।
प्रारम्भेस्थूलास्याद् सूक्ष्मा तस्या: सकाशाच्च।। प्रबोध सुधाकर

7 मुक्तिर्नैर्जसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनम्

निम्बार्क, दैन्यादि गुणों से युक्त प्रेमा-भक्ति के पोषक प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार भक्ति दो प्रकार की होती है।

1. साधनरूपा अपराभक्ति 2. उतमा पराभक्ति[1] ।

रामानुज, ज्ञान-कर्म्म द्वारा गृहीत भक्ति-योग का सिद्धान्त मानते हैं। उन्होंने गीता भाष्य में कहा है -

'पाण्डुतनययुद्धप्रोत्साहनव्याजेन परमपुरूषार्थलक्षण मोक्ष
साधनतयावेदान्तोदितं स्वविषयं ज्ञान कर्मानुगृहीतं भक्तियोगम्
अवतारयामास्'

मधु सूदन सरस्वती, भगवत् भाव से द्रवित होकर भगवान् के साथ चित के सविकल्प तदाकारभाव को भक्ति कहते हैं।[2] वे भक्ति को रस पूर्ण मानते हैं।[3] चैतन्य महाप्रभु समाधि सुख की ही भांति भक्ति सुख को भी स्वतंत्र पुरूषार्थ मानते हैं। परमानन्द रूप होने से भक्ति-योग पुरूषार्थ है।[4]

उनकी यही लालसा है कि जन्मजन्मान्तर तक भगवान की अहेतुकी भक्ति बनी रहे।[5] रूपगोस्वामी ने तो मुक्ति ही क्या को भी पिशाचिनी कहा है, इनकी स्थिति में भक्ति का अभ्युदय होना संभव नहीं।[6]

---

1 कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते। पयाभवेत् प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिह्यर्नन्याधिपते महात्मन:, सा चोतमा साधनरूपिकापरा।
- नि0 वेदान्त कामधेनु

2 द्रवीभावपूर्विका मनसों भगवदाकारता रूपा सविकल्पवृतिर्भक्ति:
- अद्वैतसिद्धि

3 परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रति: - भक्ति रसायन

4 भक्ति योग: पुरूषार्थ: परमानन्द रूपत्वात् इति निर्विवादम् -भक्तिरसामृत

5 न धनं न जनं न सुन्दरी कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि।। चैतन्य शिक्षाष्टक

6 भुक्तिर्मुक्ति स्पृहा कथमभ्युदयोभवेत् - भक्ति रसा0 सिन्धु पूर्व
लहरी, 2/11

बृहन्नारदीय में विष्णुभक्त चाण्डाल भी ब्राह्मण से श्रेष्ठ तथा भक्ति विहीन ब्राह्मण भी चाण्डालाधिक कहा गया है।[1] नारद पंाच-रात्र में भक्ति का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि अन्य के प्रति ममता त्याग कर भगवान् में जो प्रेम युक्त ममता होती है। उसको भीष्म प्रह्लाद, उद्धव और नारद ने भक्ति कहा है।[2]

'वैष्णवतंत्र' में शरणागति के षट् लक्षण बताये गये हैं।[3]

पंचदशीकार ने भक्त के लक्षण को बताते हुए लिखा है -

परव्यसिनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मणि
तदेवास्वादयत्यन्त: परसङ्ग रसायनम् ।।

इस प्रकार भक्ति तथा उसके स्वरूप का विवेचन करने के पश्चात् अब रामभक्ति पर किंचित प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

हम यह देख चुके हैं कि यह भक्ति-सम्प्रदाय रामभक्ति सम्प्रदाय के बहुत पहले विकसित हो चुका था। वेदों में इसका वीजारोपण हो चुका था और अन्य वैदिक साहित्य में भक्ति की मूलाधार उपासना बहुचर्चित रही। आगे चलकर भागवत -धर्म में वह पल्लवित हुई।[4] ब्राहमण तथा भागवत धर्म के समन्वय से वैष्णव-धर्म की उत्पत्ति संभव हो सकी। इसमें प्राचीन वैदिक देवता

---

1 चाण्डालो पि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तो द्विजाधिक: ।
विष्णुभक्तिविहीनश्च द्विजो पि श्वपचाधिक:।।

बृहन्नारदीय 32/39

2 अनन्यममता विष्णोममता भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदै:।।

-- नारद पंाचरात्र

3 आनुकूल्यस्य संकल्प: प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोपतृत्वेवरणं आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधाशरणागति:।। पंचदशी 9/8/4

4

विष्णु और भागवतों के देवता वासुदेव ही कृष्ण रूप में स्वीकृत हुये।[1] भक्ति भावना इन्हीं को आधार लेकर विकसित हुई। इन उपास्यदेव विष्णु या नारायण ने जगत्-रक्षा के लिए असाध्य कार्य किए उसी लक्ष्य से उनके अनेक बार अवतरित होने की कल्पना की गयी। सनकादि ऋषभदेव, कपिल, राम, परशुराम, व्यास आदि अवतार माने गये। मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह आदि विष्णु के अवतार क्रम में रखे गये। विष्णु के अन्य अवतार भी माने गये जिनमें से रामावतार भारतीय संस्कृति के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण है।

अब यह प्रश्न विचारणीय है कि राम-भक्ति सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ तथा उसका विकास किस प्रकार रामकथाओं के माध्यम से हुआ राम-कथा से सम्बन्धित ग्रन्थों का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि राम-चरित को आरम्भ से ही अद्वितीय लोकप्रियता प्राप्त हुई। राम के गुणों का गान प्रकट एवम् निर्भ्रान्त रूप से सर्व-प्रथम आदि कवि वाल्मीकि की वाणी से हुआ। क्रौंच-वेदना से पीड़ित आदि कवि का प्रथम मार्मिक उदगार ही शतशः सहस्त्रशः धराओं में फूटकर बहा और जन-मानस को पवित्र करता रहा। वाल्मीकि-रामायण में रामके चरित्र का वर्ण इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न, आदर्श गुणों से विभूषित, लोक-विश्रुत राजा के रूप में हुआ। राम ने स्वयं अपने को मनुष्य कहा है।[2] वाल्मीकि-रामायण में राम को आदर्श

1

2 आत्मपं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजं।
सो हं यश्च यतश्चाहं भगवान्सतद्ब्रबीतु मे ।।

– वा0 रा0 युद्धकाण्ड, 120/11

राजा के रूप में ही मुखयतया माना गया है। यद्यपि युद्धस्थलों पर ऐसे वर्णन हैं जिनमें राम को विष्णु के अवतार के रूप में भी कहा गया है किन्तु विद्वत्समुदाय इनमें से अधिकांशस्थलों को प्रक्षिप्त मानने के पक्ष में ही है। फिर भी जो चरित्र राम का इस ग्रन्थ में उभरता है वह मर्यादा पुरूषोतम नरवीर राम का ही उदारता है किसी पर ब्रह्म इत्यादि का नहीं। ब्रह्म ने वाल्मीकि से इसी वीर के चरित का वर्णन करने के लिए कहा था।[1] यहां आगे चल कर राम को मर्यादा-पुरूषोतम से विष्णु तथा पर ब्रह्म के पद पर प्रतिष्ठित किया गया और अवतार के रूप में उनकी पूजा हुई। रामभक्ति का विकास इसी अवतार-भावना से संबद्ध है। अत: अवतारवाद पर किंचित् विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

अवतारवाद की सामग्री प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में भी प्राप्य है। ब्राह्मण तथा अरण्यक साहित्य में इसका उल्लेख मिलता है। आरम्भ में प्रजापति का महत्व अधिक था। शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति के तीन अवतारों का उल्लेख हुआ है। मत्स्य[2], कूर्म[3] तथा वाराह[4], प्रजापति के वाराह अवतार की कथा तैतिरीय ब्राह्मण ‌।/।/3/6‌, तैतिरीय संहिता ‌7/।/5/।‌ तथा तैतिरीय आरण्यक ‌10/1/8‌ में है। तै0 आरण्यक ‌1/23/3‌ में प्रजापति के कूर्म अवतार का उल्लेख है। वामन और नृसिंह अवतार, विष्णु के अवतार का उल्लेख है। वामन और नृसिंह इसी रूप में माने गये। शतपथ ब्रह्मण ‌1/2/5/1‌ तैतिरीय ब्राह्मण ‌1/7/17‌ ऐतरेय ब्राह्मण ‌6/3/7‌ तथा तैति0 संहिता ‌2/1/3/1‌ में वामन अवतार का उल्लेख है। ऋक् ‌1/22‌ तथा शतपथ ‌1/2/5/1‌ को वामनावतार की कथा का मूलस्रोत माना जाता है।

---

1 वृत्तं कथय वीरस्य यथाते नारदाच्छ्रुतम्
   रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमत:। वा0रा0 बालकाण्ड 2/33

2 शतपथ ब्राह्मण 1/8/1/1

3 वही, 7/5/1/1

4 वही 14/1/2/11

तैति0 आर0 §परिशिष्ट 10/1/6§ में नृसिंह अवतार की कथा आई है।

पुराण युग में भी अवतारवाद का सुविस्तृत प्रचार हुआ। महाभारत में प्रजापति के मत्स्यअवतार §आर0 185/48§ की कथा मिलती है। नारायणीय उपाख्यान §महा0 12/326/75§ तथा हरिवंश-पुराण §1/41§ में विष्णु के वामन अवतार का उल्लेख है। नृसिंह-अवतार की कथा नारायणीय उपाख्यान §12/326/73 337/36§ तथा हरिवंश पुराण §1/41§ में मिलती है। परशु-राम के अवतार होने का उल्लेख नारायणीय उपाख्यान §12/326/77§ तथा हरिवंश-पुराण §1/41/112§ में मिलता है।

वैदिक विष्णु सौर देवता थे। यास्क[1] के अनुसार रश्मियों से व्याप्त होने के कारण सूर्य को विष्णु कहा जाता था। विष्णु का महत्व धीरे धीरे बढ़ा और पुराण युग तक वे देवताओं में अन्यतम माने जाने लगे। ब्रह्मस्वरूप नारायण के साथ इनको सम्बद्ध किया गया। परमात्मा का नारायण नाम सबसे पहले शतपथ ब्राह्मण में देखा जाता है। तैति0 आरण्यक में वह विष्णु के साथ सम्बद्ध मिलता है।[2] सर भंडारकर ने लिखा है कि नारायण विराट् पुरूष का ही दूसरा नाम था।[3] महाभारत तथा पुराणों में नारायण पूजा के पात्र थे। विष्णु पु0 §1/4/8§ में मत्स्य, कूर्म, वाराह का प्रजापति से सम्बन्ध माना गया है। नारायणीय उपाख्यान §12/326/72/12/337/36§

---

1 अथ् यद् विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशते वा व्यश्नोतेर्वा
- यास्क - निरुक्त, 12/19

2 पुराण विमर्श - बल्देव उपाध्याय, 1965

3

तथा हरिवंश-पुराण ॥1/41॥ में वाराह का सम्बन्ध विष्णु से माना गया है। मत्स्य, कूर्म और वाराह को पुराणों में विष्णु का अवतार कहा गया है। विष्णु-पुराण में नृसिंह ॥1/16॥ की कथा आई है। परशुराम को ॥1/9/143॥ विष्णु का अवतार कहा गया है।

प्राचीनतम साहित्य में अवतारवाद का स्वरूप तो मिलता है किन्तु इन अवतारों की पूजा का कहीं उल्लेख नहीं है।

कृष्णावतार की मान्यता के साथ अवतारवाद में भक्ति-तत्व का समावेश हुआ विद्वानों का मत है कि प्राचीन यज्ञ-प्रधान धार्मिक व्यवस्था की प्रतिक्रिया के रूप में बौद्ध-धर्म तथा भागवत-धर्म का उदय हुआ। भागवत-धर्म सात्वत जाति में प्रचलित था। कृष्ण भागवतों के इष्टदेव थे। इसमें वेद-निन्दा को स्थान नहीं मिला था। कालान्तर में ब्राह्मण धर्म और भागवत-धर्म को अपने निकट पाकर ब्राहमणों ने भागवतों के इष्ट देव कृष्ण को विष्णु का अवतार मान लिया और दोनों धर्मों का समन्वय हो गया। वासुदेव कृष्ण और विष्णु की अभिन्नता का क्रम संभवत: ई0 पू0 तीसरी श0 से आरम्भ हुआ।[1] विष्णु अवतारवाद की भावना के केन्द्र बन गये उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ हो गया। अन्य अवतार उनसे अभिन्न मान लिये गये।

अभी कहा जा चुका है कि कृष्णवतार के साथ अवतारवाद में भक्ति तत्व का समावेश हुआ। भक्ति का बीज रूप वेदों में है। वेदों में जो भक्ति बीज रूप में थी, उपासनाओं के रूप में उपलब्ध थी - वही भागवत - धर्म में पल्लवित और विकसित हुई। भक्ति के विकास का यह युग लगभग दो हजार वर्ष का माना गया है। ईसा से शताब्दियों पूर्व सात्वतों के उदय से लेकर ईसा की प्रथम सहस्त्राब्दी के पूर्वार्द्ध में गुप्त नरेशों के समय तक इस भक्ति का विकास होता रहा। मथुरा के निकटवर्ती प्रदेश में सात्वत जाति में भागवत धर्म का विकास हुआ। कृष्ण इसी जाति में उत्पन्न हुए थे। ये लोग बाद में

1

विदर्भ तथा दक्षिण की ओर गये, जिससे आगे चलकर दक्षिण में वैष्णव धर्म का विकास हुआ।

पतंजलि ने ‌‌॥वि0 पू0 द्वि0 शतक॥ शिवभागवत नामक शैव-धर्म का उल्लेख कियाहै। वैसे नगर ॥ई0 पू0 200॥ के शिलालेख से पता चलता है कि श्री शुंगवंशी राजा भागभद्र की राजसभा में यवन दूत हैलियोजेरस अपने को भागवत कहता था। उसने वासुदेव की प्रतिष्ठा में गरूड-स्तम्भ का निर्माण कराया था। गुप्त नरेशों के नाम के साथ परम-भागवत शब्द का प्रयोग होता था। भागवत धर्म, सात्वत-धर्म, एकान्तिम-धर्म तथा पा चरात्र-धर्म के नाम से भी जाना जाता है।

भागवत-धर्म तथा ब्राह्मण धर्म के समन्वय से वैष्णव-धर्म का विकास हुआ है। इसमें श्रीकृष्ण को विष्णु से अभिन्न माना गया और भक्ति भावना उन्हीं को लेकर विकसित हुई। अन्य अवतार भी कालान्तर में विष्णु से अभिन्न हो गये, जिनका विवेचन किया जा चुका है। इनमें दाशरथि राम सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे।[1] आदि-काव्य के प्रचार के साथ राम के चरित्र की लोक में प्रतिष्ठा हुई और राम, अवतार के रूप में पूज्य हुये। राम के अवतार की भावना कब उत्पन्न हुई इस विषय में समय निर्धारण करना कठिन है। अवतार की भावना के साथ ही रामभक्ति का प्रादुर्भाव भी माना जाना चाहिये। वाल्मीकि-रामायण में राम के अवतार होने का उल्लेख है। रावण-वध

1

के उपरान्त देवतागण अवतार के रूप में उनकी स्तुति करते हैं। वा० रा० में रामभक्ति का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है। उत्तरकाण्ड में स्वर्गारोहण के समय हनुमान् ने राम से तीन वर मांगे थे - राम चरणों में अनन्य भक्ति, रामकथा प्रचलित रहने तक आयु की प्राप्ति तथा नित्य राम-कथा श्रवण।[1] इसके अतिरिक्त विभीषण के शरण में जाने पर प्रपत्ति सम्बन्धी राम के वाक्य का सम्बन्ध भक्ति से है।[2] वा० रा० के साथ ही महाभारत में रामावतार का वर्णन कई स्थलों पर आया है।[3] वैदिक साहित्य में राम शब्द का उल्लेख तो मिलता है किन्तु वहाँ पर उनका अवतारवाला रूप नहीं मिलता। प्राचीनतम पुराणों में वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य, हरिवंश तथा भागवत पुराणों में अवतारों की तालिका में राम का नाम आया है।

पुराणों के अतिरिक्त-प्राचीन काव्यों में भी रामावतार का वर्णन हुआ है। भासकृत 'अभिषेक' नाटक में राम को विष्णु का और सीता को लक्ष्मी का अवतार कहा गया है।[4] प्र० श० ई० पू० में कालिदास ने रघुवंश में राम का वर्णन विष्णु तथा पर ब्रह्म के रूप में किया।[5] कालिदास के समय

---

1 स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयितिष्ठतु नित्यदा
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ।। वा० रा० उ० का० 40/15

2 सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीतियाचते
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।। वा०रा०यु० का० 18/33

3 अथ दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबल :
विष्णुर्मानुषरूपेण चचार बसुधामिमाम् ।। महा०आर०प० 3/147/22
वेदेरामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभे। पूना संस्करण
आदौ चान्ते च मध्ये च हरि: सर्वत्र गीयते।। महा० 18/ स्वा०प०
रामौ दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामिजगत्पति: ।। शा० प० 12/384

4 इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानींहिजनकात्मजाम्। सा भवंतमनुप्राप्ता मानुषींतनुमस्थि-
अथत्मनो शब्दगुणं गुणज्ञं पदं विमानेन विगाह्मान :। ता - अभि० ना०

5 रत्नाकरं वीक्ष्यमिय: स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच।।
- रघु० 13/1

में रामभक्ति का प्रचार हो चुका था। मेघदूत में रामगिरि के वर्णन से यह स्पष्ट है।[1] परवर्ती-काव्यों जैसे कुमारदास-कृत 'जानकी-हरण' तथा 'हनुमन्नाटक' में राम के अवतारी रूप का वर्णन है।

राम की पूजा के प्रचार के साथ राम-मन्दिरों तथा उनकी मूर्तियों के निर्माण का भी प्रचार हुआ। पाणिनि की अष्टाध्यायी में एक सूत्र में कुबेर, राम तथा केशव के विग्रह का वर्णन है।[2] पुराणों में राम-मूर्तियों का वर्णन मिलता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में (4 श0) में राम-मूर्तियों के निर्माण के नियम दिये गये हैं। वराहमिहिर (5 श0) में वृहत् संहिता में राम के विग्रह का वर्णन है। गुप्त काल में रामोपासना का व्यापक प्रचार था। गुप्तकालीन एक मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसमें शरण में आये विभीषण का राम राजतिलक कर रहे हैं।[3] देवगढ़ के विष्णु मन्दिर में रामायण के दृश्य अंकित किये गये हैं। इस मन्दिर का निर्माण काल ईसा की छठी श0 है। इलौरा के कैलाश मन्दिर के प्रांगण में पौराणिक दृश्यों में कुछ दृश्य रामायण के भी हैं।[4]

जोधपुर संग्रहालय में एक द्वार स्तम्भ है जिस पर धनुर्धर द्विभुज-राम की प्रतिमा है। केकीन्द में नीलकण्ठ महादेव का एक मन्दिर है। जिसका निर्माण 10 श0 माना गया है, इसमें छत के नीचे रामयण के दृश्य उत्कीर्ण हैं।[5]

---

1 यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु ।
वधै : पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखनासु।। पूर्व-मेघ ।2 ।।

2 प्रसादे धनपति रामकेशवानाम् - अष्टाध्यायी 2/2/34

3 दयाराम साहनी कैटलाग आफ दि म्युजियम आफ आर्कोलाजी एट सारनाथ, पृ0 320

4 भास्करनाथ मिश्र - देवगढ़ और इलोरा के रामायण सम्बन्धी दृश्य मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ0 806

5 रतचन्द्र अग्रवाल -'राजस्थान के शिलालेखों में रामकथा'

स्पष्ट है कि दीर्घकाल तक देश के विभिन्न भागों में रामोपासना का व्यापक प्रचार था।

रामभक्ति का विकास दक्षिण भारत में सबसे पहले मिलता है। ईसा की प्रथम सहस्त्राब्दी के उत्तरार्द्ध में दक्षिण में वैष्णव-सन्तों तथा वैष्णव-आचार्यों ने भक्ति का प्रचार किया। वैष्णव-सन्तों को आलवार अर्थात् भगवत भक्ति रस में लीन व्यक्ति कहा जाता है। इन आचार्यों ने भक्ति का शास्त्र-सम्मत रूप प्रस्तुत किया और भक्ति को शास्त्रीय पीठ पर प्रतिष्ठित किया।

तमिल आल्वारों की रचना में भगवान् विष्णु तथा उनके अवतारों के प्रति आत्मसमर्पण की भावना का निरूपण मिलता है।[1] इन आल्वर सन्तों का समय सामान्यत: पाँचवीं श0 से दसवीं श0 तक माना जाता है। तमिल भाषा में निबद्ध इनकी रचनाओं का संग्रह 'नालायिर प्रबन्धम्' ﴾चतु: सहस्र पद﴿ अत्यन्त पवित्र माना जाता है। आल्वारों के भक्ति साहित्य में विष्णु के अवतार कृष्ण को अधिक प्रमुखता दी गई है किन्तु रामभक्ति को स्थान न मिला हो ऐसा नहीं। कुलशेखर अल्वार की रचना में ﴾ 9 वीं श0 ई0﴿ रामभक्ति का विशद चित्रण हुआ है। कुलशेखर रामायण को वेदों के समान पवित्र मानते थे।[2] तथापि उनके अधिक पद कृष्णावतार-सम्बन्धी हैं, परन्तु उनकी रचना का पाँचवां अंश रामावतार से सम्बन्ध रखता है।[3] परवर्ती अल्वारों की रचनाओं में राम का उल्लेख निरन्तर मिलता है। पाँचवें आल्वार शठकोप ﴾नाम्मालवार﴿ की

1

2 वेदतुल्यमिदं साक्षात् श्री रामायणं परम।
काले संक्षिप्य तद्भवक्त्या भगवान् कुलशेखर:। प्रपन्नामृत, पृ0 278

3

'सहग्रगीति' में राम के प्रति आत्म समर्पण की भावना सबसे पहले व्यक्त हुई।[1] इन्होंने राममूर्ति की स्तुति भी की है।

आल्वार सन्तों के पश्चात् अन्य आचार्यों का आविर्भाव हुआ। इन्होंने विष्णु भक्ति का प्रचार किया। इन आचार्यों ने आल्वारों की भक्ति और वेदान्त-प्रतिपादित-ज्ञान का समन्वय किया है। तमिल-वेद और संस्कृत-वेद का अध्ययन कर उन्होंने दोनों में सामंजस्य स्थापित किया। ये लोग 'उभय' वेदान्ती कहे जाते थे। इन्होंने मायावाद का खण्डन कर भक्तिवाद की स्थापना की। इनमें आद्याचार्य रंगनाथ मुनि (844-924) हुए थे। इनके अनन्तर पुंडरीकाक्ष राममिश्र तथा यामुनाचार्य, वैष्णवआचार्य हुए। यामुनाचार्य के बाद आचार्य श्री रामानुजाचार्य हुए (1017-1137) उन्होंने विशिष्टाद्वैत मत प्रतिपादित किया। इनके इष्टदेव थे 'लक्ष्मीनारायण'। इसी परम्परा में आगे चलकर राघवानन्द और रामानन्द हुये। रामानुज ने स्वयं रामभक्ति के सम्बन्ध में विशेष नहीं लिखा है। किन्तु उन्होंने श्रीभाष्य में विभवों अर्थात् अवतारों में राम तथा कृष्ण का विशेष उल्लेख किया है।[2] रामानन्द-सम्प्रदाय में पहले पहल रामपूजा का शास्त्रीय निरूपण किया गया है तथा वैष्णव संहिताओं तथा कुछ विशिष्ट उपनिषदों को धर्मग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया गया है। इस सम्प्रदाय में राम के प्रति दास्य, भक्ति का प्रतिपादन करने वाली इन वैष्णव संहिताओं का उल्लेख मिलता है - अगस्त्य-संहिता, कलिराघव, वृहद्राघव और राघवीय-संहिता। रामभक्ति सम्बन्धी तीन उपनिषदें, रामपूर्वतापनीय रामोतरतापनीय तथा रामरहस्योपनिषद् हैं। इनमें राम को पर ब्रह्म से अभिन्न माना गया है। भगवद्गीता के अनुकरण पर रचित रामगीता ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। इनमें राम के पर ब्रह्मत्व का प्रतिपादन है। इन ग्रन्थों का अभी काल निर्धारण नहीं हुआ हैं।

इन्हीं रामानन्द के सम्प्रदाय में 'अध्यात्मरामायण' की रचना

---

1 दशरथस्य सुतं तं विना अन्यशरणवन्नास्मि-सहग्रगीति 3/6/8

2 श्री भाष्य, 2/2/42

को भी मानते हैं। श्री आर0 एम0 शास्त्री ने तो रामानन्द को ही इसका लेखक स्वीकार किया है।[1] इसमें राम को पर ब्रह्म माना गया है। इस ग्रन्थ का आविर्भाव सम्भवत: रामभक्ति और रामपूजा के प्रतिपादनार्थ हुआ। इसमें रामभक्ति तथा रामोपासना का प्रचुर निरूपण हुआ है। इसमें भक्ति के साथ दार्शनिक विचारों का भी विवेचन हुआ है।

1

इतनी महामहिमशालिनी भक्ति का स्वरूप अध्यात्मरामायण में क्या है उसे कैसे प्राप्त कियाजा सकता है उसके द्वारा कैसे परमात्मा की उपासना की जा सकती है ये बातें यहां विचारणीय हैं।

अध्यात्मरामायण में भक्ति का स्वरूप -

जहां तक भक्ति की परिभाषा का प्रश्न है। भक्तिशास्त्र के उपदेष्टाओं ने विविध प्रकार से इसकी परिभाषा की है। इसका विवेचन पहले किया जा चुका है। यहां स्पष्ट हो चुका है कि विविध परिभाषाओं से परिभाषित भक्ति, सर्वत्र परमात्मा में परानुरक्ति, इतररागविस्मरण तथा अनन्य प्रेमनिष्ठारूपिणी ही है। ईश्वर के प्रति अत्यधिक अनुरचित ही भक्ति है।[1] विष्णु-पुराण में भक्ति के लिये कहा गया है 'या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी 'रामानुज ने अपने गीता भाष्य में' परमात्मा के स्वरूप एवं गुणों के तैलधारावत अनवरत-चिन्तन को ही भक्ति बताया है।[2] भागवत में कहा गया है -

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मपि सर्व गुंहाशये
मनोगतिर विच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसो म्बुधौ
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।[3]

ठीक यही आशय अध्यात्मरामायण के इस श्लोक का भी है -

मद्गुणाश्रयणादेव मय्यनन्त गुणालये।
अविच्छिन्नामनोवृतिर्यथा गङ्गाम्बुनो म्बुधौ।।
तदेव भक्तियोगस्यं लक्षणं निर्गुणस्य हि।[4]

---

1 सा परानुरक्तिरीश्वरे - ना०भ०सू० । अ० 2 सं०

2 गीता भाष्य - 4/1/1

3 भागवत - 3/29/11-12

4 अध्यात्मरामायण 7/7/64, 65

अनन्त गुणाश्रय परात्मा राम के प्रति अविच्छिन्न मनोवृति ही भक्ति है। अध्यात्मरामायण में भक्ति को आसक्तिरूपा[1] और प्रेम-लक्षणा कहा गया है। प्रेम-लक्षणा भक्ति ही उतम भक्ति है।[2] साधन और साध्य भेद से यह दो प्रकार की है। परा-भक्ति ही साध्या-भक्ति है। यही प्रेम लक्षणा होती है। किसी भी कामना से रहित अर्थात् सकल-फलेच्छा शून्य जो भक्ति है वही पराभक्ति है। यह भक्ति अन्य किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये नहीं होती। मोक्ष की प्राप्ति स्वर्गादि का उपभोग, इसका उद्देश्य नहीं होता। भगवदनुराग ही इसमें मुख्य है। इसमें तत्व-ज्ञानी भक्त भक्ति की ही कामना करता है।[3] एकमात्र भगवान में ही अपनी चितवृतियों को लगाकर उनकी सेवा और अर्चना में लग जाना ही उनके भक्त को अभिप्रेत है। सच्चे भक्त मोक्ष का तिरस्कार का केवल भक्ति ही चाहते हैं।[4] अध्यात्मरामायण में इसको 'अहेतुक्यव्यवहिता' कहा गया है।[5] यह परा या साध्य भक्ति चार प्रकार की मुक्तियों को देने वाली हैं किन्तु भक्तजन भगवान् की सेवा के अतिरिक्त कुछ ग्रहण ही नहीं करते।[6] तपस्यारत सुतीक्ष्ण आदि भक्त वर प्राप्ति का अवसर अपने पर भी सांसारिक ऐश्वर्य अथवा मुक्ति की आकांक्षा न करके भक्ति की ही कामना करते हैं। जिसकी प्राप्ति के बाद भक्त न तो कुछ चाहता है, न शोक करता है, न किसी से द्वेष करता है, न किसी वस्तु में

---

1 त्वत्पादकमलेसक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे -

अ0 रा0 1/5/58

2 तस्माद्राघवसद्भक्तिस्त्वयि मे प्रेमलक्षणा 3/3/41

3 भक्तिमेवाभिवाछन्ति त्वद्भक्ता: सारवेदिन: अ0 रा0 1/2/20

4 अ0 रा0 7/7/66

5 अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिर्ममि जायते।। 7/7/65

6 सा मे सालोक्य सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा।
तदात्मपि न गृह्णन्ति भक्ता मत्सेवनं विना।।

7/7/66

आसक्त होता है और न सांसारिक भोगादि की प्राप्ति से उसे उत्साह होता है।[1] यही है पराभक्ति अर्थात् उत्कृष्टतर साध्य रूपा भक्ति। इसी को सिद्धावस्था[2] में 'परमप्रेमरूपा' और 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है। इसमें भक्त अपने समस्त कार्य ईश्वर को समर्पित कर देता है।

हम पहले बता आये हैं कि भक्ति शब्द भज् धातु से निष्पन्न है। 'भज्' सेवायाम् धातु क्तिन् प्रत्यय = भक्ति अर्थात् ईश्वर की पूजा।[3] अत: भजनम् अर्थात् अन्त:करण का भगवन्मयत्व ही भक्ति है। यदि 'भज्यते', 'सेव्यते नयेति करणे क्तिन् - इस व्युत्पत्ति के अनुसार अन्त:करण को भगवदाकर किया जाने की करणरूपा भक्ति यह अर्थ ग्रहण किया जाय तो भक्ति शब्द से भवत्यनुकूल क्रिया का बोध होता है। नारद पा च रात्र में वर्णन है -

सुरर्षे विहिता शास्त्रे हरिमुद्दिश्य या क्रिया।
सैव भक्तिरितिप्रोक्ता तथा भक्ति : परा भवेत् ।।

इसमें प्रभु की आराधना के उद्देश्य से निर्दिष्ट क्रिया को भक्ति माना गया है। इस प्रकार की भक्ति से श्रवणकीर्तनादि का बोध होता है और भक्ति स्वयं पुरूषार्थ न होकर परम्परया मुक्ति का साधन हो जाती है। यही साधनरूपा भक्ति है। इसी से परा भक्ति अथवा साध्यरूपा भक्ति प्राप्त होती है।

---

1 यत्प्राप्य न किंचिद्वा छति न शोचयति न द्वेष्टि च रमते नोत्साही भवति - नारद भ0 सू0 1/5

2 यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति - ना0भ0सू0 1/4

3

चित की शुद्धि और राग की स्वाभाविक प्राप्ति तक साधन रूप से भक्ति उपकर्मी है। आत्म-ज्ञान या ईश्वर ज्ञान अथवा परम तत्व की प्राप्ति के हेतु अपनाई गई भक्ति साधनरूपा भक्ति है।[1] अध्यात्मरामायण में एक स्थल पर वर्णन है - मुझ परमात्मदेव का अपने कर्मों द्वारा प्रतिमा आदि में तभी तक पूजन करना चाहिये जब तक कि समस्त प्रणियों में और अपने आप में मुझे स्थित न जाने।[2]

<u>भक्ति-साधना</u> -

भक्ति के अनेक साधनों का उल्लेख अध्यात्मरामायण में कई स्थलों पर किया गया है -

1. शबरी के प्रति राम द्वारा कथित नवधा-भक्ति।
2. वाल्मीकि द्वारा बतायी गयी भक्ति साधना।
3. राम द्वारा लक्ष्मण को बतायी गयी भक्ति साधना।

1. शबरी के प्रसङ्ग में राम ने स्वयं अपनी भक्ति के साधनों का वर्णन किया है। यह साधनरूपा भक्ति ही प्रेम-लक्षणा परा भक्ति का आविर्भाव करने वाली होती है।[3] अध्यात्म रामायण में इसे नवविधा माना गया है।[4] ये नव साधन क्रमशः सत्सङ्ग, कथा कीर्तन, गुणों की

1

2 तावन्मामर्चयेदेवं प्रतिमादौ स्वकर्मभिः।
यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत्।। अ0 रा0 7/7/76

3 अ0 रा0 3/10/27, 28

4 एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा।। 3/10/27, 28

चर्या, वाक्यों की व्याख्या करना, गुरू की सेवा, यम-नियमादि का पालन तथा पूजा में प्रेम, मन्त्र की साङ्0गोपाङ्0ग उपासना, भक्तों की उपासना, भक्तों की पूजा, समस्त प्राणियों में ईश्वर की भावना, शम-दम सम्पन्न होना एवं तत्व विचार हैं।[1] भक्ति के ये जो साधन अध्यात्मरामायण में भागवत की ही गयी भक्ति साधना के आधार पर माने गये प्रतीत होते हैं। यदि भागवत की नवलक्षणा[2] और अध्यात्मरामायण की नवविधा भक्ति के रूप की तुलना की जाय तो दोनों में पूर्ण साम्य नहीं दृष्टि -गोचर होता। भागवत में भक्ति के नौ लक्षण ये माने गये हैं - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन। अध्यात्मरामायण में स्थान स्थान पर बतायी गयी नवविधायें इनसे कुछ भिन्न हैं - यह तो स्पष्ट ही है।

1 <u>सत्संग</u> -

सन्त स्वयम् अनन्य भक्त होता है। इसीलिये सन्त-समागम से अन्य के हृदय में भी भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। अध्यात्मरामायण में कहा गया है कि संसार में साधु-सङ्0ग ही मोक्ष का कारण है।[3]

साधु पुरूष की संङ्0गति से ही ज्ञान का उदय तथा अन्त:करण की मलिनता का प्रक्षालन होता है। अध्यात्मरामायण के अन्तर्गत बालकाण्ड में परशुराम के मुख से इसी सत्सङ्0गति का विवेचन इस प्रकार कराया गया है। 'जब तक मनुष्य भगवान् राम के चरण कमलों के भक्तों का सङ्0ग सुख निरन्तर

---

1 अध्यात्मरामायण 3/10/22 से 27 तक

2 श्रवणंकीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

- भागवत

3 साधुसङ्0गतिरेवात्र मोक्षहेतुरूदाहृता ।

- अ0रा0 3/3/36

अनुभव नहीं करता तब तक संसार के दु:ख समूह से पार नहीं होता।[1] भक्तों की सङ्गति और तज्जन्य भक्ति से ही अविद्या काअन्धकार दूर होता है।

कथा काकीर्तन :-

भगवान् के जन्म तथा उनके क्रियाकलापों की कथा का कीर्तन भी भक्ति का साधन है। अध्यात्मरामायण में कई स्थलों पर विष्णु के मत्स्य वाराहादि अवतारों का वर्णन हुआ है।[2] विष्णु के इन अवतारों तथा कार्यों का वर्णन करने तथा उनके सुनने में अनुरक्ति भी भक्ति का एक अङ्ग है। अध्यात्मरामायण के अरण्य-काण्ड में लक्ष्मण से भक्ति के वास्तविक उपाय बताते हुए राम ने कहा है - मेरी कथा के सुनने, पढ़ने और उसकी व्याख्या सुनने में सदा प्रेम करना, मेरी पूजा में तत्पर रहना, मेरा नाम कीर्तन करना हीभक्ति का उपाय है। [3] राम के भक्त उनसे इन्हीं भक्ति साधनों की कामना करते हैं। किष्किन्धा-काण्ड में राम की स्तुति करते हुए सुग्रीव ने कहा है कि मेरे नेत्र सर्वदा आपकी मूर्ति, आपके भक्त और अपने गुरू का दर्शन करते रहें, कान निरन्तर आपकी लीलाओं का श्रवण करें और मेरे पैर सदा आपके मन्दिरों की यात्रा करते रहें। [4] इसी प्रकार युद्धकाण्ड में रावण को समझाते हुये कालनेमि के मुख से कराये गये उनके गुण-कीर्तन का महत्व स्पष्ट है। वह रावण से कहता है - नित्य अनन्य बुद्धि होकर राम-भक्तों के मुख

---

1 यावत्वत्पाद भक्तानां सङ्गसौख्यं न विन्दति।
तावत्संसारदु:खौघान्न निवर्तेन्नर: सदा।। अ०रा० 1/7/38

2 अ० रा० 6/10/46 से 52 तक

3 मत्कथाश्रवणपाठे व्याख्याने सर्वदा रति: ।
मत्पूजा परिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम् ।। अ० रा० 3/4/49

4 त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरूं चक्षु: पश्यत्वजस्त्रं स श्रृणोतु कर्ण: ।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्त्रं तव मन्दिराणि ।।
अ० रा० 4/1/92

से उनके पवित्र चरित्र सुनिये। ऐसा करने से आपके पूर्व-कृत महान् पाप भी एक क्षण में इस प्रकार नष्ट हो जायेंगे, जैसे अग्नि से रूई का ढेर भस्म हो जाता है।[1] इसी प्रकार अन्य प्रासङ्0गक कथाओं में तथा कहीं-कहीं स्वयं राम के मुख से अनेक स्थलों पर कथा-श्रवण के महात्म्य का वर्णन हुआ है। अध्यात्मरामायण में स्पष्ट ही कहा गया है कि अविनाशी ईश्वर ने कथा-श्रवण की सिद्धि के लिए ही अवतार लिया है।[2]

महावाक्यों की व्याख्या करना -

आत्मज्ञान के द्वारा ईश्वर के स्वरूप के अनुभव की योग्यता प्राप्त होती है। ईश्वर की पूजा, ईश्वर-ज्ञान की खोज के रूप में हो सकती है। आत्मज्ञान या तत्वज्ञान से अविद्या का विनाश होता है। यह आत्म-ज्ञान है, जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य-ज्ञान। अध्यात्मरामायण में साभास अहंरूप, अविच्छिन्न चेतन की 'तत्वमसि' आदि महाकाव्यों द्वारा पूर्ण चेतन के साथ एकता बतलाई गई है। जब महावाक्य के द्वारा जीवब्रह्मैक्य का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तो अविद्या अपने कार्यों सहित नष्ट हो जाती है। इस तत्व को समझकर भक्त ईश्वर को प्राप्त करने का पात्र या तद्रूप हो जाता है।[3] अन्य स्थलों पर भी इस प्रकार का वर्णन हुआ है।

---

1 श्रृणु वे चरितं तस्य भक्तैर्नित्यमनन्य धी:
एवं चेत्कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि।।
क्षर्णादेव विनश्यन्ति यथाग्नेस्तूलराशय:।। अ0 रा0 6/6/62

2 त्वामाहुरक्षरं जातं कथा श्रवणसिद्धये।
केचित्कोसलराजस्य तपस: फलसिद्धये ।। कि0 का0 6/74

3 ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनो:।
तदाविद्यास्वकार्येश्च नश्यत्येव न संशय:
एतद् विज्ञाय मदभक्तो मद्भावायोपपद्यते।।

- अ0 रा0 1/1/50 तथा 1/1/51

गुरू सेवा -

गुरू की सेवा को भी भगवत्-प्राप्ति का एक साधन माना गया है। सद्गुरू के मिलने से संशय और भ्रम-समूह मिट जाते हैं। शम-दमादि साधनों से सम्पन्न होकर आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरू की शरण में जाना चाहिए।[1] बिना गुरू की कृपा के सद्ज्ञान असम्भव है। गुरू-कृपा का वर्णन उपनिषदों ने भी किया है। शङ्0कराचार्य श्वेताश्वतर उपनिषद् के भाष्य में गुरू की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि - जैसे तपे हुए मस्तक वाले पुरूष के लिये जलाशय को खोजने के सिवाय और कोई उपाय नहीं, तथा भोजन के अतिरिक्त क्षुधातुर पुरूष की शान्ति का और कोई साधन नहीं है, उसी प्रकार गुरू कृपा के बिना ब्रह्म-विद्या का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है।[2] अध्यात्मरामायण में - गुरूदेव की निष्कपटहोकर भगवद्बुद्धि से सेवा करना - भक्ति का पांचवां साधन माना गया है।[3] बालकाण्ड में परशुराम ने कहा है कि 'जब साधक को आपके §राम के§ ज्ञान से सम्पन्न सद्गुरू की प्राप्ति होती है, तो उनसे महावाक्य का बोध पाकर वह मुक्त हो जाता है।[4] मनु, वचन और शरीर के द्वारा सच्ची भक्ति से सद्गुरू की सेवा के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है।[5] ज्ञान से तात्पर्य है ईश्वर ज्ञान और इससे जीवात्मपरमात्मक्य का बोध होता है - इसी से मुक्ति होती है।

गुणों की चर्चा -

सगुण ईश्वर के गुणों का संकीर्तन करना भी भक्ति का एक

---

1 समांश्रयेत्सद्गुरूमात्मलब्धये । अ0 रा0 7/5/7

2 वही, 7/5/7

3 आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्यामायया सदा।। अ0रा0 3/10/24

4 वाक्यज्ञानं गुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसाद्विमुच्यते ।। अ0 रा0 1/7/40

5 मनोवाक्काय सद्भक्त्यासद्गुरो : परिसेवनम् ।।

- अ0 रा0 3/4/32

साधन है।[1] अध्यात्मरामायण में नारद के द्वारा, ब्रह्मा[2] - द्वारा तथा अन्य[3] भक्तों द्वारा एवं देवताओं[4] के द्वारा की गई स्तुति में भगवान् राम के गुणों की चर्चा आई है।

पूजा में प्रेम

पवित्र भाव से यम नियमादि का पालन और पूजा में सदा प्रेम होना भक्ति का छठा साधन है। यम नियमादि द्वारा आन्तरिक शुद्धि होती है, जो आत्म-ज्ञान में सहायक है। अध्यात्मरामायण में ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वभाव की पवित्रता, सरलता, शरीर की बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि, मन-वाणी-शरीरादि का संयम, आत्मज्ञान का उद्योग एवं वेदान्तार्थ का विचार इत्यादि को साधन रूप से बताया गया है।[5] राम-पूजन का माहात्म्य सम्पूर्ण ग्रन्थ में है। राम-पूजा का विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा।

मन्त्र की उपासना :-

राम-मन्त्र की उपासना करना सातवां साधन है। राम-मन्त्र के उपासक अगस्त्य हैं, ऋषि सुतीक्ष्ण हैं। उपासना से ज्ञान दृष्टि प्राप्त होती है। स्वयं सुतीक्ष्ण राम से कहते हैं -'जानामि ज्ञान दृष्ट्याहं जातया त्वदुपासनात्' इत्यादि।

शबरी से भक्ति-पथ की चर्चा करते हुए राम ने कहा है कि — 'मेरे भक्तों की मुझसे अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियों में मेरी भावना

---

1 तृतीयं मद्गुणेरणम् । - अ० रा० 3/10/23

2 अ० रा० 6/8/34 से 40 तक

3 अ० रा० 6/13/10 से 23 तक

4 अ० रा० 6/13/24 से 32 तक, 6/15/51 से 68 तक

5 अ० रा० 3/4/31 से 33 तक

करना, बाह्य पदार्थों में वैराग्य करना और शम-दमादि सम्पन्न होना,[1] मेरी भक्ति का आठवां साधन है।[2] अध्यात्मरामायण में इन साधनों की चर्चा कई स्थानों पर हुई है। एक स्थल पर भक्त-महिमा बताये हुये नारद का कथन है - मैं आपके भक्तों के भक्तों के भी भक्तों का दास हूँ।[3] भगवान् का भक्त स्वयं तो मुक्ति पाता ही है, अपनी भक्ति से वह सम्पूर्ण संसार को पवित्र करता है। भक्त की सदैव यही कामना रहती है[4] — रामाभिराम सततं तव दासदास: भक्तों के लिए राम के भक्त तो स्वयं प्रभु राम से भी बढ़कर हैं। भगवान् राम स्वयं कहते हैं कि उनसे भी अधिक उनके भक्तों की पूजा करनी चाहिये।

तत्व का विचार करना भक्ति का नवां साधन है।[5] तत्वार्थ के विचार से अन्त:करण निर्मल होता है। निर्मलान्त:करण से ही भगवान् का स्वरूपानुभव संभव है। अत: ईश्वर एवम् आत्मतत्व का चिन्तन मुक्ति के लिये आवश्यक है। ज्ञानी भक्त भगवान् को बहुत प्रिय है। विवेक से ही अन्त:करण की निर्मलता एवं ज्ञान प्राप्ति संभव है।[6] ज्ञान-विज्ञान और

---

1 मद्भक्तेष्वधिकापूजा सर्वभूतेषु मन्मति: ।
वाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा ।।

- अ0 रा0 3/10/26

2 अ0 रा0 3/10/27

3 अहंत्वद्भक्तभक्तानांतद्भत्क्तानां चकिड्0कर:।

- अ0 रा0 2/1/ 30

4 अ0 रा0 3/2/27

5 अ0 रा0 3/10/27

6 अविद्या संसृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका।
तस्माद्यत्न: सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभि: ।

- अ0 रा0 2/4/34

वैराग्य सम्पन्न भक्ति ही मुक्ति देने वाली है।

इस नवधा प्रेमभक्ति के अतिरिक्त चरित्रों के मुख से राम-भक्ति के अन्य अनेक साधनों का वर्णन अध्यात्मरामायण में हुआ है। अयोध्या- काण्ड में भगवान् राम जब वाल्मीकि से मिलते हैं, उस समय महर्षि वाल्मीकि ने राम के 14 निवास स्थानों के बहाने 14 प्रकार की इन भक्ति साधनाओं का उल्लेख किया है।[1] ये हैं - शान्त होना, रागद्वेषादि को त्यागना, समदर्शिता, धर्माधर्म त्यागकर निरन्तर राम का भजन, राम-मन्त्र का जप करना भगवान् की शरणागति द्वन्द्वहीन और निस्पृह होना, अहंकार शून्य, शान्त-स्वभाव, मृतपिण्ड अथवा सुवर्णादि में अनासक्ति, एकमात्र ईश्वर में ही मन, बुद्ध्यादि का अर्पण प्रियाप्रिय में समभाव रखना, आत्म-तत्व का विचार कर सांसारिक धर्मों से मुक्त रहना और सम्पूर्ण-प्रपंच को मायामात्र समझना, समस्त अन्तःकरणों में चिद्घन सत्यस्वरूप परमेश्वर को देखना आदि भक्ति के साधन हैं। किन्तु वर्गीकरण करने पर ये सभी साधन ऊपर कहे गये नवों विधाओं के अन्तर्गत आ जाते हैं।

अरण्यकाण्ड के चतुर्थ सर्ग में राम ने लक्ष्मण से अपनी भक्ति के वास्तविक उपाय इस प्रकार बताये हैं[2] — भक्त का सङ्ग करना, निरन्तर राम की और उनके भक्तों की सेवा करना, एकादशी आदि का व्रत करना, राम के पर्व दिनों का मनाना, भगवत् कथा के सुनने, पढ़ने और उसकी व्याख्या करने में सदा प्रेम करना, पूजा में तत्पर रहना और नाम संकीर्तन करना।

---

1 शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टृणां च जन्तुषु ।
त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं ते धिमन्दिरम् ।। -अ० रा० 2/6/54 तथा
2/6/55 से 63 तक

2 मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम्।
एकादश्युपवासादि मम पर्वानुमोदनम् ।। अ० रा० 3/4/48

मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः ।
मत्पूजापरिनिष्ठा च ममनामानुकीर्तनम् ।।

- अ० रा० 3/4/49

इन साधनों से सतत् आराधना के द्वारा अव्यभिचारिणी परा-भक्ति अवश्य उत्पन्न हो जाती है।[1] ग्रन्थ में नाम की महिमा बहुत अधिक बताई गई है। अध्यात्मरामायण में वाल्मीकि के प्रसङ्ग की सृष्टि केवल नाम-माहात्म्य के लिये ही हुई है। जिसमें राम का उल्टा नाम जपने से ही रत्नाकर जैसा दस्यु वाल्मीकि सा ब्रह्मर्षि बन जाता है।[2] कलियुग में तो मुक्ति-प्राप्ति का एकमात्र साधन नाम-जप ही है।

निर्गुण एवं सगुण-भक्ति -

अध्यात्मरामायण में आत्म-तत्व के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का बराबर विवेचन हुआ है। देखना यह है कि क्या निर्गुण और सगुण एक ही हैं जो ब्रह्म निरवच्छिन्न निराकार है, वह सगुण और सदेह कैसे हो सकता है इसके लिये उत्तर प्रस्तुत किया गया है कि वास्तव में जो निर्गुण तत्व हैं, वहीं उपाधि से युक्त होकर सगुण और साकार प्रतीत होता है। उसमे नाना रूप धारण करने की क्षमता है। राम वास्तव में तो अचिन्त्य और निरूपाधिक ब्रह्म हैं, किन्तु माया-विलास से ही उन्होंने सुन्दर राम-रूप धारण किया है।[3] कौशल्या के गर्भ से जन्म लेने वाला ईश्वर, निर्गुण ब्रह्म ही है।[4] जो निर्गुण और निराकार है, वही अपने भक्तों के लिए अवतार लेता है। ब्रह्म का माया से शबलित रूप में सगुणभावापन्नत्व ही उसका ईश्वर

---

1 एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी। अ० रा० 3/4/50

2 अ० रा० 2/6/85-86

3 मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत।
भक्तानां भजनार्थाय रावणस्य बधाय च ।।

अ० रा० 2/5/28

4 अ० रा० 1/3/20 से 23 तक

भाव है। निर्गुण ब्रह्म में सगुण भाव माया शक्ति द्वारा उत्पन्न होता है। यही मायाशक्त्युपहित सगुण ब्रह्म शाङ्0कर वेदान्त में भी ईश्वर कहा गया है।[1] अत: स्वरूप से ईश्वर वस्तुत: निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म ही है। व्यवहारावस्था में वही मायाशक्ति से उपहित होकर सविशेष एवं सगुण बन जाता है। निर्गुण एवं सगुण भेद से ब्रह्म की दो विभिन्न सतायें हैं — कथमपि नहीं समझना चाहिये।[2] वस्तुत: परमात्मा एक है और निर्गुण है। किन्तु, उपासनादि के लिए उसका सगुण रूप या सविशेष रूप शास्त्रों में बताया गया है। यह सगुणत्व मायिक ही है अध्यात्मरामायण में स्वयंप्रभा ने राम की स्तुति करते हुये उनके निर्गुण और सगुण रूप की चर्चा की है।[3] राम गुणों से परे हैं — वे अपने ही आत्मस्वरूप में रमण करने वाले हैं। यहाँ निर्गुण में ही सगुण का पर्यवसान हुआ है। राम स्वरूप से तो निर्गुण है किन्तु आरोपवशात् सगुण दीख पड़ते हैं। एक और तो राम विश्व के कर्ता, पालक और संहारक हैं।[4] और दूसरी और इन्द्रियातीत, सतामात्र और ज्ञानस्वरूप हैं,[5] अकर्ता एवं अजन्मा भी हैं।[6] ईश्वर का सगुण रूप उसके निर्गुण रूप से भिन्न नहीं है। ईश्वर के सगुण रूप, निर्गुण पारमार्थिक रूप की माया में

---

1 स्यात्परमेश्वरस्यापीच्छावशान्मायामयंरूपं सधिकानुग्रहणार्थम्।

- शांकरभाष्य 1/1/20

2 अतश्चनभिन्नाकारयोगोब्रह्मण: र्शास्त्रीय इति शम्पतेवक्तुभेदस्योपासकार्थतादभेदेतात्पयर्ति। -शांकरभाष्य 3/2/12

3 अध्यात्मरामायण 4/6/69

4 त्वमेवमायया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च ।
सत्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्यएवामल: सदा ।।

- अ0 रा0 1/3/22

5 वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्धयादीनामतीन्द्रियम् ।
त्वां वेदवादिन : सतामात्रं ज्ञानेकविग्रहम् ।।

- अ0 रा0 1/3/21

छायामात्र है। किन्तु, सगुण के उपासक उसके निर्गुण रूप को नहीं प्राप्त कर पाते। अध्यात्मरामायण में परम तत्व के पारमार्थिक निर्गुण और मायिक सगुण दोनों रूपों का वर्णन है।

निर्गुण और सगुण पक्ष से उसको प्राप्त करने के दो मार्ग हैं - प्रथम को ज्ञान-मार्ग से और द्वितीय को भक्ति मार्ग से प्राप्त किया जा सकता है। गीता में कहा है -'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् किन्तु, सगुण को भक्ति मार्ग से प्राप्त करने में ही कृतकृत्यता नहीं हो जाती। प्रत्युत इस सगुण प्राप्ति का विनियोग भी तत्व ज्ञान से होता है।

निर्गुण भक्ति -

निर्गुण-तत्व के प्रति की जाने वाली भक्ति या उपासना निर्गुण-भक्ति कहलाती है। यहां पर प्रसंगानुसार विचारणीय है कि क्या भक्ति और उपासना एक ही तत्व हैं भजनीय और उपास्य एक ही हैं या अलग-अलग

उपासना - उपासना शब्द से क्या तात्पर्य है गीता के बतीसवें श्लोक के शाङ्करभाष्य में - उपासनं नामयथासास्त्रभुपास्यस्यार्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यमुपगम्य तैलधारावत् समानप्रत्ययप्रवाहेण दीर्घकालम् यदासनं तदुपासनमाचक्षते।' शास्त्र विधि के अनुसार उपास्यदेव के प्रति तैलधारा की भांति दीर्घकालपर्यन्त चित की एकात्मकता को उपासना कहते हैं। अद्वितीय तत्व में मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति-स्थिति की निरन्तर भावना को उपासना कहते हैं। जिन साधनों से जीव ईश्वर तक पहुंचता है उसी को उपासना कहते हैं। अत: शुद्ध प्रेम के उपार्जन का नाम ही उपासना है। जब व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुख होता है, उस समय भगवान् के प्रति प्रेम-पूरित भक्ति, उनकी लीलाओं का रसास्वादन, उनका निरन्तर चिन्तन और उनके पावन नाम का अनुस्मरण, सब कर्मों को उनकी पूजा मानकर करना, इन सभी रूपों को उपासना धारण करती है।[1] भगवान् में अखण्ड विश्वास तथा

---

1 स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे अहैतुक्यप्रतिहता यया त्मा सम्प्रसीदति । भागवत 1/2/6

अनवरत उसी की स्मृति का नाम उपासना है। परमात्मा के साथ मानव हृदय एकाकार हो जाय, तब उसका नाम उपासना है। अपने उपास्य या आराध्य के निकटतम श्रद्धालु अथवा शुश्रूषु के रूप में बैठना ही उपासना है। उपासना का व्यापक रूप से अर्थ है - भगवत्तत्व के अनन्त रूपों में से ‡सगुण-साकार या निर्गुण निराकार‡ किसी को लेकर भगवत्तत्व की ओर प्रवण होना। सब तरह की पूजा, भक्ति, प्रार्थना, आराधना, अर्चना, भगवत्सेवा, ध्यान-चिन्तन दत्यादि का अन्तर्भाव हम व्यापक अर्थों में उपासना में कर सकते हैं। उपासना वह वस्तु है जो व्यक्ति को भगवत्सन्निधि की योग्यता देती है। अन्ततोगत्वा उपास्य और भजनीय इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जो उपास्य है, वही भजनीय है, जो भजनीय है, वही उपास्य है। इसी प्रकार उपासना और भक्ति भी अन्तिम रूप से एक हैं। किन्तु दोनों के व्यावहारिक पक्ष में एक प्रमुख भेदक तत्व सुस्पष्ट है -- वह यह कि उपासना में ध्यान या स्मृति या ज्ञान का प्राधान्य है, अनुरागात्मिका वृत्ति के लिए उपासना में कोई स्थान नहीं है। जबकि भक्ति अनुरागात्मक ‡ ‡ आधार पर भावना का नाम है। एक ज्ञान-प्रेरित है और दूसरी अनुराग-प्रेरित। अनुभव के वैचारिक स्वरूप ‡ ‡ का आधार उपासना में रहता है और अनुकूल वेदनीयत्व अइ0ग ‡ ‡ का आधार भक्ति है। पूज्यादि में अनुरागात्मिका वृत्ति ही भक्ति का भेदक रूप है और उपासना में उत्कट प्रेम। भक्ति के ही दो रूप हैं - उत्कट प्रेम और उपासन और उत्कट प्रेम में पूजा, अर्चना, चन्दन पुष्पमाल्यादि अर्पण करना ही भगवान् की भक्ति करना है।

रामोपासना से तात्पर्य है सर्व शक्तिमान् ब्रह्मराम की उपासना। उनकी उपलब्धि ही मानव जीवन का चरम उत्कर्ष है। राम ब्रह्म हैं। सगुण लीलाभेद से ही वे दशरथ के पुत्र हैं। निर्गुण के प्रति की जाने वाली उपासना निर्गुणोपासना है। स्वरूपानुसंधान ही इस प्रकार की भक्ति का लक्ष्य है। ईश्वर

के तात्त्विक स्वरूप का ज्ञान ही निर्गुणोपासना है।

जीव केवल ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र है किन्तु भ्रमवश वह मान बैठता है कि उसका अपना स्वत्व है, वही कर्ता और भोक्ता है। यदि उसके इस भ्रम का निराकरण हो जाता है तो ईश्वर या ब्रह्म से उसके भिन्न होने का आभास मिट जाता है। इसका निराकरण तत्व-ज्ञान का चिन्तन और महावाक्यादि के बोध द्वारा होता है। यहर निर्गुण-भक्ति है। निर्गुण रूप का पूर्ण ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है। यहाँ ईश्वर अपने पारमार्थिक निर्गुण, निर्विशेष रूप में ही ग्रहीत किया जाना चाहिए। अध्यात्मरामायण में इसको इस प्रकार कहा है - जिस प्रकार गंगा जी का जल समुद्र में लीन हो जाता है, उसी प्रकार जब मनोवृति मेरे गुणों के आश्रय से मुझ अनन्त गुणधाम में निरन्तर लगी रहे - वही मेरी निर्गुण भक्तियोग का लक्षण है।[1] इस प्रकार के भक्तगीतोक्तजिज्ञासु भक्त है। इस निर्गुण भक्ति के साधनों का वर्णन राम ने उत्तर-काण्ड के सातवें सर्ग में किया है। इसमें हिंसाहीन कर्मयोग से, दर्शन-स्तुति आदि से प्राणिमात्र में ईश्वर की भावना करने से, यम-नियमादि से वाक्यार्थों का श्रवण करने से, सत्संग से राम को प्राप्त किया जा सकता है।[2] यहाँ पर राम ने कहा है कि वे केवल बाह्य भावना मात्र से संतुष्ट नहीं होते। जीवों का तिरस्कार करने वाले प्राणी द्वारा प्रतिमा

---

1 मद्गुणाश्रयणदेव मय्यनन्तगुणालये।
अविच्छिन्न मनोवृतिर्यथा गङ्गाम्बुनो म्बुधौ।।
तदेव भक्ति योगस्य लक्षणं निर्गुणस्य हि।
- अ० रा० 7/7/64 तथा 65

2 अ० रा० 7/7/68 से 70 तक

आदि में पूजित होकर भी वे वास्तव में पूजित नहीं होते।[1] प्रतिमाआदि में कर्मों द्वारा तभी तक पूजन करना चाहिये जब तक समस्त प्राणियों में और अपने में ब्रह्म की स्थिति न जाने।[2] परमात्मा का एक मात्र परमात्मज्ञान, मान और मैत्री से पूजन करना चाहिये।[3] ईश्वर को सब प्राणियों में जानकर सबको चित्र से प्रर्णाम करे।

निर्गुण ब्रह्म इन्द्रियातीत है, वाङ्0मनसागोचर है। अत: उसकी उपासना के प्रारम्भ के लिए प्रतीकोपासना का भी विधान किया गया है। श्रुतियां प्रतीकोपासना का विधान करती हैं।[4] ओंकारोपासना में ईश्वर को जगत का स्थूल, सूक्ष्म तथा प्रलय तीन अवस्थाओं का क्रमश: ओंकार के अ, उ, म अक्षरों के साथ समीकृत किया गया है।

प्रतीकोपासना -

अध्यात्मरामायण में अग्नि में, हृदय में, प्रतिमा आदि में अथवा सूर्य में ईश्वर की उपासना करने का विधान है।[5] ये भगवान् राम अर्थात् पर ब्रह्म के प्रतीक — स्वरूप हैं। अध्यात्मरामायण के उत्तर-काण्ड में राम-

---

1 क्रियोत्पन्नेर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मेनाम्ब तोषणम् ।
भूतावमानिनाचार्यामर्चितो हंन पूजित: ।। 75/7
- अ0 रा0 7/7/75

2 तावन्मामर्चयेद्देवं प्रतिमादौ स्वकर्मभि: ।
यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत् ।
- अ0 रा0 7/7/76

3 एकं ज्ञानेन मानेन मै याचार्चेदभिन्नधी: ।। -अ0 रा0 7/7/78

4 छान्दोग्य और बृहदारण्यक के प्रसंग ।

5 अ0 रा0 4/4/13

गीता में वर्णन है - समाधि के पूर्व ऐसा चिन्तन करे कि सम्पूर्ण जगत् केवल ओंकार मात्र है। ओंकार के अ, उ और म में क्रमश: अकार विश्व ‡जागृति के अभिमानी ‡ का वाचक है, उकार तैजस ‡स्वप्न का अभिमानी ‡ का वाचक है, मकार प्राज्ञ ‡सुषुप्ति के अभिमानी ‡ को कहते हैं।[1] अकार विश्व पुरूष को उकार में लीन करे, उकार को उसके अन्तिम वर्ण मकार में लीन करे। फिर कारणात्मा प्राज्ञ रूप मकार को भी परात्मा में लीन करे और इस प्रकार की भावना करे कि वही नित्य मुक्त विज्ञानस्वरूप उपाधि-हीन निर्मल पर ब्रह्म मैं ही हूं।[2] इस प्रकार ओङ्0कार में ईश्वर को व्याप्त तथा नियन्ता माना गया है।

ओङ्0कार के प्रतीक के रूप में ईश्वर का निरूपाधिक निर्गुण रूप साधक के सम्मुख उपस्थित होता है।

सगुण भक्ति -

ईश्वर अपनी विलक्षण शक्ति योग से अपने भक्तों या साधकों के अनुग्रहार्थ अपने स्वरूप को सगुण बनाने की लीला भी करता है। सर्वाधार एवं सर्वव्यापक ईश्वर आधेय रूप में तथा प्रदेश विशेष में कैसे स्थित हो सकता

---

1 अकारसंज्ञ: पुरूषो हि विश्वको, ह्युकारकस्तैजस ईयते क्रमात् ।
प्राज्ञो मकार: परिपठ्यते खिले:, समाधिपूर्वं न तु तत्वतोभवेत्।।
- अ0 रा0 7/5/49

विश्वंत्वकारं पुरूषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम् ।
ततो मकारे प्रविलाप्य तेजसं, द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे।।
- अ0 रा0 7/5/50

2 मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे, विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम् ।
सो हं परंब्रह्मसदा विमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्0गमुक्तउपाधितोऽमल: ।।
- अ0 रा0 7/5/51

है। सर्वशक्तिमान के लिये यह संभव है।[1] ईश्वर की सर्वभवन समर्थता का उदाहरण हमें गीता में प्राप्त होता है - जहाँ भगवान् कृष्ण को ईश्वर के अवतार रूप में मानने का आचार्य शङ्0कर द्वारा समर्थन प्राप्त होता है। गीता भाष्य के उपोद्घात में उन्होंने कहा है -

> स च भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजोभि: सदासम्पन्न:
> त्रिगुणात्मिकां वैष्णवीं स्वां मायां मूलप्रकृतिं वशीकृत्य
> अज: अव्ययो भूतानाम् ईश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव:
> अपि सन् स्वमायया देहवान् इव जात इव च लोकानुग्रहं
> कुर्वन् लक्ष्यते ।

अध्यात्मरामायण में स्तुति करती हुई अहल्या कहती है कि अनन्त परमात्मा राम ने लोकहित के लिये मायामय जन-सम्मोहनकारी रूप धारण किया है।[2] ग्रन्थारम्भ में ही कहा गया है कि भू-भारहरण के लिए चिन्मय अविनाशी प्रभु ने माया-मानव रूप में पृथ्वी तल पर अवतार लिया।[3]

इस प्रकार निर्गुण ईश्वर के सगुण रूप की अवतारणा हमें मानवाकार रूप में प्राप्त होती है। सगुण रूप सामान्य भक्तों एवं उपासकों की उपासना के लिये सुगम होता है। अनन्त शक्ति एवं अनन्त गुण सम्पन्न ईश्वर अपनी अचिन्त्य शक्ति से लोकानुग्रहार्थ मानवादि रूप धारण करता है। अध्यात्मरामायण में वर्णन है कि राम का अवतार - भक्तानां भजनार्थाय

---

1 यत्तूक्तं हिरण्मयश्मश्रुत्वादि रूप श्रवणं परमेश्वरेनोपपद्यत इति अत्रब्रूम: ।
स्यात् परमेश्वरस्यापीच्छावशान्मायामयं रूपं साधकानुग्रहणार्थम् ।।

- ब्र0 सू0 भा0 1/1/20

2 अ0 रा0 1/5/49

3 अ0 रा0 1/1/1

रावणस्य वधाय च - इसी उद्देश्य को लेकर हुआ है। अजन्मा और अकर्ता निरूपाधिक राम अपने गुण कीर्तन को सफल बनाने के लिये ही इस संसार में जन्म लेते हुये से माने जाते हैं।[1] उपास्य अपने उपासक के प्रेमवश राम, कृष्ण आदि रूपों में अवतार लेता है। यद्यपि ईश्वर के अनेक अवतार हुये किन्तु, उनका यह रामरूप शिवस्वरूप है। श्रीराम के नाम, रूप, लीला, धाम आदि का चिन्तन तथा उनके गुणों का वर्णन करना, उनके सगुण रूप की पूजा-अर्चन् आदि सगुण भक्ति के साधन हैं। उनके सगुण रूप का मनोहारी वर्णन ग्रन्थ के अरण्य काण्ड में हुआ है। [2] भगवान् के भक्त उनकी इसी सगुण मूर्ति को अहर्निश प्रणाम करते हैं। ग्रन्थ में स्वयं राम ने कहा है - जो उनके निर्गुण और कभी कभी सगुण रूप की उपासना करता है, वह उनका ही रूप है।[3] अत: दोनों प्रकार की भक्ति का वर्णन इस ग्रन्थ में है। निर्गुण तो मन का अविषय है, वह ज्ञानोतर स्थितिसाध्य है। अत: बुद्धिमान लोग अवतार स्वरूपों का ही चिन्तन करते हैं।[4] राम के रूप का चिन्तन करने से, भक्ति द्वारा उनकी उपासना करने से माया क्षीण हो जाती है। जो राममन्त्र की उपासना करते हैं और उन्हीं की शरण में रहते हैं उन्हें राम का नित्य दर्शन होता है। उपासना से जीव, जीवन्मुक्ति प्राप्त करता है। नवधा-भक्ति राम को प्रसन्न करने के लिये है। राम की पूजा-अर्चना करने से तथा प्रतिमा में तुलसी चन्दन आदि से पूजा करने से स्वयं भगवान् और उनके भक्त को प्रसन्नता होती है। यही प्रभु का कैइ0कर्य है। राम ने लक्ष्मण से भक्ति के उपाय बताते हुये

---

1 मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत् ।
भक्तानां भजनार्थाय रावणस्य बधाय च ।। अ0 रा0 2/5/28

2 अ0 रा0 6/6/58 से 61 तक

3 अ0 रा0 6/6/21

4 मनसो विषयो देव रूपं ते निर्गुणं परम् ।। 43।।
कथं दृश्यं भवेद्देव दृश्याभावे भजेत्कथम् ।
अतस्तवावतारेषु रूपाणि निपुणा भुवि ।। 44।।

एकत्र कर पूजा करनी चाहिये। कुशा, कृगचर्म और वस्त्र बिछाकर उस पर शुद्ध चित से इष्टदेव के सम्मुख बैठना चाहिये। उसके पश्चात् बहिर्मातृका और अन्तर्मातृका न्यास करे तथा केशव, नारायण, प जर-न्यास करे, और मन्त्र न्यास करे। प्रतिमा में भी न्यास करे। सामने बाईं और कलश और दाहिनी ओर पुष्पादि सामग्री रखे। अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क और आचमन के लिए चार पात्र रखे। हृदय-कमल में जीवनाम्ती कला का ध्यान करे। प्रतिमा आदि का पूजन करते समय भी उस जीव-कला का आवाहन करे। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण आदि से निष्कपट होकर पूजा करनी चाहिये। नीराजन, धूप, नैवेद्य द्वारा - वेदोक्त दशावरण पूजा-विधि से अर्चन करे। मन्त्र-विधि को जानने वाला उपास पूजा-विधि से अर्चन करे। पूजा के अनन्तर विधिपूर्वक हवन करे। अगस्त्य मुनि की बताई हुई विधि से कुण्ड बनाकर गुरू के मन्त्र से अथवा पुरूष-सूक्त के मन्त्रों से आहुति करे। अग्निहोत्र की अग्नि से चरु तथा हवि से हवन करे। हवन करते समय यज्ञ-पुरूष के रूप में परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। मौन होकर ध्यान और स्मरण करता हुआ जप करे। ताम्बूल और मुखवास देकर नृत्यगान और स्तुतिपाठ आदि कराना चाहिये। हृदय में मनोहर-पूर्ति धारण कर साष्टांग दण्डवत प्रणाम करे। भक्ति भाव से विभोर होकर कहे कि प्रभो इस भयङ्कर संसार से मुझे बचाओ। प्रतिमा में आवाहन की हुई जीव-कला को वह मुझ (परमात्मा) में ही प्रवेश कर गई - ऐसी भावना करते हुए विसर्जन करे।[1]

इस प्रकार की पूजा के द्वारा भक्त भगवान् की कृपा का अधिकारी हो जाता है। ग्रन्थ में उल्लेख हुआ है कि इस प्रकार पूजा करने वाला भक्त राम का सारूप्य प्राप्त कर लेता है।[2] अभी तक भक्ति और उपासना

---

1 अ0 रा0 4/4/37

2 मद्भक्तो यदि मामेवं पूजां चैव दिनेदिने ।
करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ।।

-अ0 रा0 4/4/39

के स्वरूप तथा भक्ति के साधनों का वर्णन किया गया है। अब भक्त अथवा उपासक तथा भजनीय अथवा उपास्य के रूप पर भी विचार कर लेना उचित प्रतीत होता है।

ग्रन्थकार ने जिस प्रकार भक्ति के विविधसाधन-मार्गों का वर्णन किया है, उसी प्रकार भक्तों का भी वर्गीकरण किया है।

1. ज्ञानी भक्त
2. योगी भक्त
3. प्रपन्न भक्त

§1§ अध्यात्मरामायण ने राम के पारमार्थिक निर्गुण रूप और मायिक सगुण रूप दोनों की प्रस्तावना की है और सगुण रूप को प्रारम्भ की स्थिति में अधिक सुलभ बताया है। निर्गुण रूप तो प्रारम्भ में सर्वथा अगम्य होता है। राम की स्तुति करते हुए नारद काकथन है कि वास्तविक निर्गुण रूप तो मन का विषय है। वह कैसे किसी को दिखाई दे सकता है। दिखाई न देने से उसका भजन कैसे हो सकता है। अत: बुद्धिमान् पुरूष अवतार-स्वरूपों का ही चिन्तन करते हैं और ज्ञान-सम्पन्न होकर ही मुक्त हो जाते हैं। भक्तियुक्त ज्ञान या भक्ति जन्य ज्ञान मोक्ष का कारण है और भक्ति ही ज्ञान की जननी है - 'भक्ति: जनित्रि ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी'। ज्ञान, वैराग्य से युक्त भक्ति ही मोक्ष का मार्ग है। ग्रन्थ में यह उद्घोषणा आद्योपान्त की गई है। अत: ज्ञानी-भक्त आत्मज्ञान के द्वारा 'तत्वमस्यादि' वाक्यों के द्वारा ब्रह्मानुसन्धान में सर्वदा तत्पर होते हैं और ज्ञानी - भक्त की उच्च-कोटि में गिने जाते हैं।[1] ज्ञानी की भक्ति निष्काम होती है। ग्रन्थ में

---

1 अर0 का0 स0 1 में विराध को ज्ञानी भक्त की कोटि में रखा गया है।

'त्वया मद्दर्शनात्सद्योमुक्तो ज्ञानवतां वर: ।

-अ0 रा0 3/1/44

इसी प्रकार की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। राम ने कहा है कि - मेरे भक्त मोक्षादि की इच्छा न करके केवल मेरी भक्ति की ही कामना करते हैं। ज्ञानी कर्तव्य और विवेक की प्रेरणा से भगवान् का भजन करते हैं। वह ईश्वर के स्वरूप को जानकर समस्त प्राणियों में आत्मरूप से स्थित परमात्मा की अभेद बुद्धि से ज्ञान, मान, मैत्री आदि से भक्ति करता है।[1] समस्त जीवों में भगवान् के निर्गुण रूप की उपासना करने वाले भक्त ज्ञानी भक्त की कोटि में हैं। शम, दम आदि से सम्पन्न होकर महावाक्यादि के श्रवण से तथा प्राणियों में एक ईश्वर की भावना करने से वह उनका सच्चा भक्त होता है।

{2} <u>योगी भक्त</u> - जो योग-साधना के द्वारा भगवत्स्वरूप को जानकर उनकी भक्ति करते हैं, वे योगी भक्त हैं। ग्रन्थ में वर्णित योगिनी स्वयंप्रभा इसी कोटि में हैं।[2] अध्यात्मरामायण के उत्तर-काण्ड में वर्णन है कि जो निरन्तर समाधि - योग का अभ्यास करता है, जो विषयों से निवृत्त है, उस जितेन्द्रिय महात्मा को भगवान् का साक्षात्कार होता है।[3] ऐसे योगी को वेदविहित कर्मों को त्याग कर अन्तरात्मा रूप अपने आत्मा का भजन करना चाहिये। इस प्रकार के योगी भक्तों को ग्रन्थ में - ' निस्तरङ्ग समुद्र के समान और जीवन्मुक्त कहा गया है।[4]

---

1 मामत: सर्वभूतेषु परिच्छिन्नेषु संस्थितम् ।
एकं ज्ञानेन मानेन मैत्र्या चाचेंदभिन्नधी: ।।

- अ० रा० 7/7/78

2 अ० रा० 4/6/40

3 एवं सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो, निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि।
विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा, दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मन: ।।

- अ० रा० 7/5/53

प्रपन्न भक्त - भक्तों का तीसरा भेद प्रपन्न या शरणागति परक माना गया है। जो भक्त सब कुछ का भरोसा त्याग कर राम के प्रति आत्मसमर्पण कर देते हैं उन्हें प्रपन्न या शरणागत भक्त कहते हैं। यह सर्वश्रेष्ठ भक्ति है। इस भक्त में सर्वनिष्ठा त्याग के कारण, ज्ञान, वैराग्य, योग आप से आप उदित हो जाते हैं। इसलिये पहले दो भक्तरूपों की श्रेष्ठता का भी इस भक्त में समावेश हो जाता है और शरणागति रूप वैशिष्ट्य भी रहता है। यही सर्वश्रेष्ठ भक्ति इस ग्रन्थ की प्रमुख प्रतिपाद्य भक्ति है। इसका भी प्रारम्भ सगुणालम्बन के प्रति होकर पर्यवसान निर्गुण या अध्यात्मभत राम में समझना चाहिये।

राम की अनन्य शरणागति चाहने वाला ही उनका सच्चा भक्त है। ग्रन्थकार ने भक्त के विविध रूपों में शरणागति या "प्रपति-भाव" का विशेष महत्ववर्णित है। स्वयं भगवान् राम के मुख से विभीषण - शरणागति के अवसर पर कथन हुआ है - सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतंमम् ।[1] जो एक बार भी शरणागत हो जाता है और कह उठता है कि - नाथ। मैं आपका हूँ - भगवान् उसे अभय देते हैं। अन्य किसी वस्तु का भरोसा त्यागकर निश्छल हृदय से तथा अनन्त भाव से भगवान् की शरण में जाने से भगवान् अपने शरणागत को पापों से मुक्त कर देते हैं - ऐसा गीता में भगवान् ने कहा है।[2] प्रपति अथवा भगवान् की शरण ग्रहण करना श्रेष्ठभागवत धर्म माना जाता है।[3] यही

---

1 अध्यात्मरामायण 6/3/12

2 सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

गीता 18/66

3 भारतीय संस्कृति और साधना। महा० गोपी नाथ कविराज,
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

यथार्थ संन्यास है।[1] वर्ण, आश्रम आदि का विचार किये बिना सभी लोगों का इसमें अधिकार है। अध्यात्मरामायण में राम ने कहा है - 'पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषोवा जाति नामाश्रमादयः। न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ।।'[2]

भगवान से मिलने की व्यग्रता प्रपत्ति का प्रधान अङ्ग है।[3] प्रपत्ति के दो भेद हैं - शरणागति और आत्मसमर्पण। सर्व विपत्तियों से त्राण देने वाले भगवान् ही हैं। इस प्रकार रक्षक-भाव से उनकी शरण लेना ही शरणागति है।

अध्यात्मरामायण में स्तुति करते हुए ब्रह्मा ने कहा है - भवत्तं मां पाहि राघवं।' यही भाव शाप-ग्रस्त विराध की स्तुति में है। राम से वह कहता है - प्रपन्नं पाहि मां राम यास्यामि त्वदनुज्ञया।[4]

रामोपासना से निर्मलचित सुतीक्ष्ण भी इसी प्रपत्तिभाव से युक्त हैं। स्वयं राम उनसे कहते हैं - 'उनके लिये राम के अतिरिक्त अन्य साधना नहीं है' - मदृते नान्य साधनम्[5] प्रपन्न भक्त सुतीक्ष्ण के भगवदानुरक्त रूप का वर्णन ग्रन्थ में हुआ है।[6] उनके लिये कहा गया है - भक्त्युत्कण्ठितलोचन:'

---

1 निक्षेपापरपर्यायो न्यास: प चाङ्ग संयुत: ।
संन्यासस्त्याग इत्युक्त: शरणागतिरित्यपि ।। वही

2 लोका: काम दुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुका:। अ० रा० 3/10/44

3 अध्यात्मरामायण 3/10/20

4 अ० रा० 3/1/42

5 अ० रा० 3/2/36

6 अगस्त्यशिष्यो रामस्य मन्त्रोपासनतत्पर: ।
विधिवत्पूजयामास भक्त्युत्कण्ठितलोचन: ।।

- अ० रा० 3/2/26

इस अनन्य शरणागति का महत्व बताते हुये राम कहते हैं कि' जो मेरे (राम के) मन्त्र के उपासक और मेरी ही शरण में रहते हैं तथा नित्य निरपेक्ष और अनन्य गति रहते हैं, उन्हें मैं नित्य दर्शन देता हूं।[1] हनुमान् की गणना भी प्रपन्न भक्तों में है।[2] वे राम में अत्यन्त, एकान्त भक्ति रखते हैं।[3] विभीषण की शरणागति तो भगवान् की अहैतुकी करूणा एवं प्रपन्न की रक्षा के व्रत का स्पष्ट उदाहरण है।[4] प्रपन्न विभीषण के ही शब्दों में उसके समान तो कोई न पवित्र है, न उसकी समता करने वाला है।[5] केवल भक्ति से ही भगवान् की शरण लेने वाला भक्त सर्वश्रेष्ठ है। अध्यात्मरामायण में ईश्वर राम के प्रति प्रपत्ति भाव का दर्शन जटायुकृत स्तुति में होता है।[6] विराध की शरणागति में होता है।[7] इसी प्रपत्ति का उपदेश कालनेमि रावण को देता है।[8] जो भगवान् की अहेतुक कृपा प्राप्त कर, सद्गुरू का आश्रय और उपदेश ग्रहण कर, शास्त्र के अभ्यास से जो यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं और निरन्तर भगवान् के अनुसन्धान में तत्पर रहते हैं, वे ही प्रपन्न भक्त हैं --

---

1 मन्मत्रोपासका लोके मामेव शरणं गता: ।।
निरपेक्षा नान्यगतस्तेषां दृश्यो हमन्वहम् ।

- अ0 रा0 3/2/36, 3/2/37

2 हनूमते प्रपन्नाथ सीता लोकविमोहिनी ।। अ0 रा0 1/1/31

3 निष्कल्मषो यं ज्ञानस्य पात्रं नो नित्यभक्तिमान् ।

- 1/1/30

4 अ0 रा0 6/3/13

5 नास्तिमत्सदृशों धन्यो नास्ति मत्सदृश: शुचि: ।
नास्ति मत्सदृशो लोके राम त्वन्मूर्तिदर्शनात् ।।

- अ0 रा0 6/3/35

6 अ0 रा0 3/8/44 से 53 तक

7 अ0 रा0 3/1/38 से 44 तक

8 विसृज्यमौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां, भजस्व रामं शरणागतप्रियम्।
सीतां पुरस्कृत्य सुपुत्रबान्धवो, रामं नमस्कृत्य विमुच्यसभयात् ।। अ0 रा0

इन भक्तरूपों के अतिरिक्त तीन प्रकार के भक्तों का और वर्णन हुआ है[1] जो इस प्रकार हैं - । तामस भक्त - जो पुरुष, हिंसा, दम्भ या मात्सर्य के उद्देश्य से भक्ति करता है।

2 रजोगुणी - जो फल की इच्छा वाला, भोग चाहने वाला, तथा धन और यश की कामना वाला होता है और भेदबुद्धि से अर्चा आदि में पूजा करता है। यही अर्थार्थी भक्त हैं।

3 सात्विक - जो परमात्मा को अर्पण किये हुये कर्म सम्पादन करने के लिए अथवा 'करना चाहिये' इसलिये भेद-बुद्धि से कर्म करता है। इनके अतिरिक्त शान्त एवं विरक्त और योगनिष्ठ रूप भी भक्त का बताया गया है।

उपास्य का रूप -

अध्यात्मरामायण में राम को निर्गुण और सगुण दोनों कहा गया है। निर्गुण और सगुण दोनों ही रूप राम में एक साथ हो सकते हैं। इसका विवेचन किया जा चुका है। यद्यपि राम का निर्गुण रूप ग्रन्थ में उपास्य है, किन्तु सुलभ और सुगम होने के कारण राम का सगुण, साकार, लोक सम्मोहनकारीरूप भी उपासना या भक्ति की दृष्टि से सुगम है। अध्यात्म-रामायण में स्तुति करते हुये सुतीक्ष्णा ने इस रूप के विषय में कहा है। [2]

जानन्तु राम तव रूपमशेषदेश, कालाद्युपाधिर हितंघनचित्प्रकाशम् ।
प्रत्यक्षतो य मम गोचरमेतदेवरूपं विभातु हृदये न परं विकांड्0क्षे ।।

---

1 अ0 रा0 7/7/61, 62

2 अ0 रा0 3/2/34

कबंध - वध के प्रसङ्ग में राम की स्तुति करते हुये कबन्ध ने राम के आध्यात्मिक रूप का वर्णन करने के बाद कहा है -'जब जीव राम के विराट् रूप का चिन्तन करता है तो तत्काल ही उसकी मुक्ति हो जाती है। तो भी मुझे उसकी आवश्यकता नहीं। मैं तो आपके इस राम रूप का ही चिन्तन करूंगा।[1]

युद्ध काण्ड में राम ने अपने दोनों रूपों के चिन्तन को प्राधान्य दिया है।[2] अध्यात्मरामायण में उपास्य राम का रूप लोक-रंजनकारी, त्रिभुवन कमनीय, भक्तों के लिये सम्मोहनकारी तथा भक्त-वत्सल एवं भक्ताश्रय है। उपासकों की उपासना की सफलता के लिए ही निर्गुण निराकार ने कमनीय राम-रूप धारण किया है, जिसमें स्त्री, पुरूष, पशुपक्षी, ऋषि जन, वन्यजन एवं राक्षसजन भी आकृष्ट होते हैं।

भक्ति और मुक्ति -

विष्णु की भक्ति चित की शुद्धि और निर्मल ज्ञान को देने वाली है। ज्ञान से सम्पन्न भक्त को विशुद्ध तत्व का अनुभव एवं मोक्ष प्राप्ति होती है।[3] मोक्ष-प्राप्ति के लिये कर्म, ज्ञान तथा भक्ति - तीन साधनों का उल्लेख अध्यात्मरामायण में हुआ है। विश्व से विश्वनाथ तक की आध्यात्मिक यात्रा के लिए अथवा इस लोक में ही रह कर उस लोकोतर परम पुरूष तक पहुंचने के लिए मुख्यत: तीन पद्धतियों - कर्म, ज्ञान और भक्ति - की चर्चा की

---

1 अ0 रा0 3/2/34

2 अ0 रा0 6/6/61

3 विष्णोर्हिभक्ति: सुविशोधनं धियस्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम् ।
विशुद्धतत्वानुभवो भवेतत: सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ।।
- 5/4/21

गई है।[1] अध्यात्मरामायण में इन्हें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के नाम से प्रस्तुत किया गया है। भागवत में भी कहा गया है -

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणांश्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायो न्यो स्ति कुत्रचित् ।।[2]

देवी भागवत में इन्हीं को कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग नाम दिया गया है।[3]

कर्मयोग -

कर्मयोग के अनुसार साधक लौकिक और वैदिक कर्म करता हुआ परमेश्वर के निकट पहुंच सकता है। अपने धर्म का अत्यन्त निष्काम भाव से आचरण करने से अत्युतम हिंसाहीन कर्मयोग से, दर्शन, स्तुति, महापूजा, स्मरण तथा यम नियमादि के पालन से, वेदान्त वाक्यों का श्रवण करने से जीव ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।[4]

कर्मयोग के समर्थकों के अनुसार लौकिक और वैदिक कर्म करता हुआ जीव परमेश्वर के निकट पहुंचताती है। किन्तु इस कर्म साधना में सर्वत्र अहम् के द्वारा संकल्प पूर्वक ही कर्म करने का विधान है। जो अहंवृत्ति को पोषित कर जीव को श्रृंइ्0खला में जकड़ने का जाल प्रतीत होता है।

---

1 सततं कीर्तयन्तो मां .... नित्युक्ता उपासने। अ0 रा0 5/4/22
ज्ञान यज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथकत्वेन - गीता 9/14/15

2 भागवत 11-20-6

3 मार्गस्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तो नराधिप।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सतम ।। - देवी भागवत 7/37/3

4 अ0 रा0 7/7/68 से 72 तक

ईश्वरो हमहं भोगी सिद्धो हं बलवान् सुखी।
आढ्यो भिजनवानास्मि को न्यो स्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञान विमोहिता: ।[1]

यह मनोवृति, उसकी उदात्त, पवित्र, उज्ज्वल भावना को ही नष्ट कर डालती है। कर्म के द्वारा देहान्तर की प्राप्ति भी अनिवार्य है। कर्म में प्रेम रखने वाले के द्वारा इष्ट-अनिष्ट दोनों प्रकार की क्रियायें होती हैं। उनके कारण ही पुनर्जन्म होता है और इस प्रकार यह संसार चक्र चलता रहता है।[2] जीवमात्र परवश होकर कर्म के प्रवाह में बहता ही रहता है। कर्म द्वारा अज्ञान का नाश अथवा राग-क्षय नहीं होता बल्कि उससे दूसरे कर्मों की उत्पत्ति होती है। शुभकर्मों के द्वारा स्वर्गादि मिलता है। पुण्य-क्षय होने पर मनुष्य को पुन: जन्म लेना पड़ता है।

यदि कहा जाय कि जिस प्रकार ज्ञान पुरुषार्थ का साधक है। वैसे ही कर्म वेद विहित हैं और विधि से प्रकाशित कर्मों के द्वारा ही ज्ञान मुक्ति का साधक हो सकता है।[3] तो यह कहना भी असङ्गत नहीं है कि कर्म देहाभिमान से होता है और कर्तृत्व और भोक्तृत्व की भावना से युक्त जीव की मुक्ति असंभव है।[4] अत: आत्मानुसंधान में लगे हुए पुरुष को कर्मों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। विशुद्ध विज्ञान के प्रकाश से उद्भासित चरम-आत्म-वृति होने पर ही विद्या की प्राप्ति होती है। अत:

---

1 गीता 16/14-15

2 अध्यात्मरामायण, 7/5/8, 9

3 अ0 रा0 7/5/11, 13

4 तस्मात्यजेत्कार्यमशेषत: सुधी: विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत्
आत्मानुसन्धान परायण: सदा, निवृत्तसर्वेन्द्रियवृतिगोचर : ।। 16 ।।

- अ0 रा0 7/5/16

कर्मयोग का विनियोग बहुत प्रारम्भिक दशा में है। जब तक मनुष्य का शरीरादि में आत्मभाव है तभी तक उसे वैदिक कर्मानुष्ठान कर्तव्य हैं।[1] परात्म-स्वरूप ब्रह्म को जान लेने पर फिर उसे समस्त कर्मों को छोड़ देना चाहिए। ये सब कर्म चित की शुद्धि के लिए हैं। चित की शुद्धि हो जाने पर उन कर्मों को छोड़कर शम-दमादि साधनों से सम्पन्न हो आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिये सद्गुरु की शरण में जाना चाहिये।[2]

ज्ञान-योग -

ज्ञान स्वतंत्र है, उसे जीव-मोक्ष के लिये किसी अन्य (कर्मादि) की अपेक्षा नहीं है। वह स्वयं अकेला ही समर्थ है।[3] अध्यात्मरामायण में कहा गया है - संसार को भय और शोक का कारण जानकर समस्त वेद-विहित कर्मों का त्याग कर, सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तरात्मा रूप अपने आत्मा का भजन करे।[4] स्वयं राम ने कहा है - 'जब तक संसार मेरा ही रूप दिखाई न दे तब तक निरन्तर मेरी आराधना करता रहे।'[5] अत: आत्म-ज्ञान की प्राप्ति तक भक्ति आवश्यक है। अत: ईश्वर की प्राप्ति के लिए ज्ञान मार्ग का अवलम्ब ही यहां श्रेयस्कर बताया गया है। शास्त्रों में भी ज्ञान की महिमा का वर्णन हुआ है। गीता में कहा गया है[6] - नहि ज्ञानेन सदृशं

---

1 अ० रा० 7/5/17

2 समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ।।

- अ० रा० 7/5/7

3 अ० रा० 7/5/20, 21

4 अ० रा० 7/5/55

5 अ० रा० 7/5/58

6 गीता (4/38)

पवित्रमिहविद्यते।' वेदों में भी ऋते ज्ञानान्न मुक्ति: का उद्घोष किया गया है। अध्यात्मरामायण में भी मोक्ष का आद्य-साधन ज्ञान बताया गया है। ग्रन्थ में वर्णन हुआ है - " ज्ञान स्वतंत्र है उसे जीव के मोक्ष के लिए और किसी (कर्म) की अपेक्षा नहीं।[1] " 'नकर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेने के अमृतत्वमानुश:' - इस प्रकार का वर्णन तैत्तिरीयआरण्यक में हुआ है। अध्यात्मरामायण में ज्ञान की प्रधानता बतलाते हुए कहा गया है - आत्म-चिन्तन के द्वारा तथा गुरु के समीप रहकर, वेद-वाक्यों से आत्मज्ञान का अनुभव होने पर सदा आत्मा का अखण्ड वृत्ति से चिन्तन करना चाहिये। आत्म-चिन्तक किसी साधना का आश्रय न लेकर केवल ज्ञान-दृष्टि द्वारा एक आत्मा की ही भावना करे।[2] जब महावाक्य द्वारा जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। उस समय अविद्या नष्ट हो जाती है। सम्पूर्ण प्रप च को अपने आत्मा के साथ अभिन्नभाव से चिन्तन करने से जीव परमात्मा के साथ अभिन्नभाव से स्थित हो जाता है। ऐसा ज्ञानी पुरूष सम्पूर्ण संसार में ब्रह्मरूप की ही आराधना करता है। अभिमान से दूर रहना, दम्भ और हिंसा आदि का त्याग करना वाह्य और आन्तरिक शुद्धि रखना, सर्वात्मा राम में अनन्य बुद्धि रखना, आत्म-ज्ञान का सदा उद्योग करना तथा वेदान्त के अर्थ का विचार करना - इन साधनों से आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है।[3] चेतन आत्मा का साक्षात्कार ही मोक्ष है। मोक्ष कामियों को सदा विद्योपार्जन करना चाहिये।[4] मोहहीन संन्यासीगण निश्चित बुद्धि

---

1 तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभाति केवला।।

- अ0 रा0 7/5/20

2 अ0 रा0 7/5/42 से 46 तक

3 अ0 रा0 3/4/31 से 37 तक

4 तस्माद्यत्न: सदाकार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभि: ।

- अ0 रा0 2/4/34

के द्वारा प्राण और अपान को हृदय में रोककर तथा अपने सम्पूर्ण संशय बन्धन और विषयवासनाओं का छेदन कर भगवान् का दर्शन करते हैं।[1]

भक्तियोग -

कर्म और ज्ञान की सार्थकता के लिए भक्ति को अधिक सरस, व्यावहारिक एवं जीव का परमधर्म स्वीकार किया गया है।[2] अध्यात्म-रामायण में कहा गया है - ज्ञानी पुरूष को भी ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है किन्तु भक्त, जीवात्मा और परात्मा का ऐक्य प्राप्त करने का वास्तविक अधिकारी है।[3] अनन्त आकर्षणों के स्रोत उस परमप्रभु से राग द्वारा बंध जाने के लिए तो आत्माराम निर्ग्रन्थ मुनि भी अहैतुकी प्रीति करते हैं।[4] अध्यात्म रामायण में सभी आरण्यक मुनि-जन राम के प्रति इसी प्रीति युक्त भक्ति से ओत प्रोत हैं। भक्ति द्वारा प्रभु की उपासना करने से माया नष्ट हो जाती है।[5] भक्ति से बुद्धि शुद्ध होती है और उसी से निर्मल आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञान होते ही जीव-ब्रह्म से अभिन्न हो

---

1 अ0 रा0 6/13/11

2 सवे पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ।।
1/2/6 श्रीमद्भगवद्गीता

3 अ0 रा0 1/1/50, 51

4 आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरूक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणों हरि : ।। 1/7/10
- भागवत 1/7/10

5 अ0 रा0 1/7/39

जाता है। आत्म-ज्ञान ही मोक्ष है। ग्रन्थ में मोक्षप्राप्ति के लिए ज्ञान ही परम साधन बताया गया है।[1] आत्म-ज्ञान अविद्या के विनाश से संभव है। विद्योपार्जन अथवा आत्मज्ञान की प्राप्ति होते ही परमात्मास्वरूप ज्ञान हो जाता है। अत: अविद्या की लयावस्था ही मोक्ष है। किन्तु ज्ञान की प्राप्ति भक्ति से संभव है। भक्ति पूर्वक प्रभु की उपासना करने से माया नष्ट हो जाती है।[2] भक्ति से बुद्धि शुद्ध होती है। उसी से निर्मल आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन हुआ है - विष्णु की भक्ति ही चित की शुद्धि और निर्मल ज्ञान को देने वाली है। ज्ञान से सम्पन्न भक्त को विशुद्ध तत्व का अनुभव होता है एवं मोक्ष - प्राप्ति होती है।[3] यहां पर भक्ति मोक्ष प्राप्ति का साधन बतायी गई है। एक स्थल पर और भक्ति को संसार सागर से पार जाने के लिए सुदृढ़ नौका कहा गया है। ग्रन्थ में स्पष्ट वर्णन हुआ है कि भक्ति-युक्त व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी है।[4] भक्ति से शून्य पुरूष को न तो आत्म-ज्ञान होता है और न मोक्ष ही प्राप्त होता है।[5] भक्त ही भगवान् के दर्शन के वास्तविक अधिकारी हैं। यज्ञ, दान, तपस्या तथा वेदाध्ययन के द्वारा भी भक्ति-विमुख पुरूष उनका (रामका) दर्शन नहीं प्राप्त कर सकता।[6] भगवान् भक्ति से प्राप्त होते हैं। अजन्मा भगवान् अपने भक्त के लिये अवतार भी लेता है।[7] भक्त की सर्वदा उत्कट

---

1 विद्या विमोक्षाय विभाति केवला ।

- अ० रा० 7/5/20

2 अध्यात्मरामायण, 1/7/39

3 अ० रा० 5/4/22

4 अ० रा० 1/1/50, 51

5 अ० रा० 1/1/51

6 अ० रा० 6/8/67

7 भक्तचितानुसारेण जायेते भगवानज: ।

- अ० रा० 4/5/24

अभिलाषा है -' त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु में' ।

साधनत्वेन ज्ञान और भक्ति का सम्बन्ध -

भक्ति से आत्म- ज्ञान और आत्मज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। यहाँ पर भक्ति मुक्ति के मार्ग में अनिवार्य साधनत्वेन उपग्रहीत हुई है। भक्ति का स्थान उस ज्ञान के आधाररूप में है, जो मोक्ष को देने वाला है। यद्यपि केवल ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है[1] किन्तु ज्ञान स्वत: होना असंभव है - ऐसा ग्रन्थ में बताया गया है। अत: मोक्ष अन्त-तोगत्वा भक्ति की ही देन है -'भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी'[2] भगवान् के चरण कमलों की भक्ति से युक्त पुरूष को ही क्रमश: ज्ञान की प्राप्ति होती है।[3] भगवद्भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। विभीषण-शरणागति के अवसर पर भक्ति का नि:श्रेणी के रूप में उल्लेख हुआ है, जिसकी सहायता से ज्ञानयोग नामक राजभवन के शिखर पर चढ़ा जा सकता है।[4] अत: भक्ति ज्ञान की सहायिका कही गई है। मोक्ष प्राप्ति में भक्ति और ज्ञान दोनों ही साधन हैं। भक्ति ज्ञान की सहायिका है,[5] और ज्ञान मोक्ष का साक्षात् उपाय है। ज्ञान से ही मोक्ष

---

1 विद्या विमोक्षाय विभाति केवला । 7/5/20

2 अ० रा० 6/7/67

3 अ० रा० 2/1/29

4 अ० रा० 6/3/31

5 समुदेति ततो भक्तिस्त्वयि राम सनातने।
त्वद्भक्तावुपपन्नायां विज्ञानं विपुलं स्फुटम् ।। - अ० रा० 3/3/40
उदेति मुक्तिमार्गो यमाद्यश्चतुरसेवित: । अ० रा० 3/3/41
कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् ।

- अ० रा० 6/3/36

सम्भव है। सनातन पुरुष राम में भक्ति हो जाने पर स्फुट तथा पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है और यही ज्ञान मुक्ति का मार्ग है।

निर्गुण भक्ति की सम्भावना -

क्या निर्गुण तत्व के प्रति प्रेम सम्भव है जबकि निर्गुण का कोई रूप नहीं, कोई नाम नहीं, कोई देश या जाति नहीं, तो ऐसा तत्व क्या 'प्रेमास्पद' बन सकता है बिना रूप-रेखा की किसी वस्तु के प्रति भला हमारा अनुराग कैसे सम्भव हो सकता है

हम अपने जीवन में देखते हैं कि संसार की प्रत्येक वस्तु से बढ़कर मनुष्य को अपने आप से लगाव होता है। इस सम्बन्ध में शास्त्रों का यह निर्देश है कि प्रत्येक प्राणी -'मानभूवम हि भूयासम' की ही प्रवृत्ति रखता है, यह उसका अपने प्रति अनुराग ही तो है। विपत्ति पड़ने पर यही चिन्ता रहती है कि सब कुछ भले ही समाप्त हो जाए, किन्तु हमारा अस्तित्व बना रहे। यह जो अपने अस्तित्व के प्रति प्रेम है, यह अपना अस्तित्व या आत्म-सता जिसके प्रति प्रत्येक प्राणी इतना अनुरक्त रहता है, क्या वस्तु है यह पुत्र - मित्रादिक, शरीर और इन्द्रिय, बुद्धि - अहंकार आदि नहीं हो सकता क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए हम इन सबका भी त्याग करना पसन्द करते हैं। अपने सुख के लिए हम अपने सगे सम्बन्धियों को भी छोड़ देते हैं। हमारा पार्यन्तिक प्रेम इनमें से किसी वस्तु के प्रति नहीं हैं। तब यह कौन सी वस्तु है जिसके लिए अन्तिम विश्लेषण में प्राणिमात्र अन्य सब वस्तुओं को नगण्य समझता है। निश्चत ही यह निर्विकार और निर्गुण आत्म-तत्व है जिसके प्रति हमारा इतना प्रेम है।

अत: निर्गुण-तत्व के ही प्रति वास्तविक और स्वाभाविक प्रेम होता है और अन्य पदार्थों के प्रति अपेक्षित प्रेम ही सम्भ है। इसलिये शुद्ध

मनोवैज्ञानिक आधार पर असीम, अखण्ड, अनन्त प्रेम निर्गुण के प्रति सम्भव है। सगुण सत्ताओं के प्रति अस्थायी सापेक्ष एवं ससीम प्रेम ही सम्भव है। अत्युत्कट प्रेम-लक्षणा भक्ति इसीलिए निर्गुण आत्म-तत्व में ही संभव है। अन्य प्रेम क्षणिक है। अत: निर्गुण तत्व के प्रति भक्ति अवश्य हो सकती है। पंचदशी-कार ने निर्गुण आत्मा के परमानन्दत्व को सिद्ध करने के लिये इसी स्वाभाविक प्रेम को लक्षित करके कहा है -

> अयमात्मा, परानन्द: परप्रेमास्पदं यत: ।
> मानभूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते ।।[1]

इसी निर्गुण के प्रति भक्ति की स्वाभाविकता और असीमता को लक्ष्य करके कदाचित निर्गुण भक्ति को उत्कृष्ट बनाया गया है। इसीलिए सगुण भक्ति तथा क्रिया - योग-रूपिणी भक्ति का पर्यवसान निर्गुण भक्ति में बताया गया है।

निर्गुण भक्ति की श्रेष्ठता -

ग्रन्थ में निर्गुण तत्व को अन्तिम एवं श्रेष्ठ बताया गया है तथा उसके प्रति की जाने वाली भक्ति को प्रधानता दी गई है। निर्गुण भक्ति योग का वर्णन करते हुये ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है कि प्रतिमा में कर्मों द्वारा तभी तक पूजन करना चाहिये जब तक समस्त प्राणियों में और अपने में ब्रह्म को स्थित न जाने।[2] एक स्थल पर और इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख है कि ईश्वर की तब तक आराधना करना चाहिये जब तक कि अखिल लोक उसका ही

---

1 प चदशी - तत्वविवेक प्रकरणम् ।

2 तावन्मामर्चयेद्देवं प्रतिमादौ स्वकर्मभि: ।
यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत् ।।

- अ0 रा0 7/7/76

स्वरूप न दिखाई देन लगे।[1] पूजादि कर्म, आराधना, भक्ति और भाव तभी तक करणीय हैं जब तक कि निर्गुण तत्व की प्राप्ति न हो जाये।

---

1 यावन्नपश्येदखिलं मदात्मकं,
तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ।
- अ0 रा0 7/5/58

तृतीय - परिच्छेद

अध्यात्मरामायण की कथा और उसकी तुलनात्मक समीक्षा

राम-कथा सम्बन्धी लगभग सभी ग्रन्थों का प्रमुख आधार वाल्मीकि-रामायण है। आदि कवि का प्रथम सर्जन ही समस्त रामायणकारों की प्रेरणा है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सभी आदि रामायण से ही प्रेरणा लेकर चले हैं। बाद में कथा के विकास के साथ - साथ उसका रूप भी परिवर्तित होता गया।

अध्यात्मरामायण की कथा भी वाल्मीकिरामायण की कथा के अधिकांशत: निकट ही है। जहां कहीं भी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है उसका प्रमुख कारण दार्शनिक तत्वों के विवेचन, राम के ईश्वरत्व के प्रतिपादन तथा राम-भक्ति के प्रतिपादन का उद्देश्य ही है। स्थान-स्थान पर ऐसे नवीन प्रसंगों का प्रादुर्भाव हुआ हैं जो राम के आध्यात्मिकस्वरूप को प्रकट करने में सहायक हैं। वाल्मीकि का मूल आधार लेकर भी कथानकों का रूप परिवर्तन इसी उद्देश्य को लेकर हुआ है। इसका विवेचन करना आवश्यक है।

वाल्मीकि के 'राम' का रूप आदर्श क्षत्रिय राजा का है। अध्यात्म-रामायणकार ने राम को ब्रह्म के रूप में देखा है।[1] राम-कथा का रूप वाल्मीकि के बाद बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। राम के ईश्वरत्व की कल्पना हुई है और उन्हें विष्णु का अवतार माना गया है। दशरथ-सुत राम साक्षात् ब्रह्म माने गए। उन्होंने भक्तों के उद्धार के लिए ही मनुष्य रूप में इस पृथ्वी पर अवतार लिया था। राम का यह परिवर्तित रूप ही अध्यात्मरामायण में मिलता है।

अध्यात्मरामायण की कथा वाल्मीकि रामायण का अनुकरण करके ही काण्डों में विभाजित है । वाल्मीकि के ग्रन्थ की तरह इसमें भी सातकाण्ड

---

1 रामम् विद्धि पर ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।

हैं। इन काण्डों के वे ही नाम हैं। कथा का विभाजन भी वाल्मीकि-रामायण की ही भांति है। किन्तु इसमें अन्तंकथायें बहुत कम हैं। जो हैं भी वे संक्षिप में।

वाल्मीकि का अनुसरण करते हुए भी लेखक ने अपने उद्देश्य के अनुसार परिवर्तन कर कथा प्रारम्भ की है । राम का ब्रह्मत्व प्रमाणित करने के लिए वह प्रारम्भ से ही सजग जान पड़ता है। जैसा कि शुद्ध में ही ग्रन्थकार ने कहा है - रामम् विद्धि पर ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।

शिव-पार्वती संवाद में पार्वती के मुख से राम के ब्रह-रूप के विषय में समस्त शङ्0काओं को व्यक्त कराके लेखक ने अपने उद्देश्य को प्रकट करने का प्रसङ्0ग उपस्थित कर लिया है।

वाल्मीकि-रामायण की कथा को आधार बनाकर उसके सहारे रामभक्ति एवं आध्यात्मिक तत्वों की व्याख्या के लिए अध्यात्मरामायण की रचना हुई। दार्शनिक मान्यताओं के प्रतिपादन पर लेखक की दृष्टि रही है। इसी दृष्टि से वहां कथानक में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया गया है।

अध्यात्मरामायण का उद्देश्य उक्ति-वैचित्र्य के द्वारा कथा का विकास नहीं बल्कि कथोपकथनों द्वारा ज्ञान, भक्ति और तत्व का निरूपण करना है। मूलकथा से बहिर्भूत-प्रसङ्0गों को लेखक ने अधिक महत्व नहीं दिया है। उन उपाख्यानों को भी रखा गया है, जो राम-भक्ति के विवेचन में उपादेय हैं।

संस्कृत-राम-कथा की दीर्घ परम्परा की विवेचना से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि-रामायण में सन्निविष्ट दृष्टिकोण आगे चलकर कितना परिवर्तित परिवर्धित हुआ। प्रत्येक रचना रामकथा से एक नया आशय लेकर प्रस्तुत हुई।

यहां पर प्रमुख विचारणीय प्रश्न है कि अध्यात्मरामायण की कथा के रूप में किस प्रकार का परिवर्तन हुआ है तथा, वाल्मीकि-रामायण एवं अध्यात्मरामायण की कथा में क्या-क्या समानताएं व विभिन्नतायें हैं।

अध्यात्मरामायण में कथा-क्रम में सर्वप्रथम ग्रन्थकार ने उन अविनाशी

प्रभु को नमस्कार किया है, जिन्होंने सूर्यवंश में राक्षसों को मारने के लिये माया-मानव रूप से अवतार लिया। वे राम पूर्ण ब्रह्म और माया के आश्रय, स्वयं-प्रकाश परमात्मा हैं।

तत्पश्चात् उस अध्यात्मरामायण के माहात्म्य का वर्णन है, जो शङ्कर रूप पर्वत से निकल कर रामरूप समुद्र में मिलकर सम्पूर्ण त्रिलोकी को पवित्र करने वाली है।

ग्रन्थारम्भ में ही कथा नहीं प्रवाहित हुई है। सूत जी सर्वप्रथम बताते हैं कि साक्षात् पद्मयोनि ब्रह्मा से भगवान् नारद, कलिकाल आने पर नष्टबुद्धियों का परलोक सुधारने का उपाय पूछते हैं। उनकी जिज्ञासा पर ब्रह्माजी कहते हैं कि पूर्वकाल में पार्वती जी ने शङ्कर से श्रीराम-तत्व को जानने की जिज्ञासा की थी। वह गूढ़ रहस्य अध्यात्मरामायण नाम से विख्यात हुआ। उसी के पठन-पाठन से लोग शुभ-गति को प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार पुरूषोत्तम भगवान् राम के सनातनतत्व की जिज्ञासा पार्वती के द्वारा करने पर भगवान् शङ्कर राम का परम-तत्व बताते हैं। जिसमें वे राम का वर्णन करते हैं, जो प्रकृति से परे निरूपाधिक और निरंजन हैं। भगवान् शङ्कर पार्वती से आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप का भी विवेचन करते हैं। इसी प्रसङ्ग में जब पार्वती के द्वारा शङ्का होती है कि कुछ लोग कहते हैं कि ब्रह्म होकर भी राम माया से संवृत होकर आत्मरूप को नहीं जानते थे। यदि वे जानते थे तो मानव के समान आचरण क्यों किया यदि वे अन्य सामान्य जीवों के समान् थे तो उनका भजन क्यों किया जाना चाहिये इत्यादि संशयों के छेदन हेतु शङ्कर राम हृदय तथा सीता राम और हनुमान के मोक्ष साधन रूप संवाद का वर्णन करते हैं। इसमें ऐसा वर्ण है कि पूर्वकाल में वन से अयोध्यापुरी लौटने पर हनुमान् को राम के कहने पर सीताजी ने राम का निश्चित तत्व सुनाया। उन्होंने कहा कि राम साक्षात् ब्रह्म हैं और सीता संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाली मूल-प्रकृति हैं, जो राम की सन्निधि मात्र से ही इस विश्व की रचना करती हैं। अत: राम के जन्म से लेकर रावण-विनाश-पर्यन्त जितने भी कार्य हैं, वे सब मूलप्रकृति (माया) के द्वारा किये गये हैं। किन्तु अविद्यावश लोग इन्हें सर्वात्मा राम में आरोपित कर देते हैं। तत्पश्चात् राम स्वयं हनुमान् को आत्मा अनात्मा और परमात्मा का तत्व सुनाते हैं। यह

तात्विक विवेचन आत्मा रूप राम का हृदय है। इसे राम ने हनुमान् को और शङ्कर ने पार्वती को सुनाया।

इस प्रकार राम-तत्व की जिज्ञासा के उपरान्त पार्वती ने संक्षेप में राम-कथा सुननी चाही। उनकी इच्छा पर शङ्कर ने महान् अध्यात्मरामायण सुनायी।

बालकाण्ड का कथा-क्रम :-

संक्षेप में बाल-काण्ड की कथा इस प्रकार है। राक्षसों के भार से व्यथित पृथ्वी ब्रह्म के पास जाती है। वहाँ से, ब्रह्मा ध्यानस्थ होकर दु:ख निवृति के सम्पूर्ण उपाय जानकर, देवताओं सहित क्षीरसागर के तट पर जाते हैं। वहाँ विष्णु के प्रकट होने पर ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा स्तुति किये जाने के अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु से मनुष्य रूप धारण कर रावण के विनाश के लिए कहते हैं। वहीं पर वे बताते हैं कि उन्होंने उसकी मृत्यु मनुष्य के हाथ विरचित की है।

तत्पश्चात् भगवान् उन्हें दशरथ के यहाँ पुत्र रूप से पृथक्-पृथक् चार अंशों में उत्पन्न होने का आश्वासन देते हैं। ब्रह्मा देवताओं से अपने अंश से वानरवंश में पुत्र उत्पन्न करने को कहते हैं। इसके पश्चात् दशरथ के पुत्रेष्टि-यज्ञ तथा पायसांश से रामादि चारों भाइयों के जन्म का वर्णन है। जन्म के पश्चात् इनके नाम संस्करण होते हैं। राम की बाल-क्रीड़ाओं का, माखन चुराने का तथा नटखटी का भी वर्णन होता है। उपनयन के पश्चात् वशिष्ठ के संरक्षण में ये विद्याभ्यास करते हैं। इसके पश्चात् विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण-याचना प्रसङ्ग आता है जिसका प्रमुख उद्देश्य राम-सीता-संयोग कराना है। राम, अयोध्या से जाने पर ताटका-वध करते हैं। कामाश्रम नामक स्थान में मारीच-सुबाहु का दमन होता है। जनक-यज्ञ को आगे देखने जाते समय मार्ग में वे शाप-युक्ता अहल्या का उद्धार करते हैं।

इसके बाद धनुर्भङ्ग और सीता-विवाह का वर्णन है। इसी अवसर पर जनक द्वारा सीता-जन्म का वर्णन है तथा सीता राम-विवाह के रहस्य का वर्णन भी जनक वशिष्ठ व विश्वामित्र से करते हैं - जिसे उनको नारद ने बताया था। इसके पश्चात् बारात् विदा होने पर राम-परशुराम-भेंट का वर्णन होता है।

राम के विष्णु-रूप को पहचान कर वे उन्हें प्रणाम कर महेन्द्र पर्वत पर चले गये और प्रसन्नतापूर्वक राजा दशरथ ने राम व चारों पुत्रों और पुत्र-बहुओं सहित अयोध्या में प्रवेश किया।

बालकाण्ड की कथा की तुलनात्मक समीक्षा

वाल्मीकि रामायण में प्रथम सर्ग में ही नारद वाल्मीकि से अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की कथा कहते हैं।[1] द्वितीय सर्ग में इसी कथा को श्लोकबद्ध करने का आदेश ब्रह्मा जी देते हैं।[2] फिर अपनी दिव्यदृष्टि से राम के चरित्र को जान लेते हैं और उसका वर्णन करते हैं तथा वाल्मीकि स्वरचित राम-कथा को कंठस्थ कराते हैं जिसका वे राम-सभा में गान करते हैं।

अध्यात्मरामायण में संवाद-परम्परा कुछ भिन्न है। इसका प्रारम्भ शङ्का-समाधान के रूप में होता है। अध्यात्मरामायण में पार्वती के द्वारा राम के अलौकिक रूप पर शङ्का[3] व्यक्त करने पर शिवजी उनकी शङ्का के निवारणार्थ राम-कथा सुनाते हैं।[4] शिव राम के अनन्य भक्त हैं। पार्वती के द्वारा रामकथा को विस्तार पूर्वक सुनने की इच्छा करने पर वे गुप्त से भी गुप्त परम श्रेष्ठ अध्यात्मराम के चरित्र को सुनाते हैं जिसे उन्होंने राम के मुख से सुना है और जो तीनों तापों को शान्त करने वाला है।[5] अध्यात्मरामायण में राम जिज्ञासा से ही कथा का आरम्भ होता है जिसे सुनकर पार्वती की संशय-ग्रन्थि टूट जाती है।[6], इस प्रकार के प्रारम्भ का उद्देश्य राम के ब्रह्मत्व का यथार्थ बोध कराना है, जो राम हृदय तथा राम के स्वरूप वर्णन के माध्यम से

---

1 वा० रा० 1/1/8 से 97 तक

2 वही 1/2/31

3 वदन्ति केचित्परमो षि राम: स्वाविद्ययासंवृतमात्मसंज्ञम् । ।3 ।
तथा - जानाति नैवं यदि केन सेव्य: , समोहि सर्वेस्पि जीव जातै : । ।4
- अ० रा० स० 1/13, 14

4 अ० रा० 1/2, 4, 6 बाल०

5 अ० रा० 1/11 बालकाण्ड

6 अ० रा० 2/1 बालकाण्ड

पूरा होता है। संक्षेप में राम तत्व को जानने के उपरान्त पार्वती स्पष्ट रूप से कथा सुनना चाहती हैं और अज्ञानजन्य दु:ख को दूर करने वाली रामकथा शङ्कर जी उन्हें सुनाते हैं।[1]

राम-जन्म का कारण :-

प्राय: प्रत्येक राम-कथा में राम जन्म का कारण रावण का विनाश ही है। वाल्मीकि रामायण में नारद से राम कथा सुनने के पश्चात् स्वानुभूति के आधार पर ही वाल्मीकि ने राम का वृत वर्णित किया। अध्यात्मरामायण में रामचरित्र का वर्णन करने के पूर्व रामजन्म के कारणों का भी वर्णन हुआ है। इस प्रसङ्ग में रावण से त्रस्त पृथ्वी के द्वारा गोरूप धारण करके पहले देवताओं और फिर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के समीप जाने का वर्णन है।[2] ब्रह्मा ध्यानावस्थित हो दु:ख - निवृति का सम्पूर्ण उपाय जान लेते हैं और समस्त देवताओं के सहित क्षीर-सागर के तट पर जाकर सर्वज्ञ भगवान् विष्णु की स्तुति करते हैं।[3] वहां विष्णु प्रकट होते हैं। उनकी स्तुति के अनन्तर ब्रह्मा उनसे रावण के विनाश के लिये मनुष्य रूप में अवतार लेने के लिये कहते हैं क्योंकि उसकी मृत्यु उन्होंने मनुष्य के हाथ से कल्पित की थी।[4] विष्णु दशरथ के यहां पुत्र रूप से पृथक् पृथक् चार अंशों में प्रकट होने के लिये कहते हैं।[5] ये दशरथ और कौशलया पूर्वजन्म में कश्यप और अदिति थे जिनके तप से प्रसन्न होकर विष्णु ने उन्हें पुत्र रूप से प्राप्त होने का वर दिया था।

विष्णु के अन्तर्हित होने पर ब्रह्मा ने सभी देवताओं से अपने अंश से वानरवंश में पुत्र उत्पन्न कर भगवान् राम की सहायता करने के लिये कहा।[6]

---

1 अ० रा० 2/5 बालकाण्ड

2 अ० रा० 1/2/62

3 अ० रा० 1/1/12,13

4 अ० रा० 1/2/24

5 अ० रा० 1/2/27

6 अ० रा० 1/2/19-30

पुत्रेष्टि-यज्ञ :-

वाल्मीकि-रामायण में पुत्र शोक से दुःखी दशरथ अश्वमेघ एवं पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करने का संकल्प करते हैं। अपने मन्त्रियों से ऋष्यशृङ्ग का वृतान्त सुनकर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। तदन्तर पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करते हैं। इससे यज्ञ पुरूष ने प्रसन्न होकर पुत्र देने वाला पायस दशरथ को दिया जिसे वे अपनी पत्नियों में विभाजित करते हैं। इसी से रामादि का जन्म होता है। अध्यात्मरामायण में दशरथ केवल पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करते हैं। अध्यात्मरामायण में वर्णन में विस्तार नहीं है। रामायण में विवरणात्मक चित्रण किया गया है।[1] अध्यात्मरामायण में वे वसिष्ठ के परामर्श पर शान्ता के पति ऋष्यशृङ्ग को बुलाकर पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करते हैं।[2] इसमें अग्निदेव स्वयं प्रकट होकर राजा दशरथ को पुत्र-प्रदायिनी-हव्य देकर तथा रानियों में विभाजित करने को कह कर अदृश्य हो जाते हैं।[3] स्वयं हव्य-वाहन यह भविष्यवाणी करते हैं कि उस दिव्य पायस से साक्षात् परमात्मा पुत्र-रूप से दशरथ के यहाँ अवतरित होंगे।[4] अध्यात्मरामायण में ऋष्यशृङ्ग आनयन तथा शान्ता से उनके विवाह आदि का विस्तृत वर्णन नहीं है। वाल्मीकि-रामायण में यज्ञ-मंडप में ही एकत्रित देव, ऋषि आदि का भी प्रसङ्ग है, जिसमें सबने मिलकर रावण नाश का निर्णय किया। अध्यात्मरामायण में इस प्रकार का वर्णन नहीं है। वाल्मीकि-रामायण में यज्ञ-सभा में एकत्र देवता ब्रह्मा से रावण-विनाश की प्रार्थना करते हैं और ब्रह्मा उपाय सोचकर श्रीहरि से रावण-वध के लिये मनुष्य रूप में अवतीर्ण होने की प्रार्थना करते हैं।[5] यज्ञ-मंडप में ही विष्णु प्रकट होकर देवताओं को आश्वासन देते हैं।[6] तत्पश्चात्

---

1 वा०रा० 1/13/14

2 अ० रा० 1/3/5

3 अ० रा० 1/3/9

4 अ० रा० 1/3/8

5 वा०रा० 1/15/5, 12, 13, 26

6 वा०रा० 1/15/30

प्रजापत्य पुरूष राजा को सीर अर्पण करता है। अध्यात्मरामायण में पुत्रेष्टि-यज्ञ के पूर्व ही यह वर्णन है। वहां भगवान् क्षीर सागर के तट पर प्रकट होते हैं। यहीं दोनों में अन्तर है।

राम-जन्म :-

राम-कथा के विकास के साथ रामभक्तों का मन जन्म सम्बन्धी अलौकिक घटनाओं की तरफ आकर्षित हुआ। इस प्रकार का प्रयास अध्यात्म-रामायण में हुआ है। वाल्मीकि-रामायण में राम-जन्म का उल्लेख साधारण है। अध्यात्मरामायण में राम अपने चतुर्भुज रूप ﴾विष्णु रूप﴿ में मां कौशल्या को दर्शन देते हैं।[1] यह वर्णन सम्भवत: भागवत् के कृष्ण जन्म के समान ही हुआ है। भागवत में जन्म होते ही कृष्ण अपना शङ्ख, चक्र, गदादि आयुधों से युक्त चतुर्भुज रूप वासुदेव व देवकी को दिखाते हैं। चतुर्भुजं शङ्ख गदायुधम् इस रूप को देखकर दोनों उनकी स्तुति करते हैं। अध्यात्मरामायण में भी कौशल्या विष्णु के रूप को देखकर विस्मय से युक्त होकर स्तुति करती हैं।[2] वे कहती हैं कि राम अनन्त परमात्मा और पूर्ण पुरूषोतम हैं। तथापि भक्त-वत्सलता से ही उन्होंने कौशल्या के गर्भ से जन्म लिया। अनेक प्रकार से साक्षात् विष्णु की स्तुति करती हुई वे कहती हैं - आप अपने अलौकिक रूप का उपसंहार कर आनन्ददायक बालक रूप धारण करिये। उनके कथन पर भगवान् राम कमनीय शिशु का रूप धारण करते हैं।[3] राम के विषय में यह वर्णन सर्वप्रथम अध्यात्म-रामायण में हुआ है। बाद में इसके अनुकरण पर आनन्द रामायण तथा रामचरितमानस में इस प्रकार का वर्णन हुआ है। तुलसी के मानस में भी राम का चतुर्भुज रूप दिखाया गया है। अध्यात्मरामायण तथा मानस दोनों में कौशल्या राम के उस रूप की स्तुति करती हैं जो मन, वाणी

---

1 अ0 रा0 1/3/18

2 अ0 रा0 1/3/10 से 29 तक

3 अ0 रा0 1/3/25

से अगोचर है। यह विराट् रूप है जिसके उदर में अनेकों ब्रह्माण्ड परमाणुओं से दिखाई देते हैं।[1]

अध्यात्मरामायण में बाल-रूप को धारण करने के पहले राम कौशल्या से अपने मानव-रूप में जन्म लेने का कारण बताते हैं।[2] उसी समय वे कहते हैं कि कौशल्या ने अपने पूर्वजन्म के तप:स्वरूप ही उनका यह मोक्ष-प्रदायी रूप देखा है।[3] अन्त में राम कहते हैं कि इस सम्बाद को जो पढ़ेगा वह सारूप्य मुक्ति का अधिकारी होगा।[4]

नामकरण :-

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के जन्म के पश्चात् उनके नामकरण हुये। वाल्मीकि रामायण में वसिष्ठ ने चारों भाइयों का नामकरण किया।[5] अध्यात्म-रामायण में वर्णन कुछ नयापन लिये हुये है। राम का नाम 'यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्यया ज्ञान विप्लवे' के आधार पर तथा 'रमर्णाद्राम' के आधार पर राम रखा ।' भरणाद्भरतो' संसार का पोषण करने वाला भरत, सुलक्षण सम्पन्न लक्ष्मण (लक्ष्मण लक्षणान्वितम्) तथा शत्रु-घातक होने से शत्रुघ्न (शत्रुघ्नं शत्रुहतारं), इस प्रकार चारों भाइयों के नाम रखे गये हैं।[6]

बाल-क्रीडा :-

वाल्मीकि-रामायण में रामादि की बाललीलाओं का वर्णन नहीं है। अध्यात्मरामायण में कुछ श्लोकों में राम की बाल-लीला का वर्णन है।[7]

---

1 अ० रा० 1/3/24

2 अ० रा० 1/3/30, 31

3 अ० रा० 1/3/33

4 अ० रा० 1/3/34

5 वा०रा० 1/18/21, 22

6 अ० रा० 1/3/40, 42

7 अ० रा० 1/3/44 से 48 तक

वर्णन में सरसता तो है किन्तु कथाकार आध्यात्मवादी है और वह यह नहीं भूलता कि राम के समस्त कार्य उनकी माया के हैं। अतः वह बीच में इस बात का स्मरण करा देता है।[1] दशरथ के बुलाने पर जब भगवान् राम खेल में लगे रहने के कारण नहीं आते तो कौशल्या उनको पकड़ने जाती हैं पर पकड़ नहीं पातीं। क्योंकि जो योगिजनों के चित के एकमात्र आश्रय हैं, उन्हें मां कौशल्या कैसे पकड़ सकतीं। राम की बाल लीला के वर्णन-प्रसंग में राम की माखन-चोरी का भी वर्णन अध्यात्मरामायण में हुआ है, जिसमें वे छीके पर रखे बर्तन को डंडे से गिरा लेते हैं और वहां रखे दूध5दही को भरत-लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि बांट लेते हैं।[2] माखन-चोरी, बर्तनों का फोड़ना आदि का वर्णन स्पष्टतया भागवत्-पुराण के कृष्ण वर्णन पर निर्भर है।[3] यह वर्णन बाद में आनन्द रामायण[4] तथा मानस में अनुकृत हुआ है।

अध्यात्मरामायण में उपनयन के पश्चात् चारों भाइयों ने विद्याध्ययन किया। राम और लक्ष्मण धनुर्विद्या में निष्णात होकर वन को जाते थे व वहां सिंह व्याघ्रादि का शिकार करते थे और उनकी बातें अपने पिता को बताते थे। माता-पिता को प्रातः प्रणाम कर धर्म-शास्त्रों को सुनते थे।[5] वाल्मीकि-रामायण में वर्णन है कि वे वेदों के स्वाध्याय में, पितृ सेवा में तथा धनुर्विद्या के अभ्यास में लगे रहते थे।[6]

इस वर्णन के बाद ही अध्यात्मरामायण का कथाकार अपने मूल उद्देश्य राम के ब्रह्मत्व को बताने के लिये कहता है कि मनुष्यावतार लेकर

---

1 धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगिमनो गतिम् । 49 ।। - अ० रा० */3/49

2 अ० रा० 1/3/52 से 54 तक

3 भागवत् दशम् स्कन्ध, 8 वां अध्याय

4 आनन्द रामायण 1/2

5 अ० रा० 4/64/65

6 वा० रा० 1/19/36

राम ने समस्त कार्य किये, किन्तु विचार करने पर देखा जाय तो वे कुछ नहीं करते।[1]

विश्वामित्र - आगमन :-

अध्यात्मरामायण का यह प्रसङ्ग मूलत: वाल्मीकिरामायण की तरह है। वाल्मीकि-रामायण में ऋषि विश्वामित्र के द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना करने पर पुत्र-प्रेम के कारण राजा उन्हें मना कर देते हैं। इस पर विश्वामित्र क्रुद्ध हो उठते हैं, जिससे पृथ्वी कांप जाती है और देवता भयभीत हो जाते हैं। तब वसिष्ठ उन्हें कर्तव्य तथा धर्म का उपदेश देते हैं।[2] वसिष्ठ के समझाने पर तथा धर्म व कर्तव्य को बताने पर दशरथ राम-लक्ष्मण को ऋषि के साथ भेज देते हैं।

अध्यात्मरामायण में विषय दूसरी तरह से दिया गया है। उसमें थोड़ा सा अन्तर है। ऋषि विश्वामित्र को मालूम हो गया था कि अपनी माया से परमात्मा ही श्रीराम के रूप में प्रकट हुये हैं। उन्हीं का दर्शन करने के लिये ऋषि अयोध्या जाते हैं।[3] यथाविधि स्वागत कर जब राजा उनका मन्तव्य पूछते हैं तो वे अपनी यज्ञ रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को मांगते हैं तो राजा इस सम्बन्ध में वसिष्ठ से मन्त्रणा करते हैं। यहां पर ऋषि का अग्निरूप नहीं दिखाई देता है। दशरथ भी उनसे भयभीत नहीं है। ऋषि के द्वारा याचना के पश्चात् वे वसिष्ठ से अपना हित पूछते हैं।[4] उस समय वसिष्ठ जी साक्षात् पुराण पुरूष के राम-रूप में प्रकट होने का अति गोपनीय रहस्य बताते हैं।[5] वे कहते हैं, राम मनुष्य नहीं साक्षात् पुराण-पुरूष हैं। यहीं पर कश्यप और अदिति के, दशरथ तथा कौशल्या के रूप में अवतार लेने का भी वर्णन वसिष्ठ करते हैं। वे

---

1 अ० रा० 1/4/66

2 वा०रा० 1/21/5 से 21 तक

3 कदाचित्कौशिकोभ्यागादयोध्यां ज्वलनप्रभ:,
द्रष्टुं रामं परात्मानं जातंज्ञात्वा स्वमायया ।। 1/4/1 अ० रा०

4 अ० रा० 1/4/11

5 अ० रा० 1/4/12

बताते हैं कि विष्णु राम रूप से, शेष लक्ष्मण तथा शङ्ख व चक्र भरत तथा शत्रुघ्न रूप से अवतरित हुये हैं।[1] विश्वामित्र राम और सीता का ‡ जो योगमाया रूप से जनक के यहां अवतरित हुई हैं‡[2] संयोग कराने ही आये हैं।[3] यह रहस्य जानकर तथा राम को साक्षात् ब्रह्म मानकर और उनके पूर्व नियोजित कार्यों को समझकर वे पुत्रों को विश्वामित्र को सौंप देते हैं। विश्वामित्र उन्हें बला, अतिबला नाम की दो विद्यायें देते हैं।

<u>ताटका-वध</u> :-

ऋषि के साथ गङ्गा को पारकर राम ताटका वन में आते हैं और विश्वामित्र के कहने पर उस राक्षसी का वध करते हैं। वाल्मीकि-रामायण में यह शाप-ग्रस्त यक्षिणी है, किन्तु इसके उद्धार के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है। अध्यात्मरामायण में शापवश पिशाचता को प्राप्त हुई यक्षिणी राम की कृपा से सर्वालङ्कारभूषिता-सुन्दरी हो उन्हें प्रणाम कर उनकी आज्ञा से स्वर्गलोक चली गई।[4]

अध्यात्म-रामायण की रचना का उद्देश्य राम के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करना है। उन्होंने पतितों के उद्धार के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया है। अतः ग्रन्थ में राम की कृपा से ताटका के स्वर्ग-गमन का वर्णन हुआ है। ताटक-वध से प्रसन्न होकर विश्वामित्र राम को रहस्य और मन्त्रादि के सहित अस्त्र-शस्त्र देते हैं।[5] इसके पश्चात् कामाश्रय नामक वन में मारीचि

---

1 अ0 रा0 1/4/17, 18

2 अ0 रा0 1/4/18

3 अ0 रा0 1/4/19

4 ततोऽइति सुन्दरी यक्षी सर्वाभरणभूषिता ।
शापात्पिशाचतां प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादत: ।

अ0 रा0 1/5/ 31, 32

5 अ0 रा0 1/5/33

और सुबाहु के बध का वर्णन है। वाल्मीकिरामायण में ताटका एवं सुबाहु वध का अत्यन्त विशद चित्रण हुआ है।[1] क्योंकि वाल्मीकि ने राम के पराक्रम सम्बन्धी प्रसंगों का विस्तृत विवेचन किया है। उपरोक्त प्रसङ्गों में राम के पराक्रम का उल्लेख 9 सर्गों में किया गया है।[2]

इसके पश्चात् विश्वामित्र राम के साथ जनक का यज्ञ देखने के लिये जनकपुर की ओर जो हैं। गङ्गा के निकट पहुंच कर वे गौतम के आश्रम में आते हैं। जीवों से शून्य उस रम्य आश्रम को देखकर राम को जिज्ञासा होती है। राम द्वारा पूछने पर उन्हें विश्वामित्र आश्रम का पूर्व वृतान्त सुनाते हैं।[3] वाल्मीकि रामायण में गङ्गा नदी के तट पर स्थित इस समृद्ध वन के विषय में जिज्ञासा करने पर[4] विश्वामित्र उस देश का वृतान्त बताते हुए 16 सर्गों में अनेक कथाओं का उल्लेख करते हैं, जिनमें मुख्यत: विश्वामित्र के पूर्वजों की कथा,[5] शङ्कर-विवाह एवं कार्तिकेय के जन्म की कथा,[6] राजा सगर की कथा[7] इत्यादि हैं। रामायण में इन प्रसङ्गों के बाद ही अहल्योद्धार का प्रसङ्ग आता है। अध्यात्मरामायण में मिथिला जाते हुये गङ्गा के निकट ही[8] यह (अहल्या का) स्थान है और तुरन्त ही इसका वर्णन है। अन्य प्रसङ्गों का वर्णन वहां नहीं है।

अहल्योद्धार :-

वाल्मीकि कथा में यथार्थता और स्वाभाविकता है। वहां पर तो

---

1 वा०रा० 1/स० 26, 1/स० 30

2 वा०रा० 1/22 से 30 सर्ग तक ।

3 अ० रा० 1/5/17, 18, 19

4 वा०रा० 1/31/23 भगवन् कोन्वयं देश: समृद्ध वन शोभित:
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते वक्तुमर्हसि तत्वत: ।

5 वा०रा० 1/32 से 1/34 सर्ग तक

6 वा०रा० 1/36 से 1/37 तक

7 वा० रा० 1/38 से 1/44 तक

8 अ० रा० 1/4/14, 15

गौतम का वेष धारण किये हुए इन्द्र ने जब अहल्या से समागम करना चाहा[1] तो गौतमवेषधारी इन्द्र को पहचानकर भी उसने सहर्ष प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।[2] इतना ही नहीं सन्तुष्ट चित होकर उसने अपनी रक्षार्थ देवेश्वर को जाने के लिये कहा - वह कहती है कि कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमित: प्रभो।[3] अध्यात्म-रामायण में वर्णन इस प्रकार का नहीं है। वहां पर इन्द्र ने छल से गौतम का रूप धारण कर अहल्या के साथ रमण किया।[4] अपना रूप धारण कर इन्द्र को जाते देख गौतम उसे सहस्त्रभग[5] होने का शाप देते हैं। वाल्मीकि रामायण में वे कहते हैं विफलस्त्वं भविष्यसि (49/27), अहल्या को देखकर वे कहते हैं कि तू आश्रम में शिला में निवास कर।[6] वे उसे निराहार रहकर धूप, वायु और वर्षा को सहन करती हुई दिन रात तपस्या करने का आदेश देते हैं। अध्यात्मरामायण में कई हजार वर्षों बाद राम के चरण स्पर्श से ही उसकी मुक्ति होगी।[7] वाल्मीकि ने भी ऐसा ही वर्णन किया है। वहां वे उसे भस्मशायिनी होकर अदृश्य रूप से आश्रम में निवास करने को कहते हैं।[8] वाल्मीकि-रामायण में उल्लेख है कि राम के दर्शन और उनके आतिथ्य से उसकी मुक्ति होगी किन्तु अध्यात्मरामायण में राम-चरण-रज का महत्व बढ़ाने के लिये वर्णन हुआ है कि अहल्या की आश्रयभूत शिला पर उनके चरणों के स्पर्श से ही मुक्ति होगी।[9] विश्वामित्र, अलक्षिता अहल्या के उद्धार के लिये राम से कहते हैं। तब राम चरण से शिला का स्पर्श कर अहल्या को देखते हैं और उसे प्रणाम करते हैं। वाल्मीकि-रामायण में अहल्या सभी प्राणियों से अलक्षित है।

---

1 अ० रा० 1/49/19

2 मुनिवेषं सहस्त्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन। मतिं चकार दुर्मेधादेवराज: कुतूहलात्।।
- 49/स० 19 ।

3 वा० रा० 1/49/20/बाल०

4 अ० रा० 1/5/22

5 योनिलम्पट दुष्टात्मन सहस्त्रभगवान्भव । अ० रा० 1/5/26

6 अ० रा० 1/5/26, 27

7 अ० रा० 1/5/28/32

8 वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी । वा०रा० 1/49/30

9 वा०रा० 1/49/32

10 लौकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरै: । वा०रा० 50/13

राम के दर्शन से वह तपस्विनी सबको दिखाई देने लगी।[1] वहाँ राम व लक्ष्मण उसके पैर छूते हैं और अहल्या उनका आतिथ्य करती है।[2] अध्यात्मरामायण में चरण-रज से पवित्र हुई अहल्या राम की स्तुति भी करती है। जिससे राम के परब्रह्मत्व का निरूपण होता है।[3] इसमें अहल्या अपने पूर्व रूप को प्राप्त हो स्तुति करती हुई कहती है - उनका मैं अपने हृदय में निरन्तर ध्यान करती हूँ जो राम परमात्मा हैं। माया से परे शुद्ध आत्म-ब्रह्म है। वही पुराण पुरूष सब के हृदय में शयन करने वाले अन्तर्यामी और स्वयं प्रकाश हैं। अपने माया के गुणों में प्रतिबिम्बित होकर ही वे विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र तीनों रूपों को धारण करते हैं। इसके बाद भी राम के ईश्वर रूप की अनेक प्रकार से व्याख्या करते हुये अहल्या ने प्रार्थना की है। इतने विस्तार के साथ की गई स्तुति हमें अन्यत्र नहीं प्राप्त होती। वस्तुत: कथाकार के भक्त-हृदय के ये उद्गार हैं। स्तुति के अंत में कहा भी गया है - जो पुरूष भक्ति युक्त होकर अहल्या के किये स्तोत्र का पाठ करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है और ब्रह्म को प्राप्त होता है। अध्यात्मरामायण में भगवान् की स्तुति कर वह उनकी आज्ञा से पति के पास चली जाती है।[4] वाल्मीकि-रामायण में भी इसी श्लोक के मिलन का वर्णन है। तप:शक्ति से विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त हुई अहल्या को पाकर गौतम सुखी होगये।[5]

केवट प्रसङ्ग :-

अध्यात्मरामायण में अहल्योद्धार के पश्चात् केवट प्रसङ्ग आता है, जो अध्यात्मरामायकार की अपनी मौलिक योजना है। मिथिला जाते समय राम गङ्गा को पार करते हैं। उस समय केवट बिना चरण-रज धोये उनको

---

1 वा० रा० 1/50/16 2 वा०रा० 1/50/17, 18

3 अ० रा० 1/5/43 से 60 तक

4 परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौपतिम् - अ० रा० 1/5/61

5 वा०रा० 1/50/21, 22 श्लोक

पार नहीं कराता है। क्योंकि बेचारे ने गौतम-पत्नी का वृतान्त सुन रखा है। वह उनके चरणों की धूल को मानुषीकरण चूर्ण कहता है, जिसने शिला को स्त्री बना दिया।[1] इस प्रसङ्ग का मूल उद्देश्य राम की चरण-रज की महत्ता का वर्णन करना है। बाद में तुलसी ने राम-वन-गमन के अवसर पर केवट के दर्शन कराये।

सीता-विवाह :-

वाल्मीकि-रामायण में अहल्योद्धार के पश्चात् विश्वामित्र राजा जनक के यज्ञ में जाते हैं वहाँ जनक के पुरोहित शतानन्द, मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र की पूर्व तपस्यादि का उल्लेख करते हैं।[2] शतानन्द द्वारा विश्वामित्र के पूर्व वृतान्तों के कथन के दूसरे दिन विश्वामित्र जनक से शिव धनुष को देखने का अनुरोध करते हैं।[3] राजा जनकधनुष का पूर्व-माहात्म्य वर्णित करते हैं और उसे राम को दिखाते हैं।[4] राम जब धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हैं तो वह टूट जाता है। वाल्मीकि रामायण में जनक के मंत्रियों द्वारा धनुर्भङ्ग का समाचार सुन-कर दशरथ मिथिला आते हैं।[5] यज्ञ-मण्डप में दोनों का परिचय होता है।[6] तदनन्तर वैदिक रीति से सब कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।[7] वाल्मीकि रामायण में राजाओं द्वारा मिथिला घेर लेने तथा जनक का राजाओं से युद्धादि का भी वर्णन है, जिसे वे विश्वामित्र से बताते हैं।

अध्यात्मरामायण में केवट प्रसङ्ग के पश्चात् मिथिला पहुंचने पर जनक जी विश्वामित्र का आतिथ्य करते हैं और राम का परिचय प्राप्त कर उनके पराक्रम के विषय में सुनते हैं।[8] वे विश्वामित्र से कहते हैं कि यदि राम

---

1 अ० रा० 1/6/3,5 श्लो० /बाल०

2 वा०रा० 1/55 से 1/65 तक

3 वा०रा० 1/66/5,6

4 वा०रा० 1/67 / 8 से 12

5 वा० रा० 1/68

6 वा० रा० 1/70/17।

7 वा० रा० 1/72   8 अ० रा० 1/6/10/14

धनुष को तोड़ देंगे तो वे अपनी पुत्री राम को दे देंगे।[1] वहां पर राजाओं के सम्मुख राम ने धनुष को तोड़ डाला।[2] वहीं पर सुन्दरी सीता उन्हें जय-माला पहनाती हैं। जनक मुनिवर कौशिक से दशरथ के पास दूतों को भेजने के लिये कहते हैं। ग्रन्थ में दशरथ का राम की माताओं सहित मिथिला आने का वर्णन है। पिता की उपस्थिति में चारों भाइयों का विवाह होता है। अध्यात्मरामायण में विवाह मण्डप काबड़ा भव्य वर्णन है।[3] विवाह के पश्चात् जनक ने उन्हें जानकी के विषय में बताया था।[4] महर्षि नारद ने जनक से कहा था कि राम विष्णु के अवतार हैं और जानकी लक्ष्मी हैं। अत: सीता का विवाह राम से करना किसी अन्य से नहीं।[5] यही कारण था कि जनक ने शिव धनुष को पण बनाया। इसी प्रसङ्ग में हल के अग्रभाग से सीता की उत्पति का वर्णन भी आया है।[6] विवाह के पश्चात् दहेज में सौ करोड़ दीनार, रथ, घोड़े, हाथी, दासियां आदि देने का वर्णन है। तथा सीता को माताओं के द्वारा पातिव्रतधर्म की शिक्षा देने का वर्णन है।[7]

परशुराम-वृतान्त :-

वाल्मीकि रामायण में परशुराम का आगमन बारात विदा होने के पश्चात् मार्ग में होता है। अध्यात्म-रामायण में भी इसी स्थल पर परशु-राम से भेंट होती है।[8] वाल्मीकि रामायण में राम तथा परशुराम का संक्षिप्त प्रसङ्ग है।[9] इसमें कुछ हुये परशुराम राम को द्वन्द्व युद्ध के लिये

---

1 अ0 रा0 1/6/19/20 2 अ0 रा0 1/6/31

3 अ0 रा0 1/6/46, 48

4 अ0 रा0 1/6/58 से 66 तक

5 अ0 रा0 1/6/65

6 अ0 रा0 1/6/59

7 अ0 रा0 1/6/81

8 अ0 रा0 1/7/6, 7

9 वा0 रा0 1/75 से 77 तक

कहते हैं। राम परशुराम के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर अपने पराक्रम का परिचय देते हैं तब परशुराम राम के उस बाण का लक्ष्य अपने परलोकों कोबताते हैं और राम को विष्णु समझकर उन्हें प्रणाम कर चले जाते हैं। अध्यात्मरामायण में घटना तो पूर्ण रूप से यही है, किन्तु रामायण का विशेष रूप से आध्यात्मिक होने के कारण परशुराम की अनन्य भक्तिपूर्ण स्तुति का वर्णन हुआ है।[1] परशुराम राम के परमेश्वर रूप को पहचानकर उनकी स्तुति करते हैं। संसार की नश्वरता तथा माया आदि का वर्णन कर वे राम-चरणों में जन्मान्तर तक भक्ति की कामना करते हैं। इस प्रसङ्ग में परशुराम के द्वारा चक्रतीर्थ में विष्णु के तपस्या करने का वर्णन करते है।[2] विष्णु की आज्ञा से तथा उनके चिदंश से युक्त होकर परशुराम द्वारा कार्तवीर्य का वध तथा इक्कीसबार क्षत्रियों का वध करने का वर्णन है। विष्णु ने उन्हें त्रेता-युग में राम रूप से अपनी परम शक्ति से युक्त होकर दर्शन देने व अपना तेज पुन: लेने के लिये कहा था।[3] राम के दर्शन करने पर वह तेज पुन: राम में चला जाता है।[4] प्रार्थना करने पर वह अपने समस्त पुण्य कर्मों को राम के वाण का लक्ष्य बनाकर स्वयं महेन्द्र पर्वत पर चले जाते हैं।[5] परशुराम का रूप अध्यात्मरामायण में भक्त का रूप है और वे भगवान् राम से भक्तों का सङ्ग व भक्ति की कामना करते हैं।[6] एक स्थल पर वे कहते हैं कि भक्ति द्वारा राम की उपासना करने पर माया शनै: शनै: चली जाती है। और भी, भक्ति से शून्य पुरूष को मुक्ति और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।[7] परशुराम के चले जाने के पश्चात् सभी प्रसन्न मन

---

1 अ० रा० 1/7/29 से 49 तक

2 अ० रा० 1/7/21/22

3 अ० रा० 1/7/ 24 से 28 तक

4 अ० रा० 1/7/29

5 अ० रा० 1/7/50

6 अ० रा० यदि मे नुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन ।
त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादेदृढ़ाभक्ति: सदास्तु मे ।। 1/7/48

7 अ० रा० 1/7/39/40, 41

हो अयोध्या चले जाते हैं।[1] यहीं पर बालकाण्ड की कथा समाप्त हो जाती है।

अयोध्याकाण्ड का कथाक्रम

अध्यात्मरामायण में अयोध्याकाण्ड का कथाक्रम — अध्यात्मरामायण में विवाह के पश्चात् अयोध्या में निवास करते हुये भगवान् राम से नारद जी मिलने आते हैं। अनेकों प्रकार से राम की स्तुति करने के उपरान्त वे राम को रावण-विनाश की प्रतिज्ञा का स्मरण कराते हैं। भगवान् राम नारद से कहते हैं कि वे कल ही रावणवधार्थ दण्डकारण्य जायेंगे। इसके बाद वशिष्ठादि के परामर्श से दशरथ राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। वशिष्ठ उनको उपवास तथा संयम आदि का विधान बताते हैं। भगवान राम ने रावण वध के लिये वे उसे प्रकट न कर राम को शिष्य की भांति उपदेश देते हैं। इसके पश्चात् कौशल्या राज्याभिषेक का समाचार सुनकर भी दशरथ की ओर से शइ्0काकुला हैं। इसी समय, जब कि अभिषेक की तैयारियां हो रही हैं, देवताओं ने सरस्वती को अभिषेक में विघ्न डालने के लिये भू लोक में भेजा और सरस्वती ने मन्थरा व कैकेयी में प्रवेश किया। इसके पश्चात्, मन्थरा द्वारा कैकेयी को उकसाने पर कैकेयीपूर्वनिक्षिप्त दो वर जिनको उसे देवासुर संग्राम के समय दशरथ ने दिया था, मांगती है। वचनबद्ध दशरथ के वरदान देने तथा पुत्र-शोक में व्याकुल होने का वर्णन है।तदनन्तर सुमन्त्र द्वारा राम को बुलाया जाता है। राम पिता के शोक का कारण जानकर तुरन्त वन जाने को तैयार होते हैं। पिता को सान्त्वना देकर वे मां कौशल्या से मिलने आते हैं। कौशल्या के दु:खी होने पर राम उन्हें सुख-दु:खादि की शृइ्0खला और उसमें बंधे हुए जीव तथा नित्यमुक्त आत्मा तथा संसार की नश्वरता आदि तत्वों का उपदेश देते हैं। ज्ञानोपदेश देकर वे मां से आशीर्वाद लेकर विदा होते हैं। इसके बाद सीता से मिलने पर प्रभु उन्हें जंगल के कष्टों का विवरण देते हैं, परन्तु उनकी अनन्य निष्ठा देखकर उन्हें भी अनुमति देते हैं। लक्ष्मण के आग्रह

---

1 अ0 रा0 1/7/52

पर अन्त में उन्हें भी स्वीकृति देते हैं। इसके बाद राम-वन-गमन तथा शोकाकुल अयोध्या का वर्णन है। शोक सन्तप्त अयोध्या-वासियों को वामदेव, राम के विष्णु रूप में अवतार लेने का रहस्य बताते हैं।

इसी प्रसङ्ग में विष्णु के अन्य अवतारों काभी वर्णन है। राम का सर्वव्यापक रूप जानकर समस्त पुरजन शान्तिचित हो जाते हैं। गङ्गा के तट पर राम निषादराज गुह से मिलते हैं। वहाँ से गङ्गा पार कर वे क्रमशः भरद्वाज, वाल्मीकि आदि ऋषियों से मिलते हैं। इधर सुमन्त्र अयोध्या आते हैं। वहाँ पुत्र शोक से सन्तप्त दशरथ का स्वर्गवास हो जाता है। फिर भरत का ननिहाल से आने तथा अपनी माता के कार्यों पर पश्चाताप करने का वशिष्ठ की आज्ञा से पिता का अन्त्येष्टि-संस्कार करने का वर्णन है। दुःख से व्याकुल भरत वन को जाते हैं। मार्ग में वे गुरू और भरद्वाज से मिलते हैं। भगवान् राम और भरत के मिलन के पश्चात् भरत राम को पुनः अयोध्या चलने के लिये कहते हैं। वशिष्ठ के द्वारा नारायण राम के रहस्य को जानकर वे विस्मय व आश्चर्य से युक्त होकर राम की चरण-पादुकायें लेकर विदा होते हैं। इसी समय एकान्त स्थान में कैकेयी राम की स्तुति करती है, जातत्वज्ञान से युक्त है। अन्त में सभी अयोध्या वापस लौट जाते हैं। तब राम चित्रकूट का दर्शन करते हैं। अत्रि व उनकी पत्नी अनसूया से भेंट करते हैं। यहीं पर अयोध्याकाण्ड की कथा समाप्त हो जाती है। अनसूया सीता को पतिव्रत की शिक्षा देती हैं।

अयोध्याकाण्ड की कथा की तुलनात्मक समीक्षा

राज्याभिषेक :-

रामायण में उल्लेख है कि भरत की अनुपस्थिति में ही दशरथ राम का राज्याभिषेक कर डालना चाहते थे।[1] दशरथ इस प्रस्ताव के निमित सभा का आह्वान करते हैं। सभी लोग राम का गुण-गान करते हैं और इसका अनुमोदन करते हैं।[2] दशरथ राम को बुलाकर धर्म तथा नीति का उपदेश देते हैं। वे वसिष्ठ और वामदेव को राज्याभिषेक की तैयारी करने के लिये कहते हैं। वाल्मीकि-रामायण में दशरथ भरत की अनुपस्थिति में ही राम का अभिषेक करना चाहते हैं, क्योंकि संभव है कि धर्मात्मा होकर भी भरत को यह बात अच्छी न लगे। जैसा कि राजा सुमन्त्र द्वारा राम को आवश्यक बातें बताने के लिये पुन: बुलाने पर कहते हैं कि जब तक भरत नगर से बाहर हैं तब तक तुम्हारा अभिषेक हो जाना चाहिये।[3] वे कहते हैं कि यद्यपि भरत दयालु व जितेन्द्रिय हैं, किन्तु सत्पुरूषों का मन भी राग-द्वेषादि से युक्त हो जाता है।[4] अध्यात्मरामायण में दशरथ का यह रूप नहीं है। वहाँ पर वसिष्ठ से दशरथ राम के अभिषेक के बारे में परामर्श करते हैं और कहते हैं कि यद्यपि भरत ननिहाल में हैं, किन्तु वे राम का अभिषेक कल करना चाहते हैं और इस विषय में वे उनकी सम्मति चाहते हैं।[5] तब वसिष्ठ सुमन्त्र को अभिषेकार्थ माङ्गलिक कार्यों के लिये आज्ञा देते हैं। अध्यात्मरामायण में स्वयं वसिष्ठ राम को यह शुभ सम्वाद देते हैं और उनको संयमादि की शिक्षा देते हैं।[6]

---

1 वा०रा० 2/1,8

2 वा० रा० 2/2/20 से 54 तक

3 वा०रा० 2/4/25

4 वा० रा० 2/4/26

5 अ० रा० 2/2/4

6 अ० रा० 2/2/33 से 35 तक

उस समय वे कहते हैं - मैं आपके रावण-वध रूप कार्य को जानकर भी गुरू और शिष्य के अनुरूप व्यवहार करूंगा क्योंकि आपके भी सब कार्य माया के हैं। वसिष्ठ को ब्रह्मा जी से राम के अवतार का रहस्य मालूम है।[1]

कौशल्या को यह शुभ सम्वाद एक पुरूष जाकर देता है। वे राम के मंगलार्थ लक्ष्मी का पूजन करती हैं।[2] क्योंकि दशरथ कामी और कैकेयी के वशी हैं, अत: कौशल्या शङ्काकुला हैं।[3] वाल्मीकि रामायण में स्वयं राम यह शुभ सम्वाद माताओं को देते हैं। इसी बीच कैकेयी अभिषेक के कार्य में विघ्न उपस्थित करती है।

मन्थरा-कैकेयी प्रसङ्ग :-

वाल्मीकि-रामायण में कैकेयी को मन्थरा ने उभारा है। रामायण की मन्थरा प्रकृति से ही कुटिल चित्रित की गई है। वह कैकेयी की दासी है और स्वामिनी का हित व उन्नति चाहती है। उसका यही यथार्थ रूप है। वह कैकेयी को दशरथ से दो वर मांगने के लिए विवश करती है। आगे चलकर राम के विष्णुरूप में अवतार को बताने के लिये कैकेयी व मन्थरा को दोषमुक्त किया गया है और इसके प्रयास में कुछ कारणों की सृष्टि की गई है।

अध्यात्मरामायण में ऐसा वर्णन है कि देवताओं की स्तुति पर वाग्देवी ने मन्थरा और कैकेयी में प्रवेश किया।[4] देवताओं ने यह कार्य अभिषेक में विघ्न उपस्थित करने के लिये किया क्योंकि उनको रावण-वधार्थ रामका वन-गमन ही इष्ट था। अत: न कैकेयी दोषी है, न मन्थरा।

कैकेयी की वर-याचना :-

कैकेयी से राजा की भेंट एवं वर-याचना का प्रसङ्ग समान ही है।

---

1 अ० रा० 2/23 से 26 तक

2 अ० रा० 2/2/39/4

3 अ० रा० 2/2/43

4 अ० रा० 2/2/44, 45, 46

वाल्मीकि रामायण में कैकेयी दशरथ को वचन-बद्ध कर दोनों वरदान माँग लेती है।[1] इसमें ये वरदान दशरथ के पास न्यास-भूत थे। वाल्मीकि-रामायण में वर्णन है कि देवासुर संग्राम के समय कैकेयी ने रात्रि भर जाग कर दशरथ के प्राणों की रक्षा की थी।[2] अध्यात्म-रामायण में वर्णन है कि रथ की धुरी के निकल जाने पर कील के छिद्र में उसने अपना हाथ लगा दिया था।[3] वरदानों का स्मरण दिलाने वाली दोनों ग्रन्थों में मंथरा ही है।[4] राजा दशरथ को प्राय: सभी ने कामविवश चित्रित किया है। वाल्मीकिरामायण में कहा है - 'मन्मथशरैर्विद्धं कामवेगवशानुगम्' (2/11/1) । अध्यात्म-रामायण में वे स्वयं अपने को स्त्रीजित कहते हैं। कैकेयी को कोपवती देखकर वे शपथ करते हैं और उसका मनोज्ञ पूरा करने के लिये कहते हैं कि वे उसका प्रिय कार्य करने के लिये राम की शपथ लेते हैं। जब कैकेयी निष्ठरता-पूर्वक राम को वनवास और भरत के लिये राज्य माँग लेती है, तो राम-प्रेम के कारण वे उसके चरण पकड़ कर गिड़गिड़ाते हैं। सुमन्त्र के आने पर स्वयं दशरथ राम को बुलाने के लिये कहते हैं। इन सभी प्रसङ्गों में वाल्मीकि-रामायण तथा अध्यात्मरामायण में समानता है।

वन-गमन :-

आगे वन-गमन की घटनाओं में समानता है। असमानता है तो चरित्रों के चित्रण में। वाल्मीकिरामायण में कौशल्या[5] तथा लक्ष्मण दोनों ही राम के वन-निर्वासन का कटु विरोध करते हैं। अध्यात्मरामायण में पुत्र-शोक से दु:खी कौशल्या के दर्शन होते हैं। वे राम से केवल इतना कहती हैं कि

---

1 वा०रा० 2/11/22 से 29 तक 2/2/45

2 वा०रा० 2/11/18

3 अ०रा० 2/67/68

4 वा०रा० 9 स० 112 श्लोक, अ० रा० 2/2/65 से 66

5 वा० रा० 2/21/20 से 28, 51 से 54.

जिस प्रकार पिता दशरथ उनके गुरू हैं, उसी प्रकार वे भी हैं। अपने इसी अधिकार से वे उन्हें रोकती हैं।[1] दशरथ के लिये वे इतना कहती हैं कि राजाभरत से प्रसन्न हैं तो उन्हें राज्य दें किन्तु प्रिय पुत्र को वनवास क्यों दे रहे हैं।[2] राम का वियोग उनको असह्य है, राम के वियोग में वे प्राण परित्याग कर देंगी। कौशल्या के दु:ख को देखकर लक्ष्मण क्रोधित होते हैं। वह यहां तक कह डालते हैं मैं उन्मत, भ्रान्तचित दशरथ को बांधकर और भरत को मामा सहित मार डालूंगा।[3] उनके रोष को देखकर, राम संसार की नश्वरता, आत्मा के अविनाशी होने का तथा जीव के साथ होने वाले सुख-दु:खादि के बन्धनों का उल्लेख कर आत्म और अनात्म पदार्थों की विवेचना कर[4] लक्ष्मण को शान्त करते हैं। वहां पर राम, जीव, जगत, विद्या, अविद्या आदि तत्वों से भरा हुआ दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करते हैं। इसके बाद लक्ष्मण सेवा के लिये उनके साथ जाते हैं। वाल्मीकिरामायण में लक्ष्मण को शान्त करने के लिये मानवगत भावों पर ही प्रकाश डाला गया है। अध्यात्मरामायण में रामआत्मज्ञान का उपदेश देकर लक्ष्मण को मोह से निर्लिप्त कर देते हैं। वाल्मीकिरामायण में दार्शनिक वाद-विवाद नहीं है।

सीता से मिलने पर[5] वाल्मीकि-रामायण की भांति ही अध्यात्म-रामायण में राम वनं की भयंकरता बताकर वन जाने का आग्रह त्यागने को कहते हैं किन्तु सीता की दृढ़ता देखकर[6] अनुमति देते हैं। अध्यात्मरामायण में अन्य आग्रहों के अतिरिक्त सीता ने राम को एक और बात का स्मरण दिलाया है। 'बाल्यावस्था में किसी ज्योतिषी ने उनसे कहा था कि वे अपने पति के साथ वन में रहेंगी। अत: ब्राह्मण सत्य होना चाहिये।[7] और वे राम

---

1 अ0 रा0 2/4/7 से 12 तक

2 अ0 रा0 2/4/10

3 अ0 रा0 2/4/15 अयोध्या का0

4 अ0 रा0 2/4/17 से 45 तक

5 वा0 रा0 2/28/1 से 26 तक तथा अ0रा0 2/4/65 से 69 तक

6 वा0 रा0 2/30/41 से 45 तक 7 अ0 रा0 2/4/75,76

से कहती हैं कि आपने बहुत सी रामायणें सुनी हैं उनमें राम कभी सीता के बिना नहीं रहे।[1] राम उनका इस प्रकार का निश्चय देख कर उन्हें भी अनुमति देते हैं।[2]

राम के वन-प्रस्थान के समय दोनों ग्रन्थों में कैकेयी द्वारा वल्कल देने का वर्णन है।[3]

दोनों ग्रन्थों में राम अयोध्यावासियों को सुप्तावस्था में छोड़कर जाते हैं।[4] दोनों ग्रन्थों में बाद में तमसा तट तक पुरवासियों को जाने का वर्णन है। अध्यात्मरामायण में वे गङ्0गा के तट पर पहुंचकर गुह से मिलते हैं।[5] लक्ष्मण-गुह सम्वाद का भी उल्लेख है - दोनों में। अन्तर यह है कि रामायण में यह संवाद[6] भौतिक[7] है, अध्यात्मरामायण में आध्यात्मिक। अध्यात्मरामायण में रात्रि में राम-सीता की रखवाली करते समय, वार्तालाप करते हुए लक्ष्मण गुह को 12 श्लोकों में कर्म-फल, सुख-दु:ख, माया आदि के विषय में दार्शनिक उपदेश देते हैं।[8] अध्यात्मरामायण तथा वाल्मीकि रामायण में राम गुह को आलिङ्0गन कर उसका आतिथ्य स्वीकार करते हैं। किन्तु उसके यहां विश्राम नहीं करते - वहां उन्होंने अपने को 'कुशचीराजिनधरं फलमूलाशिनं कहा है। अध्यात्मरामायण में भी ऐसाही है। वे वनवास की 14 वर्ष की अवधि काल तक घर या गांव में नहीं जा सकते।

---

1 अ0 रा0 2।4।78

2 अ0 रा0 2।4।79

3 वा0 रा0 2/37/1 से 6, 30 से 33 तक, अ0 रा0 2/5/35 श्लोक

4 अ0 रा0 2/5/35 वा0 रा0 2/46/23 से 28 तक

5 अ0 रा0 2/5/61 से 63 तक

6 व 7 वा0 रा0 2/51/8 से 26 तक

परिदेवयमानस्य दु:खार्तस्य महात्मन:,

तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्बरी सात्यवर्तत। - 2/51/26 वा0 रा0

8 अ0 रा0 2/6/4 से 15 तक।

गङ्0गान्तरण के पश्चात् राम भरद्वाज से मिलते हैं। वाल्मीकि रामायण में भी इसका वर्णन है। अध्यात्मरामायण में ऋषि यह जानकर कि भगवान् राम आये हैं उनकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं।[1] वे येह भी जानते हैं कि राम साक्षात् परमात्मा हैं और रावण के विनाश के लिये उन्होंने अवतार किया है।[2] दूसरे दिन राम चित्रकूट में वाल्मीकि के दर्शन प्राप्त करते हैं।[3] अध्यात्मरामायण में वाल्मीकि के मिलन का वृतान्त आध्यात्मिक रूप लिये हुए है। वाल्मीकिरामायण में गङ्0गावतरण के पश्चात् राम मुनि के आश्रम में कुटिया बनाकर रहते हैं। अध्यात्मरामायण में राम के निवास करने के पूर्व वाल्मीकि राम संवाद हुआ है। राम पूछते हैं कि ऐसा स्थान बताइए जहाँ मैं सुखपूर्वक रह सकूं। सर्ग 6 के 52 से लेकर 62 तक के श्लोकों में राम के रहने के लिये स्थान बताया गया है। जिसका सारांश इस प्रकार है - जो लोग सदाचारी हैं, जो अपने हाथ-पैर तथा नेत्रादि इन्द्रियों से भगवत् सेवा अथवा अन्य शुभ कर्म करते रहते हैं उनके हृदय-मंदिर में आप निवास करिये। इस प्रसङ्0ग द्वारा भक्ति तथा भक्ति के शुद्धाचार एवं सदाचार का वर्णन किया गया है।[4]

यहीं वाल्मीकि के जन्म का वृतान्त है।[5] स्वयं वाल्मीकि राम को अपनी कथा सुनाते हैं। वाल्मीकि-रामायण में इसका वर्णन नहीं है। इस प्रसङ्0ग में वर्णन है कि वाल्मीकि रत्नाकर दस्यु थे। साक्षात् सप्तर्षियों के उपदेश से राम-नाम को उल्टा ही जपने पर वे ब्रह्मर्षि हो जाते हैं। इस प्रकार की कल्पना का मुख्य कारण राम-नाम का महत्व बताना है। अध्यात्मरामायण में वाल्मीकि आश्रम में गङ्0गा और पर्वत के बीच शाला बनाकर राम के

---

1 अ0 रा0 2/6/36

2 अ0 रा0 2/6/37, 38

3 अ0 रा0 2/6/42, 44

4 अ0 रा0 2/6/51 से 63 तक

5 अ0 रा0 2/6/64 से 86 तक

निवास करने का वर्णन है।

राम के चित्रकूट निवास के पश्चात् रामायण में अयोध्या की दशा का वर्णन हुआ है। सुमन्त्र के अयोध्या में प्रवेश करते ही कौशल्या तथा दशरथ के शोक का वर्णन अध्यात्मरामायण तथा वाल्मीकिरामायण में समान ही है।[1] वाल्मीकि-रामायण में विस्तृत विवेचन है। अध्यात्म-रामायण में संक्षेप में। पुत्र-शोक से क्षुभित कौशल्या, दशरथ को कटु उक्तियां भी कहती हैं।[2] अध्यात्म-रामायण में दशरथ की मृत्यु के पूर्व अंध-मुनि-शाप का वर्णन है।[3] इसमें अंध-मुनि के पुत्र का दशरथ के शब्द-वेधी बाण से वध का वृतान्त है। दशरथ अपनी मृत्यु से पूर्व इसे कौशल्या को सुनाते हैं। अन्धे वृद्धदम्पति के शाप से ही दशरथ पुत्र-शोक से मरते हैं। वाल्मीकि-रामायण में दशरथ ने "श्रवणकुमार की कथा " बताई है। उसे सुनाकर राम-विरह में वे प्राण त्याग करते हैं।[4]

चित्रकूट-प्रसङ्ग :-

भरत शत्रुघ्न के अयोध्या आने से लेकर चित्रकूट जाने तक की घटनाओं में साम्य है। प्रसङ्ग एक से हैं। वर्णन का ढंग अलग है। कैकेयी से मिलने के पश्चात् जब भरत कौशल्या से मिलते हैं, वहां पर कौशल्या भरत को शङ्काकुल दृष्टि से देखती हैं।[5] किन्तु अध्यात्मरामायण में वे भरत को गले लगाकर उन्हें निर्दोष ही स्वीकार करती हैं।[6]

चित्रकूट में पहुंचने पर अध्यात्मरामायण में वाल्मीकि-रामायण

---

1 वा० रा० 2/57/ 14 से 34 तक

2 अ० रा० 2/7/16, 17

3 अ० रा० 2/7/20 से 45 तक

4 वा० रा० 2/63, 2/64 सर्ग

5 वा० रा० 2/75/11

6 अ० रा० 2/7/91,92

की[1] भाँति लक्ष्मण की शङ्का एवं उग्र क्रोध का वर्णन नहीं है।

राम-भरत मिलन का मार्मिक वर्णन दोनों में है। अध्यात्म-रामायण में सभी मातायें तथा वसिष्ठ भरत के साथ चित्रकूट जाते हैं। वहीं पर भरत पिता की दुखद मृत्यु का दुखद समाचार बताते हैं। भरत राम से अयोध्या लौटने के लिये कहते हैं। उनके न जाने पर वे शरीर-त्याग का हठ करते हैं। अध्यात्मरामायण में वाल्मीकिरामायण की ही भाँति राम, भरत को समझाते हैं। पिता के वचन का पालन करना सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है - यह कहकर उन्हें राज्य-भोग के लिए भी कहते हैं।[2] अध्यात्म-रामायण में शोकाकुल भरत को वसिष्ठ एकान्त में ले जाकर राम के अवतार का रहस्य बताते हैं, जिसे सुन कर वे आश्चर्य चकित हो जाते हैं। और रावण-वध के उद्देश्य को समझकर उनकी चरण पादुकायें लेकर लौट जाते हैं।[3] यह प्रसङ्ग राम के विष्णु रूप को बताने के लिये ही आया है। यहीं पर कैकेयी भी एकान्त स्थान में राम से अपने अपराध की क्षमा याचना करती है, जिसमें वह राम की स्तुति करती है तथा तत्वज्ञान की चर्चा करती हुई राम का विष्णु तथा सनातन पुरूष के रूप में वर्णन करती हैं।[4] अध्यात्मरामायण में जाबालि ऋषि का वर्णन नहीं आया है। भरत अन्ततोगत्वा सभी कार्यों को राम की माया समझ कर शान्तचित हो नगर निवासियों सहित अयोध्या आते हैं।

चित्रकूट निवास के पश्चात् राम अत्रि मुनिसे भेंट करते हैं।[5] दोनों रामायणों में अयोध्याकाण्ड में ही यह वर्णन है। दोनों रामायणों में राम ऋषि को प्रणाम करते हैं। ऋषि लोग अतिथि अथवा राजा के रूप में उनका

---

1 वा० रा० 2/97/17 से 30 तक

2 अ० रा० 2/9/37

3 अ० रा० 1/9/42/43, 44

4 अ० रा० 2/9/55 से 67 तक

5 अ० रा० 2/9/79

स्वागत करते हैं। अध्यात्मरामायण में वे राम को विष्णु का अवतार मानकर उनकी पूजा भी करते हैं। सीता-अनसूया मिलन का वर्णन भी दोनों ग्रन्थों में हुआ है। अध्यात्मरामायण में वाल्मीकि की ही भांति अनसूया उन्हें पाति-व्रत धर्म की शिक्षा देती हैं।[1] अध्यात्मरामायण में वे सीता को दो दिव्य कुण्डल, दो स्वच्छ रेशमी साड़ियां एवं दिव्य अङ्गराग देती हैं।[2]

---

1 अ0 रा0 2/9/90

2 अ0 रा0 2/9/87/88, 89

अरण्य-काण्ड

अध्यात्मरामायण में कथा-क्रम =

अत्रि के आश्रम से राम दण्डक वन में प्रवेश करते हैं। यहाँ वे विराध का वध करते हैं। उनके हाथों मुक्ति पाकर वह शाप-ग्रस्त विद्याधर राम की स्तुति कर परमधाम को जाता है।

इसके बाद राम शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि ऋषियों से मिलते हैं। ऋषि लोग उनका स्वागत और पूजा करते हैं। अध्यात्मरामायण में ऋषियों के मुख से दार्शनिक तत्वों का विवेचन भी यत्र-तत्र हुआ है। अगस्त्य उन्हें इन्द्र का दिया हुआ धनुष देते हैं, जो वाणों से कभी खाली न हो। तदनन्तर राम पंचवटी में आते हैं और जटायु नाम गृद्ध से मिलते हैं। यहीं पर वे लक्ष्मण से मोक्ष के अव्यभिचारी-साधन का वर्णन करते हैं।

पंचवटी में निवास करते हुए वे सूर्पणखा को दण्ड देकर खर आदि राक्षसों का बध करते हैं। इसके बाद सूर्पणखा विरूपीकरण का और उसका रावण के पास जाने का वर्णन है। रावण राम को विष्णु का अवतार जानकर विरोध-बुद्धि से उनके हाथों मुक्ति पाने के लिये विचार करता है। इसके बाद रावण का मारीच के पास सहायतार्थ जाने कावर्णन है। प्रथम तो मारीच रावण को तत्वज्ञान का उपदेश देता है व उसको राम के अवतार के विषय में बताता है। बाद में रावण की सहायता के लिये वचन देता है। वह कनक मृग बनकर राम के पास आता है। सीता के कहने पर राम उसका वध करने जाते हैं। मरते समय वह लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारता है। अत: लक्ष्मण को सीता राम की सुरक्षा के लिये जाने की आज्ञा देती हैं। लक्ष्मणकेमना करने पर वे कटु वचनों से विद्ध कर लक्ष्मण को जाने के लिये विवश कर देती हैं। इधर रावण भिक्षु का वेष बनाकर सीता का हरण कर लेता है। अध्यात्मरामायण में मारीच के वध के लिये जाने के पहले राम, सीता को रावण का षड्यन्त्र बताकर, उनसे अपनी छाया को छोड़कर अग्नि में प्रवेश करने के लिये कहते हैं। अत: वहाँ रावण द्वारा माया-सीता के हरण का उल्लेख है। सीता-हरण के बाद, सीता के वियोग में राम के विलाप का वर्णन है। सीता को खोजते

हुए वे जटायु से मिलते हैं। प्रथम तो वे उसी को सीता का भक्षण करने वाला राक्षस समझकर उसे मारने के लिये उद्यत होते हैं, परन्तु बाद में जटायु के द्वारा पूर्ण वृतान्त बताने पर वे मरणासन्न जटायु को परम पद देते हैं और उसका दाह कर्म भी करते हैं। मृत्योपरान्त जटायु उनके सारूप्य को प्राप्त करताहै। सीता का अन्वेषण करते हुए वे कबन्ध का उद्धार करते हैं। कबन्ध, एक शाप-ग्रस्त गन्धर्व है। राम की स्तुति करते हुये वह परमधाम को चला जाता है। उसी के बताने पर राम मतङ्0ग के आश्रम में अपनी भक्त शबरी से मिलते हैं। वहाँ वे उसे अपनी नवधा-भक्ति का उपदेश देते हैं और उसका भक्तिभाव पूर्ण आतिथ्य स्वीकार करते हैं। शबरी उन्हें सीता के विषय में बताकर, उन्हीं के सामने अपना शरीर त्याग कर देती है। इस प्रकार पूरे काण्ड में हमें पतित-पावन तथा भक्त वत्सल राम के दर्शन होते हैं।

<u>अरण्यकाण्ड की कथा की तुलनात्मक समीक्षा :-</u>

अरण्यकाण्ड के प्रसङ्0ग तो लगभग वाल्मीकि रामायण की ही भाँति है किन्तु विषय-वर्णन में भिन्नता है।

<u>विराध-वध :-</u>

अत्रि मुनि के आश्रम से चलने पर राम नदी पार कर भयानक दण्डक वन में आते हैं - जहाँ पर वे भीषणकाय विराध नामक राक्षस को देखते हैं। वाल्मीकिरामायण में राम तथा विराध में अत्यधिक संघर्ष होता है। अन्त में उसका वध होता है। इस प्रसङ्0ग का व्यापक चित्रण वाल्मीकिरामायण में तीन सर्गों में हुआ है।[1] वाल्मीकिरामायण में भयानक आकृति विराध, वैदेही को गोद में ले लेता है।[2] वह उनको अपनी भार्या बनाना चाहता है। अध्यात्मरामायण में ऐसा वर्णन नहीं है। वहाँ वह राम से कहता है - तुम सीता को छोड़कर भाग जाओ।[3] वाल्मीकिरामायण में वैदेही का हरण राक्षस

---

1 वा0 रा0 3/2/10 - अङ्0केनादाय वैदेहीम् ।

2 वा0 रा0 3/2/13 - इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति।

3 अ0 रा0 3/1/29

द्वारा होते देखकर राम स्वयं बहुत व्याकुल हो जाते हैं।[1] अध्यात्मरामायण में राम हंसते हुये उसकी भुजाएं काट डालते हैं। उद्धार हो जाने पर वह अपना परिचय देता है। वाल्मीकि के अनुसार वह तुंबरू नामक गन्धर्व था। रम्भा पर आसक्त होने के कारण वह शापग्रस्त हुआ। अध्यात्मरामायण में वह दुर्वासा से अभिशप्त विद्याधर है।[2] वाल्मीकिरामायण में वह अपना पूर्व रूप प्राप्त कर राम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हुआ चला जाता है। अध्यात्म-रामायण में वह राम की स्तुति करता है और राम से उनकी भक्ति मांगता है।[3] वह कहता है कि उसकी वाणी सदा राम-नाम-संकीर्तन करती रहे और कान उनके कथामृत का पान करतेरहें। राम उसे मुक्ति देने वाली और अत्यन्त दुर्लभ भक्ति प्रदान करते हैं और उसे परमधाम भेजते हैं।[4]

शरभङ्ग ऋषि :-

विराध-वध के बाद राम शरभङ्ग ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। वाल्मीकि रामायण में राम की भेंट के पूर्व इन्द्र उनसे मिलने आये हैं। वे मुनि को ब्रह्मलोक ले जाने के लिये आये हैं। अध्यात्मरामायण में इसका वर्णन नहीं है। वाल्मीकिरामायण में वे राम को नर शार्दूल एवं प्रिय अतिथि ही मानते हैं।[5] वे राम के सम्मुख अपनी नश्वर देह का त्याग करना चाहते हैं।[6] अध्यात्मरामायण में वे राम के परम भक्त हैं। राम के दर्शनों की आकांक्षा से ही वहां तपस्या कर रहे हैं। अब राम के आने पर तपस्या द्वारा अर्जित किये गए पुण्य को राम को समर्पित कर मोक्ष पद प्राप्त करना चाहते हैं।[7] वे मन में सर्वान्तर्यामी राम का सीता व लक्ष्मण के सहित

---

1 वा०रा० 3/2/21

2 अ० रा० 3/2/38

3 अ० रा० 3/2/39, 40

4 अ० रा० 3/2/44, 45

5 वा० रा० 3/5/30, 31

6 वा० रा० 3/6/19, 20

7 अ० रा० 3/2/4, 5

ध्यान करते हैं और देवेश राम के स्वरूप को देखते हुए अपने पाँच-भौतिक शरीर को जलाकर दिव्य देह धारण कर ब्रह्मलोक को चले गये।[1] दोनों ग्रन्थों में वे मृत्यु के समय राम से मुहूर्त भर अपनी ओर देखने के लिये कहते हैं।[2] तुलसीदास ने भी इनका भक्त रूप ही देखा है।[3] शरभङ्ग के दिवंगत होने के बाद समस्त दण्डकारण्यनिवासी महर्षि, राम की स्तुति करते हैं। वहाँ पर वे कहते हैं कि राम ने पृथ्वीका भार उतारने के लिये अवतार लिया है। यहीं पर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के क्रमशः विष्णु, शेष, शङ्ख व चक्र रूप में अवतार लेने का वर्णन अध्यात्मरामायण में हैं।[4] वाल्मीकिरामायण में मुनिवर्ग राम को मुनियों के मृतशरीरों को दिखाते हैं।[5] अध्यात्मरामायण में इन अस्थियों को देखकर राम स्वयं जिज्ञासा करते हैं।[6] दोनों ही ग्रन्थों में राम समस्त राक्षसों के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं।[7]

तदनन्तर वे सुतीक्ष्ण के आश्रम में आते हैं। वे राम को प्रिय अतिथि मानकर उनका स्वागत करते हैं।[8] अध्यात्मरामायण में वे राम की स्तुति में कई श्लोक कहते हैं।[9] वे राम मंत्र के उपासक और राम के परम भक्त हैं। वे राम के निर्गुण-रूप का वर्णन कर उनसे प्रार्थना करते हैं कि भले ही उनका रूप उपाधियों से परे हैं, किन्तु उनके हृदय में यह सगुण राम का रूप ही भासमान रहे, जो आज उन्हें प्रत्यक्ष हुआ है।[10] राम उन्हें सायुज्य-

---

1 अ० रा० 3/2/10,11
2 वा०रा० 3/5/38,39,40 तथा अ० रा० 3/2/10,11
3 मानस 3/7/6
4 अ० रा० 2/2/14, 15, 16
5 वा० रा० 3/5/37
6 अ० रा० 3/2/19,20
7 अ० रा० 3/2/22
8 वा० रा० 3/6/25
9 अ० रा० 3/2/27 से 34 तक
10 अ० रा० 3/2/34

मुक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रसङ्ग में राम के मुख से ग्रन्थकार ने भक्ति और उपासना के महत्व का वर्णन कराया है।[1]

अगस्त्य भेंट :-

वाल्मीकिरामायण में अगस्त्य राम का समादर एक समर्थ राजा मानकर करते हैं - ब्रह्म मानकर नहीं। उन्हें ज्ञात हैं कि राम राक्षसों का वध करने के लिये वन में आये हैं।

अध्यात्मरामायण में उन्हें अगस्त्य ने ब्रह्म समझा है। इसी स्थल पर उनकी स्तुति करते हुये अगस्त्य राम-मन्त्र की उपासना, भक्ति तथा साधु-सङ्ग के महत्व का वर्णन करते हैं।[2] स्तुति करते हुये वे माया, सृष्टि आदि दार्शनिक तत्वों का विवेचन भी करते हैं।[3] अंत में वे राम से प्रेम-लक्षणा उतम-भक्ति मांगते हैं। वाल्मीकिरामायण की भाँति अध्यात्मरामायण में भी अगस्त्य उन्हें एक समर्थ राजा एवं प्रिय अतिथि कहकर सम्बोधित करते हैं।[4] राम उन्हें प्रणाम करते हैं, किन्तु वे राम को ब्रह्म के रूप में भी जानते हैं। वे राम को साक्षी चित्स्वरूप औरअविकारी कहते हैं। दोनों ग्रन्थों में उनके द्वारा राम को आयुधों के दिये जाने का वर्णन है। अध्यात्मरामायण में तथा वाल्मीकि-रामायण में वे राम को वैष्णव धनुष, दो तरकस, सुवर्णभूषित तलवार तथा अन्य श्रेष्ठ आयुधों को प्रदान करते हैं।[5] अध्यात्मरामायण में धनुष इन्द्र का दिया हुआ है।[6] इसके बाद अगस्त्य के कहने पर ही वे पंचवटी की ओर प्रस्थान करते हैं।

पंचवटी निवास :-

पंचवटी में निवास करते हुये राम-लक्ष्मण रामायण में भौतिक चर्चा करते हैं। अध्यात्म-रामायण में वार्ता का विषय आध्यात्मिक है। रामायण

---

1 अ0 रा0 3/2/35 से 39 तक

2 अ0 रा0 2/3/17 से 40 तक

3 अ0 रा0 3/3/17 से 33 तक

4 अ0 रा0 3/3/12

5 वा0 रा0 3/12/32 से 36 तक

6 अ0 रा0 3/3/45

में लक्ष्मण, भरत की प्रशंसा कर कैकेयी की निन्दा करते हैं।[1] राम-दोष-दर्शन का परिहार कर भरत का गुण-गान करने के लिये ही लक्ष्मण से कहते हैं। यही पर भक्ति तथा आध्यात्मिक चर्चा प्रधान अध्यात्मरामायण में, राम से लक्ष्मण मोक्ष के साधनों को जानने की जिज्ञासा करते हैं। राम उन्हें मोक्ष सम्बन्धी गुह्याद्गुह्यतर परम रहस्य बताते हैं। यहां राम माया के स्वरूप और ज्ञान के अभेद को बताते हुए वे लक्ष्मण को ज्ञान प्राप्ति के साधन तथा अपनी भक्ति के उपाय बताते हैं। ग्रन्थकार ने राम के मुख से भक्ति तथा उपासना की श्रेष्ठता का तथा साधु सङ्गति का प्रतिपादन कराया है।

इसके बाद शूर्पणखा-विरूपीकरण तथा युद्ध में खर, दूषण और त्रिशिरा आदि चौदह सहस्त्र मुख्य राक्षसों का बध होता है। वाल्मीकि रामायण की भांति अध्यात्म-रामायण में इन राक्षसों के युद्ध और वधादि का विस्तृत विवेचन नहीं है।

सूर्पणखा का रावण के पास जाना और अपनी दशा का वर्णन करने का, खर आदि के मारे जाने का भी वर्णन संक्षेप में उसी प्रकार है। रावण से अपने विरूपीकरण का कारण वह रावण के लिये सुन्दरी सीता का मांगना ही बताती है। इस सब को सुनकर रावण बहन के अपमान और भाई के प्रतिशोध एवं सुन्दरी सीता को प्राप्त करने के लिये ही उसके हरण की योजना बनाता है। वाल्मीकिरामायण में इसी प्रकार का रावण का यथार्थ चित्रण मिलता है। अध्यात्मरामायण में रावण मोक्ष की आकांक्षा से राम से वैर करता है।[7] उसको यह ज्ञात है कि साक्षात् परमात्मा ने उसकी मृत्यु के लिये रघुवंश में मनुष्य रूप में अवतार लिया है।[8] अध्यात्मरामायण में वह

---

1 वा0 रा0 3/16/35
2 वा0 रा0 3/16/36
3 अ0 रा0 3/4/17
4 अ0 रा0 3/4/19 से 45 तक
5 अ0 रा0 3/4/48 से 51 तक
6 अ0 रा0 3/4/52 से 54 तक
7 अ0 रा0 3/5/61
8 अ0 रा0 3/5/59

स्पष्ट कहता है कि मैं विरोध बुद्धि से ही भगवान के पास जाऊँगा क्योंकि भक्ति के द्वारा वे शीघ्र प्रसन्न नहीं होते। अपनी मुक्ति के लिये वह राम से वैर करता है।

सीता हरण :-

अध्यात्मरामायण में यह प्रसङ्ग कुछ दूसरे ही प्रकार का है। वहाँ पर वह वास्तविक सीता का हरण नहीं करता। राम की आज्ञा से सीता अपनी माया की आकृति कुटी में छोड़कर अदृश्य रूप से अग्नि में एक वर्ष तक निवास करती हैं।[1] मृग को मारने जाने से पहले ही वे सीता को रावण द्वारा हरण किये जाने की बात बताते हैं। रावण ने सीता हरण किस प्रकार किया इस विषय में अध्यात्मरामायण में चित्रण किया[2] है कि रावण छाया सीता को भी नहीं छूता, नखों से पृथ्वी खोदकर पृथ्वी सहित उठा ले जाता है।[3] वाल्मीकिरामायण में तो वह सीता को केश व जाँघ पकड़ कर उठाता है।[4] रामायण में रावण द्वारा हरण किये जाने पर सीता के केश-प्रसाधन के पुष्प गिर जाते हैं और अग्नि सदृश आभूषण गिरने लगते हैं।[5] हरण से पूर्व भिक्षुवेष में आए हुए रावण को भोजन कराने तथा उसे अपना वृतान्त सुनाने का वर्णन वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्मरामायण में समान है।[6] सीता द्वारा रावण का परिचय पूछे जाने का भी वर्णन है। वाल्मीकिरामायण में आत्मश्लाघा सहित वह अपना वास्तविक परिचय देता है।[7] अध्यात्मरामायण

---

1 अ० रा० 3/7/2, 3

2 वा० रा० 3/49/16, 17

3 अ० रा० 3/7/51

4 वा०रा० 4/49/17, 18

5 वा० रा० 3/52/32

6 वा० रा० 3/47/3 से 23 तक
अ० रा० 7/41 तक

7 वा० रा० 3/47/26 से 31 तक

में भी वह अपना परिचय देकर सीता को पाने के लिये अपने को सन्तप्त बताता है। वह अपने को कामपरितप्त कहता है।[1] इसके बाद सीता की क्रोध एवम् उत्तेजनापूर्ण बातों का वर्णन भी समान ही है। तत्पश्चात् वह अपना भयङ्कर पर्वताकाररूप दिखाकर उनका हरण कर लेता है।[2] मार्ग में रावण और जटायु के युद्ध का वर्णन है किन्तु वाल्मीकिरामायण की भांति विस्तृत विवेचन नहीं है। इसके पश्चात् पर्व शिखर पर बैठे बानरों को देखकर आभूषण फेंकने का भी वर्णन है।[3] वाल्मीकि-रामायण में रावण पहले तो सीता को अन्त:पुर में ले जाता है[4] किन्तु बाद में, अशोक-वाटिका में राक्षसियों के मध्य रखता है। अध्यात्म रामायण में भी वह उन्हें अन्त:पुर के एकान्त देश अशाकवन में रखकर मातृबुद्धि से उनकी रक्षा करता है।[5] रावण का यह रूप रामायण में नहीं मिलता है।

अध्यात्मरामायण में सीताहरण के उद्देश्य की भी सर्वथा नवीन योजना है। रावण राम को ब्रह्म का अवतार जानकर मोक्ष की ही कामना से सीता हरण करता है। वह जानता है कि दशरथ सुत कोई साधारण क्षत्रिय-कुमार नहीं अपितु साक्षात् ब्रह्म नारायण हैं।

रावण का मारीच के पास जाने का और माया-मृग को देखकर सीता का राम से उसका वध करने की अनुनय करने का प्रसङ्ग एक-सा ही है। दोनों ग्रन्थों में ही लक्ष्मण मृग को स्पष्टत: मारीच नामक राक्षस ही समझते हैं।[6] अन्त समय में मारीच लक्ष्मण का नाम लेता है। सीता के द्वारा लक्ष्मण को जाने की आज्ञा देने तथा उनके न जाने पर कटूक्तियाँ कहने का प्रसङ्ग समान ही है।[7]

---

1 अ० रा० 3/7/45, 46

2 अ० रा० 7/49, 50

3 वा०रा० 3/54/2, 3 अ० रा० 3/7/63

4 वा० रा० 3/54/11 से 16 तथा 3/56/32

5 अ० रा० 3/8/65

6 वा० रा० 3/43/5 अ० रा० 3/7/9

7 वा० रा० 3/45 स० वा० रा० में सीता लक्ष्मण को मित्र रूप में शत्रु कहती हैं।

वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण सीता को धिक्कारते हुये कहते हैं - तुमने दुष्ट स्त्री का स्वभाव दिखाया है, तुम्हारा अनिष्ट होने को है। अध्यात्मरामायण में भी वे कहते हैं - मामेवं भाषसे चाण्डिधकत्वं नाशमुपैष्यसि। अन्तर केवल सीता-हरण करने में और उसके मूल में स्थित उसके उद्देश्य में है।

रावण-जटायु युद्ध का लम्बा वर्णन वाल्मीकिरामायण की तरह अध्यात्मरामायण में नहीं है।

सीता-वियोग:-

रामायण में सीता वियोग में राम की करूणा एवं वेदना चरम सीमा का अतिक्रमण कर जाती है। वे उन्मादपूर्ण प्रलाप करते हैं।[1] प्रकृति के कण-कण से सीता का पता पूछते हैं।[2] लक्ष्मण उन्हें ढाढ़स देते हैं। अध्यात्मरामायण में उनके शोक का वर्णन तो संक्षिप्त है।[3] किन्तु, वर्णन में स्वाभाविकता नहीं है। वे लक्ष्मण को दीन व उदास देखकर सोचते हैं - मायामयी सीता का वृतान्त लक्ष्मण से छिपाकर मैं साधारण मानव की तरह शोक करूंगा।[4] यदि ऐसा नहीं करता तो राक्षसों का विनाश कैसे होगा अध्यात्मरामायण में स्पष्ट कहा गया है कि आनन्दस्वरूप होकर भी राम ने सीता के लिये शोक किया। अनासक्त होते हुए भी वे मूढ़ पुरूषों को आसक्त से प्रतीत होते हैं। राक्षसों के विनाश के लिये तथा अग्नि से पुन: सीता की प्राप्ति के लिये ही वह इस प्रकार शोक करने लगे। अत: शोक सन्तप्त राम वनदेवियों से मृगपक्षियों से उनका पता पूछते हैं।[5]

जटायु उद्धार :-

सीता के विरह में दु:खी राम रक्त-रंजित गृद्ध को सीता का भक्षक

---

1 वा०रा० 3/61/12

2 वा०रा० 3/61/21 से 27 तक

3 अ० रा० 3/8/15, 16, 17

4 अ० रा० 3/8/1 से 5 तक

5 अ० रा० 3/8/17

समझ कर उसे मारने के लिये प्रस्तुत होते हैं। वाल्मीकि-रामायण में भी ऐसा ही वर्णन हैं।[1] राम-जटायु संवाद में सीता का पता बताकर वह राम के सम्मुख अपने प्राण छोड़ना चाहता है। अध्यात्मरामायण में वह राम के कर-कमलों के स्पर्श की कामना करता है।[2] राम अपना कृपापूर्ण स्पर्श उसे देते हैं।[3] मृत्योपरान्त वे उसका दाह-संस्कार भी करते हैं। वाल्मीकिरामायण में भी वे उसका दाह-संस्कार करते हैं।[4] वहां भी वह परमगति का अधिकारी हुआ है।[5] अध्यात्मरामायण में जटायु को सारूप्य मुक्तिमिलती है।[6] अध्यात्म-रामायण में वह सारूप्य प्राप्त कर भगवान् की भक्तिपूर्ण स्तुति भी करता है।[7] इसमें राम के अगणित गुणशाली, जगत्कारणात्मक रूप का वर्णन है।

कबन्ध-वध :-

सीता को खोजते हुये राम कबन्ध नाम दैत्य को देखते हैं। इसकी भीषण आकृति, राम-लक्ष्मण से सम्वाद तथा भुज-कर्तन आदि वाल्मीकि-रामायण के अनुसार वर्णित हैं। पूर्वकथा में भेद है। अध्यात्मरामायण के अनुसार वह यौवन-पद से उन्मत्त एक गन्धर्व था तथा अष्टावक्र ऋषि ने उसे शाप दिया था।[8] रामायण में स्थूलशिरा ऋषि का शाप[9] वर्णित है। राम इसे भी मोक्ष प्रदान करते हैं। अध्यात्म-रामायण में वह राम की कृपा से उनके सनातन परमधाम को जाता है। मुक्त हुआ कबन्ध अध्यात्मरामायण में भक्ति युक्त होकर सनातन, आदिपुरूष राम की स्तुति करता है। यहां पर वह

---

1 वा० रा० 3/68/12 अ० रा० 3/8/25

2 अ० रा० 3/8/35

3 अ० रा० 3/8/36

4 वा० रा० 3/69/31 से 36 तक

5 वा० रा० 3/69/36 6 अ० रा० 3/9/56

7 अ० रा० 8/44 से 53

8 अ० रा० 3/9/10

9 वा० रा० 3/72/45

राम के विराट् रूप का वर्णन करता है।[1] वह राम के स्थूल और सूक्ष्म रूप का वर्णन करता हुआ उनके सगुण रूप की भी स्तुति करता है।[2]

शबरी-प्रसङ्ग :-

कबन्ध ही राम को शबरी के आश्रम में जाने को कहता है, जो उन्हें सीता का पता बतायेगी। रामायण में शबरी कर्म-कुशल तपस्विनी के रूप में चित्रित है।[3] अध्यात्मरामायण में वह राम की अनुरागिनी और भक्ति मार्ग में कुशल है।[4] सम्पूर्ण प्रसङ्ग समान हैं। किन्तु, अध्यात्मरामायण में भक्ति निरूपण विस्तार के साथ है। यहाँ पर राम के द्वारा नवध-भक्ति का निरूपण हुआ है।[5] अध्यात्मरामायण में वह वाल्मीकि रामायण की ही भाँति अग्नि में प्रवेश कर विष्णु-धाम को जाती है। मतङ्ग ऋषि का वर्णन तथा राम के विषय में उनके पूर्व कथन का स्मरण समान ही है।[6] अध्यात्मरामायण में शबरी नीच कुल से उत्पन्न नारी है।[7] राम उसे भी मुक्ति देते हैं। अध्यात्मरामायण के वर्णन के अनुसार, जाति, नाम, आश्रम, पुरूषत्व, स्त्रीत्व आदि का भेद राम के सम्मुख नहीं है।[8] उनकी प्राप्ति का साधन केवल भक्ति है। अध्यात्मरामायण में शबरी राम को पम्पासर का मार्ग बताती है और कार्य-सिद्धि के लिये सुग्रीव से मित्रता करने के लिये कहती है।[9] वाल्मीकिरामायण में कबन्ध ने राम को सुग्रीव से मैत्री करने की सम्मति दी है।

---

1 अ० रा० 3/9/30 से 46 तक

2 अ० रा० 3/9/49

3 वा० रा० 3/75/7 से 10 तक

4 अ० रा० 3/10/2

5 अ० रा० 3/10/22 से 28 तक

6 वा० रा० 3/75/15, 16 अ० रा० 3/10 /16 से 26 तक

7 अ० रा० 3/10/20 - योषन्मूढाप्रमेयात्मन्हीनजातिसमुद्भवा ।

8 अ० रा० 3/10/20

9 अ० रा० 3/10/36 से 39 तक

किष्किन्धा काण्ड

अध्यात्म रामायण में कथा-क्रम :-

पम्पासर के तट पर होते हुये राम - लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुंचते हैं। उस समय अपने चार मन्त्रियों के साथ बैठे हुये सुग्रीव हनुमान् से उनके विषय में जिज्ञासा करते हैं। वह उन्हें वाली का दूत समझ कर सशंकित होता है। अनुमान् ब्रह्मचारी का वेष बनाकर उनका परिचय प्राप्त करते हैं। हनुमान् राम व लक्ष्मण को जगन्मय प्रधान और पुरूष के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं कि आप साक्षात् परमात्मा ही क्षत्रियकुमार के रूप में हैं। हनुमान् जी की वाक्चातुरी से प्रभावित होकर राम ने दशरथ-पुत्र के रूप में अपना परिचय दिया। परिचय के पश्चात् हनुमान् राम-लक्ष्मण को सुग्रीव के पास लाकर अग्नि की साक्षी देकर राम-सुग्रीव की मित्रता करवाते हैं। मित्रता के पहले, सीता द्वारा फेंके गये आभूषण देकर सुग्रीव समस्त वृतान्त का वर्णन करता है। मित्रता के अनन्तर वह अपनी कहानी राम को सुनाता है। सब जानकर, राम उसे बाली के वध का आश्वासन देते हैं। सुग्रीव राम से वाली की शक्ति का वर्णन करता है। वह राम के बल के विषय में आशड़्0कित है। सुग्रीव के कहने पर राम ने दुंदुभि कड़्0काल फेंककर तथा सात तालतरू वेध कर उसको आश्वस्त किया। राम के अलौकिक शौर्य को देखकर सुग्रीव सांसारिकता से विरक्त सा हो जाता है। राम पुन: उस पर अपनी माया का विस्तार कर उसे वाली से युद्ध करने के लिये भेजते हैं। तारा वाली को युद्ध में जाने से रोकती है और राम की शरण में जाने को कहती है। वाली उसे समझाकर युद्ध के लिये आता है। प्रथमवार सुग्रीव पराजित होकर भाग आता है। पुन: राम उस की पहचान के लिये उसके गले में माला डालकर भेजते हैं। सुग्रीव का दूसरी बार आना सुनकर तारा बाली को युद्ध में जाने से रोकती है, वह उससे भगवान् की शरण में जाने को कहती है। बाली उसे समझा कर पुन: आता है। राम छिपकर बाली को बाण से मारते हैं। बाली राम के इस कृत्य

की कटु आलोचना करता है। राम उसे धर्म नीति की बातें बताते हैं - उसे दोषी बताने के लिए। बाली राम को नारायण जान कर भयभीत हो उनकी स्तुति करता है। अङ्गद को राम के हाथों सौंपकर वह परमगति प्राप्त करता है। इसके बाद तारा के विलाप का और राम द्वारा उसे तत्व-ज्ञान देने का वर्णन है। बाली के अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् सुग्रीव को राजपद मिलता है। प्रवर्षण पर्वत पर रहते हुए राम-लक्ष्मण में आध्यात्मिक बातें होती हैं, जिसमें लक्ष्मण द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर भगवान् राम क्रियायोग का वर्णन करते हैं। तदनन्तर भगवान् राम के शोक का तथा लक्ष्मण का किष्किन्धापुरी में कार्य से उदासीन सुग्रीव के पास जाने का वर्णन है। वहाँ लक्ष्मण के आवेश को बुद्धिमती तारा शान्त करती है। हनुमान् जी उनसे बताते हैं कि सुग्रीव राम के कार्य के लिये प्रयत्नशील हैं। इस प्रकार लक्ष्मण का कोप शान्त कर वे उन्हें भेजते हैं। इसके पश्चात् सीतान्वेषण करते हुये वानरगण विचित्र गुहा में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे स्वयं प्रभा को देखते हैं। उस तपस्विनी की सहायता से वे गुफा के बाहर निकलते हैं। वह स्वयं राम के दर्शन कर बद्रिकाश्रम को चली जाती है। तत्पश्चात् इनकी भेंट सम्पाती से होती है। उसने अपना पूर्ववृतान्त वानरों को सुनाया और उसने सीता की खोज का परामर्श दिया, जिसे सुनकर जाम्बवान् हनुमान् को लङ्का जाने के लिये प्रेरित करते हैं।

किष्किन्धा-काण्ड की कथा की तुलनात्मक समीक्षा

सुग्रीव-मैत्री :-

ऋष्यमूक-पर्वत के पास राम-लक्ष्मण को देखकर, उन्हें वाली का दूत समझ कर, सुग्रीव हनुमान को उनके पास भेजता है। अध्यात्मरामायण में हनुमान ब्रह्मचारी के वेष में जाते हैं।[1] वाल्मीकि रामायण में भिक्षुक के रूप में जाते हैं। राम के तेज से प्रभावित होकर हनुमान उन्हें प्रणाम करते हैं।[2] अध्यात्मरामायण में हनुमान् उनको पर ब्रह्म समझने लगते हैं।[3] वाल्मीकि-रामायण में देव की कल्पना करने लगते हैं। अध्यात्मरामायण में सुग्रीव हनुमान को राम-लक्ष्मण के विषय में मंत्रणा देता हुआ कहता है, 'तुम हाथ के अग्रभाग से संकेत करना।' वाल्मीकिरामायण में उसकी ओर मुख करके खड़ा होने का वर्णन है। हनुमान से राम अपना और लक्ष्मण का दशरथसुत के रूप में परिचय देते हैं।[5] और सीता-अन्वेषण के विषय में कहते हैं। हनुमान्, राम के द्वारा परिचय पूछे जाने पर सुग्रीव व अपना परिचय देते हैं और सुग्रीव से मित्रता करने को कहते हैं, जो उन्हें सहायता करेगा।[6] राम भी उनसे मित्रता करने के लिये ही आये हैं।[7] वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण ने प्रथम ही आकांक्षा की है कि वे सुग्रीव से मित्रता करना चाहते हैं। अध्यात्मरामायण में हनुमान् राम लक्ष्मण को कंधों पर ले जाते हैं।[8] वहां लक्ष्मण सम्पूर्ण वृतान्त सुनाते हैं।

---

1 तथेति वटुरूपेण हनुमान् समुपागतः । अ० रा० 4/1/11
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितयाकपिः । वा० रा० 4/3/2

2 विनीतवदुपागम्य राघवौप्रणिपत्य च । वा० रा० 4/3/3
विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत। अ० रा० 4/1/11

3 अ० रा० 4/1/16 से 16 तक - प्रधानपुरूषौ जगद्धेतुजगन्मयौ
वा० रा० 4/3/12

4 अ० रा० 4/1/10,

5 अ० रा० 4/1/19, 20

6 अ० रा० 4/1/14, 25

7 वा० रा० 4/4/5, 24

8 अ० रा० 4/1/28

सुग्रीव भी सीता का वृतान्त सुनाकर वैदेही के आभरण देता है।[1] दोनों एक दूसरे को संकट में उहायता करने का चन देते हैं। हनुमान् अग्नि की साक्षी में राम-सुग्रीव की मित्रता करवाते हैं। वाल्मीकि-रामायण में मैत्री के पश्चात् ही आभरण देने का वर्णन है। तदनन्तर सुग्रीव अपनी और वाली की शत्रुता की कारणभूत मय-दानव की कथा सुनाता है। यह दोनों ग्रन्थों में समान है। राम हनुमान् को वाली का वध करने का वचन देते हैं। अध्यात्म-रामायण में राम के पराक्रम से आशङ्कित होकर सुग्रीव राम से दुन्दुभि दैत्य के शिर को फेंकने के लिये कहता है। राम उसे पैर के अंगूठे से दस योजन दूर फेंक देते हैं। पुन: वह सप्त-ताल वृक्षों को बेधने के लिये कहता है। राम उन्हें एक ही बाण से वेध देते हैं तथा बाण पुन: तरकश में स्थित हो जाता है।[2] वाल्मीकि रामायण में भी ठीक ऐसा वर्णन है। इसमें राम का पराक्रम देख-कर सुग्रीव प्रसन्न हो उनसे वालि-वध की प्रार्थना करता है।[3] अध्यात्मरामायण में वह भक्ति भावाभिमुख हो संसार की नश्वरता का वर्णन करता है, वह विरक्त सा होजाता है।[4] राम अपनी माया का प्रादुर्भाव कर उसे कर्म की ओर प्रेरित करते हैं।[5] यहां राम-भक्ति का प्रतिपादन हुआ है तथा राम का सर्वज्ञ एवं माया रूप स्पष्ट होता है।

<u>वाली-वध</u> :-

अध्यात्मरामायण का वाली-वध का प्रसङ्ग भी वाल्मीकिरामायण के समान ही है। अध्यात्मरामायण में वह राम को धर्मज्ञ मानता है। अत: वह समझता है कि समदरसी प्रभु उसका वध करके पाप के भागी न होंगे।[6]

---

1 अ० रा० 4/1/28

2 अ० रा० 4/1/70, 71, 72

3 वा० रा० 4/12/11

4 अ० रा० 4/1/78

5 अ० रा० 4/2/1 से 3, 4

6 अ० रा० 4/2/34, 36

यही बात वह तारा को दूसरी बार युद्ध में जाते समय बताता है। प्रथम बार सुग्रीव हार जाता है, राम स्वरूप भेद के कारण दोनों को पहचान नहीं पाते हैं। दूसरी बार वे उस लक्ष्मण द्वारा पुष्पमाला पहना कर भेजते हैं और छिपकर वाली को मरते हैं।[1] वाल्मीकिरामायण में भी ऐसा ही वर्णन है।[2] दोनों ग्रन्थों में वह राम के इस कार्य की निन्दा करता है। राम उसे नीतिमय उतर देते हैं। किन्तु अध्यात्मरामायण में वह राम को नारायण परब्रह्मस्वरूप जानकर उनकी स्तुति करता है।[3] वाल्मीकिरामायण में वह क्षमा प्रार्थी है,[4] एवम् वह धर्मयुक्त उपदेश सुनने का इच्छुक है। किन्तु वह भयभीत नहीं है। वाल्मीकिरामायण में वह अपने कर्म का दण्ड भोगकर निर्मल एवं निष्पाप हो जाता है[5] एवम् स्वर्ग को जाता है। अध्यात्मरामायण में राम की स्तुति कर वह उन्हीं के हाथों, उन्हीं परम पुरूष के सम्मुख योगियों को दुर्लभ परमगति को प्राप्त होता है।[6] वह राम के कर कमलों का स्पर्श भी प्राप्त करता है। राम के **बाण** निकलते ही वह इन्द्ररूप हो जाता है।[7] वाली राम से अङ्गद पर दया दृष्टि रखने की याचना करता है। वाल्मीकिरामायण में सुग्रीव चाङ्गदे चैव विध्स्तत्वमतिसुतमाम् की इच्छा करता है।

<u>तारा का विलाप</u> :-

वाली वध का समाचार सुनकर शोक से व्याकुल तारा के विलाप का वर्णन है। वाल्मीकिरामायण में पहले हनुमान्[8] फिर राम ने[9] उसे समझाया है। अध्यात्म-रामायण में रोती हुई तारा को तत्वज्ञान का उपदेश देकर राम

---

1 अ0 रा0 4/2/44, 46

2 वा0रा0 4/18/57

3 अ0 रा0 4/2/64

4 वा0 रा0 4/18/48

5 4/18/61

6 अ0 रा0 4/2/66 7 अ0 रा0 4/2/70

8 वा0रा0 4/21/2 से 11 9 वा0रा0 4/24/42 से 44

उसे शान्त करते हैं।[1] यहां राम तारा से कर्म-बन्धन, संसार की नश्वरता तथा जीव के सर्वव्यापी अव्यय स्वरूप का विशद् वर्णन करते हैं। वे उसे नश्वर शरीर के लिये शोक न करने की शिक्षा तथा भक्ति का उपदेश देते हैं। राम तारा से कहते हैं कि अपनी पूर्वजन्म की भक्ति-स्वरूप उसने राम का दर्शन किया है। तत्वज्ञान का उपदेश उसका अज्ञान समाप्त करता है एवं तारा जीवनमुक्त हो जाती है।[3] वह सुग्रीव से अङ्गद द्वारा वाली का और्ध्वदैहिक कर्म कराने को कहती है।[3] वाल्मीकिरामायण[4] में यह राम के आदेश पर अङ्गद करता है।[5]

वाल्मीकि-रामायण एवं अध्यात्मरामायण दोनों में, राम स्वत: सुग्रीव को राज्य पद देकर अङ्गद को यौवराज पद देने के लिये सुग्रीव से कहते हैं।

राम का लक्ष्मण से क्रियायोग का वर्णन :-

वर्षाकाल में राम, लक्ष्मण सहित प्रस्रवन पर्वत की देव-निर्मित विशाल गुहा में निवास करते हैं। अध्यात्म-रामायण में उल्लेख है कि प्रवर्षण पर्वत[6] पर राम स्फटिक मणि की स्वच्छ व प्रकाशमान गुहा में निवास करते हैं। अध्यात्मरामायण में वर्णन हैं कि परमात्मा राम को वनों में विचरते जानकर बहुत से सिद्धगण पृथ्वी पर मृग और पक्षियों के रूप में उन्हीं की सेवा में रहने लगे।[7] वाल्मीकिरामायण में वहां रहते हुये वे अनेकों विषयों की चर्चा लक्ष्मण से करते हैं। वाल्मीकिरामायण में, रामविरह में विलाप करते हैं।[8]

---

1 अ० रा० 4/3/2

2 अ० रा० 4/3/37

3 अ० रा० 4/3/40

4

5 वा० रा० 4/25

6 अ० रा० 4/4/4

7 अ० रा० 4/4/5

8 वा० रा० 4/4/27, 30

अध्यात्मरामायण में राम ने लक्ष्मण से क्रिया-मार्ग से आराधना करने की पूजापद्धति का वर्णन किया है।[1] बाद में उनके विलाप का मार्मिक वर्णन भी है।[2]

राम विरह :-

शरद-ऋतु में जानकी के विरह में सन्तप्त राम अनेकों प्रकार से विलाप करते हैं और लक्ष्मण से कर्तव्यविमुख सुग्रीव के प्रति क्रोध व्यक्त करते हैं। वाल्मीकिरामायण में धर्म की मर्यादा से च्युत सुग्रीव को वे वाली की सी गति देने को उतेजित हो उठे।[3] अध्यात्मरामायण में राम का रूप अधिक रौद्र है।[3] वे सुग्रीव की कामान्धता और कृतघ्नता का वर्णन कर कहते हैं कि जैसे वाली उनके हाथ से मारा गया, वैसे ही आज सुग्रीव भी मारा जायेगा, इतना ही नहीं वे उसको बन्धु-बान्धवों सहित मार डालने के लिये कहते हैं।

लक्ष्मण का किष्किन्धा जाना :-

राम को उतेजित देखकर लक्ष्मण जी अत्यन्त क्रोधित हो गए और सुग्रीव को मारने के लिये राम से आज्ञा चाहते हैं। वाल्मीकिरामायण में वे लक्ष्मण को समझाते हैं। वे लक्ष्मण से कहते हैं कि पूर्व-कृत प्रीति और सख्य का स्मरण कर सुग्रीव-वध का पाप कर्म न करो।[4] अध्यात्मरामायण में भक्त-वत्सल और सखा - प्रिय राम लक्ष्मण से कहते हैं कि सुग्रीव प्यारा मित्र है - उसे न मारना, केवल मारने का भय दिखाकर उतर ले आना।[5]

अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण के किष्किन्धापुर जाने के बाद ही कथा-कार ने राम के ब्रह्म रूप का और रावण के वधार्थ उनके जन्म लेने का वर्णन किया है। राम ने भक्तों के लिये और रामायणकथा का लोक में विस्तार करने

---

1 अ० रा० 4/4/12 से 40

2 अ० रा० 4/5/1 से 7

3 वा० रा० 4/5/30,81 अ० रा० 4/5/10

4 वा० रा० 4/31/7

5 अ० रा० 4/5/13, 14

के लिये जन्म लिया है।

इसके बाद कोपाविष्ट लक्ष्मण का किष्किन्धा में पहुंचने और अङ्0गद से मिलने का वर्णन है।[1] अङ्0गद सुग्रीव को सारा समाचार सुनाता है।[2] अध्यात्मरामायण में वह पहले हनुमान् को और फिर तारा को लक्ष्मण का क्रोध शान्त करने के लिये भेजता है। वाल्मीकिरामायण में केवल तारा जाती है। दोनों परस्पर सुग्रीव की कामुकता की आलोचना करते हैं। अध्यात्मरामायण में तारा लक्ष्मण को देवर कहकर सम्बोधित करती है। वहां पर वह कहती है कि उनकी कृपा से ही सुग्रीव को यह सुख प्राप्त हुआ है और जाति वानर होने के कारण ही वह कामासक्त है। तारा वहां यह भी बताती है कि सुग्रीव ने सीता के अन्वेषणार्थ देश-विदेश में वानर भेज दिये हैं।[3] तारा के कथन से लक्ष्मण का क्रोधशान्त होता है और वे सुग्रीव के अन्तःपुर पहुंचते हैं।[4] वाल्मीकिरामायण में सुग्रीव को देखकर उतप्त लक्ष्मण को तारा ने ही तर्क-सङ्0गत वार्तालाप से शान्त किया। अध्यात्म-रामायण में लक्ष्मण के क्रोध को हनुमान जी यह कह कर शान्त करते हैं कि वानरराज लक्ष्मण से भी अधिक राम का भक्त है और राम के कार्य के लिये प्रयत्नशील है।[5] वे अपनी योजना भी बताते हैं। अध्यात्मरामायण में सब जानकर लक्ष्मण लज्जित होते हैं। तदनन्तर सुग्रीव उनकी पूजा करता है। वाल्मीकिरामायण में सुग्रीव कृतज्ञता व्यक्त करते हुये सहायता का आश्वासन देता है और उन्हीं के सम्मुख वानरों को बुलाने की आज्ञा देता है तथा राजाज्ञा देता है कि जो वानर दस दिन में नहीं आवेंगे वे मृत्युदण्ड के भागी होंगे। अध्यात्मरामायण में कृतज्ञ सुग्रीव सहायता देने के लिये कहता है। किन्तु, वह कहता है कि वह केवल सहायक रहेगा - उससे उनका कार्य कहां सिद्ध होगा, क्योंकि राम तो

---

1 वा0 रा0 4/31/29 से 31

2 अ0 रा0 4/5/25 से 29 तथा अ0 रा0 4/5/31, 32

3 अ0 रा0 4/5/46

4 अ0 रा0 4/5/49, 50

5 अ0 रा0 4/5/54, 55

रक्षक और सर्व समर्थ हैं।[1] यहां पर राम के सर्व समर्थ ईश्वर रूप का वर्णन हुआ है। अध्यात्मरामायण में वानरों को आदेश देने का वर्णन नहीं है। सुग्रीव तुरन्त लक्ष्मण के साथ अङ्गद, हनुमान् आदि को लेकर राम के पास जाता है।[2]

सीतान्वेषण :-

राम के समीप शीघ्र ही असंख्य वानरों का चतुर्दिक् से आगमन होने का वर्णन वाल्मीकि रामायण में हैं।[3] अध्यात्मरामायण में इसका वर्णन नहीं है। इसमें सुग्रीव राम से मिलने के बाद सीतान्वेषण के लिये सैन्य आगमन के विषय में राम को सूचना देता है।[4] अध्यात्मरामायण में वानरों के डील-डौल तथा बल का वर्णन वह राम से करता है। अध्यात्मरामायण में प्रमुख वानरों के नाम भी गिनाये हैं।[5] सुग्रीव राम से उन्हें आज्ञा देने को कहता है। राम के कहने पर सुग्रीव उन्हें सीतान्वेषण के लिये भेजता है। अध्यात्मरामायण में सुग्रीव वानरों को एक मास का समय देता है और उससे अधिक समय लगाने पर प्राणान्तक दण्ड निश्चित करता है।[6]

समस्त वानरों का सीतान्वेषण के लिये प्रस्थान के बाद हनुमान् को जाते देखकर राम हनुमान् की प्रशंसा करते हैं और अपनी नामाङ्कित मुद्रिका देते हैं।[7] अध्यात्मरामायण का यह प्रसङ्ग वाल्मीकिरामायण में भी है।

सीतान्वेषण के समय मार्ग में एक असुर को रावण समझकर मारने

---

1 अ० रा० 4/5/57, 58, 59

2 अ० रा० 4/5/59 से 63

3 वा० रा० 4/39/9 से 44 तक

4 अ० रा० 4/6/5

5 अ० रा० 4/6/6 से 17 तक

6 अ० रा० 4/6/26

7 वा० रा० 4/44/2

अ० रा० 4/6/29, 29

का वर्णन भी दोनों में हैं।[1] अन्य वर्णनों में भी साम्य है किन्तु वाल्मीकि-रामायण में विस्तृत वर्णन है। अध्यात्मरामायण में अधिक विस्तार नहीं है।

वानरों का गुहा-प्रवेश एवं स्वयंप्रभा का वृतान्त :-

अध्यात्मरामायण में विन्ध्या में घूमते हुए एक गुफा का वर्णन भी है। वाल्मीकिरामायण में यहां भी विस्तृत वर्णन है। वाल्मीकिरामायण में गुफा में घुसने पर वानरों को तपस्विनी धर्मचारिणी स्वयंप्रभा का दर्शन होता है।[3] अध्यात्मरामायण में गुफा के अन्दर दिव्य-भवन में वे स्वयंप्रभा को देखते हैं। वह स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान सुन्दरी योगिनी है, जो योगाभ्यास में तत्पर है।[4] वानरों का वृतान्त पूछने एवं उसके द्वारा उनका स्वागत करने का वृतान्त वाल्मीकिरामायण तथा अध्यात्मरामायण दोनों में विस्तृत रूप में है।[5] वाल्मीकिरामायण तथा अध्यात्मरामायण दोनों में विस्तृत रूप से इस प्रसंग का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकिरामायण में स्वयं प्रभा वानरों के नेत्र बन्द करते ही उन्हें अपनी शक्ति से महोदधि के निकट पहुंचा कर पुन: उसी गुफा में चली जाती है। अध्यात्मरामायण में, उसके प्रभाव से वानरों का गुफा से बाहर जाने पर, उसका गुफा छोड़कर राम के दर्शनार्थ उनके पास आने का वर्णन है। उनके दर्शन कर भक्तियुक्त स्तुति करती है।[6] अध्यात्मरामायण में स्वयं प्रभा के द्वारा इस स्तुति में ब्रह्म-निरूपण, राम के मायावतार, सगुण निर्गुणरूप तथा उनकी भक्ति का वर्णन हुआ है।[7] अध्यात्मरामायण में सभी राम के उपासक और उनकी भक्ति की ही कामना करने वाले हैं। अत: स्वयंप्रभा भी राम के द्वारा हार्दिक इच्छा के पूछे जाने पर जन्म जन्म में उनकी अविचल भक्ति मांगती है।[8] राम की आज्ञा से वह

---

1 वा० रा० 4/48/18,20 व अ० रा० 4/6/32
2 अ० रा० 4/6/34, 38 व वा० रा० 4/50/20 से 41 तथा 4/51/2 से
3 अ० रा० 4/6/39
4 अ० रा० 4/6/40
5 अ० रा० 4/6/43 से 57 तक व वा० रा० 4/51/4
6 अ० रा० 4/6/58 से 60 7 अ० रा० 4/6/60 से 77 तक
8 अ० रा० 4/6/79 से 82 तक सा प्राह राघवं भक्त्या भक्तिं ते भक्त वत्सल
यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहिमें प्रभो।।

बद्रिकाश्रम में जाकर वहाँ प्रभु का चिन्तन करती हुई शरीर त्याग कर परम-पद को प्राप्त करती है।[1]

स्वयं प्रभा का पूर्व-वृतान्त दोनों ग्रन्थों में है। किन्तु उसमें भी भिन्नता है। वाल्मीकि-रामायण में मय नामक राक्षस ने सुवर्णमय वन माया से निर्मित किया था। हेमा नामक अप्सरा पर आसक्त होने के कारण इन्द्र ने उसका वध कर दिया था एवं हेमा को इस वन की अधिकारिणी बना दिया था। स्वयंप्रभा, मेरूसावर्णि की कन्या एवं हेमा की सखी थी। हेमा ने उसे घर का प्रबन्ध सौंपा था। अध्यात्मरामायण में हेमा विश्वकर्मा की पुत्री है। उसके नृत्य से प्रसन्न होकर शङ्कर ने उसे यह विशाल दिव्यनगर दिया था।[2] स्वयंप्रभा उसकी सखी व दिव्य गन्धर्व की कन्या है। वह मोक्ष की इच्छुक है।[3] अध्यात्मरामायण में वर्णन है कि हेमा जब ब्रह्मलोक को जाने लगी, तो वह स्वयंप्रभा से तपस्या करने को कहती है। उसी ने बताया था कि अव्यय नारायण, दशरथ के घर में अवतार लेंगे। उनकी भार्या को ढूंढते हुये जब वानर इस गुफा में आएँगे तो उनका सत्कार करके व राम के पास जाकर उनकी स्तुति कर हेमा, विष्णु के धाम को जायेगी।[4] स्वयंप्रभा को अध्यात्मरामायण में विष्णु की उपासिका कहा है। इसके लिये विष्णु तत्परा शब्द आया है।

<u>वानरों का प्रायोपवेशन और सम्पाति से भेंट</u> :-

इधर सीता की प्राप्ति का कोई चिह्न न पाकर, सुग्रीव के द्वारा निर्धारित दण्ड का ध्यान कर समस्त वानरगण अङ्गद से परामर्श करते हैं। अङ्गद इस समय वानरों से कहते हैं कि वह सुग्रीव के पास जाने से पहले

---

1 अ० रा० 4/6/83,84

2 अ० रा० 4/6/51/52

3 अ० रा० 4/6/53

4 अ० रा० 4/6/54 से 57 तक

अपने जीवन का अन्त कर लेगा। वे सुग्रीव को पापात्मा व मातृतुल्या भ्रातृभार्या का भोगी कहते हैं। अङ्गद के शोक को देखकर हनुमान् उन्हें समझाते हैं।[1] अङ्गद के हृदय में नाना संशय उत्पन्न होते हैं।[2] वाल्मीकिरामायण के आश्वासन में नीतिपक्ष है तथा अध्यात्मरामायण में भक्ति-पक्ष की प्रधानता है। इसमें हनुमान् उससे राम के प्रभाव का वर्णन करते हैं। और सुग्रीव के प्रति दुर्भावना न रखने को कहते हैं। अध्यात्मरामायण में हनुमान् अङ्गद से राम के विष्णु अवतार का रहस्य भी बताते हैं।[3] वे कहते हैं कि जब परमात्मा ने मनुष्य रूप धारण किया - तो उनकी माया से हमने वानर रूप धारण किया और उनकी सेवा करते हुये समस्त वानरगण वैकुण्ठ में जायेंगें। पूर्वकाल में भी तप: स्वरूप वे उनके पार्षद हुये थे। इस प्रकार अध्यात्मरामायण में वर्णन-भक्ति से पूर्ण व राम के अवतार और मायामय कार्यों से पूर्ण है।

वानरों के द्वारा प्रायोपवेशन[4] जटायु-प्रसङ्ग, संपति का पूर्व वृतान्त, उसके दग्ध पंखों का उगना आदि प्रसङ्गों में अध्यात्मरामायण में वाल्मीकिरामायण से साम्य है। दोनों स्थलों पर सीता का पता बताने पर पंखों के उगने का वृतान्त है।[5] अध्यात्मरामायण में एक अन्तर है। वहाँ पर चन्द्रमा द्वारा सम्पाति को दिये गए दार्शनिक उपदेश अधिक हैं।[6] उसमें देह की उत्पत्ति, जीव का कर्तव्य, भोक्तृत्व, अज्ञान तथा सुख-दु:खादि कावर्णन तथा जीव और आत्म-तत्व का विस्तृत विवेचन हुआ है। प्रारब्ध कर्मों का, आत्मा के अविनाशी स्वरूप का और आत्मज्ञान द्वारा सुखदु:खादि के नष्ट होने का वर्णन हुआ है। आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर प्रारब्ध-क्षय पर्यन्त मनुष्य को देह धारण कर रहना चाहिये। आत्मा का ज्ञान होने पर मोह नष्ट हो जाता है।

---

1 वा० रा० 4/54 / 6 से 15 तक व अ० रा० 4/7/11, 12

2 वा० रा० 4/53/8, 25

3 अ० रा० 4/7/16 से 22

4 वा० रा० 4/45/20 व अ० रा० 4/7/28, 29

5 अ० रा० 4/8/53, 53

फिर यह शरीर रहे या न रहे।

समुद्रोल्लंघन-मंत्रणा:-

सीता के दर्शन की लालसा से आशान्वित वानरगणों द्वारा अङ्गद के कहने पर परस्पर, समुद्रोल्लंघन करने के लिये अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन दोनों में समान है।[1] इस विषय में जाम्बवान् ने भगवान् के वामनावतार के समय 21 बार पृथ्वी की परिक्रमा करने का पूर्व-वृतान्त कहा। परन्तु वृद्धावस्था की असमर्थता प्रकट की।[2] अङ्गद को वापस लौटने में संदेह रहा है।[3] जाम्बवान् हनुमान् को सर्वश्रेष्ठ समझकर उनके वीर्य की प्रशंसा करते हैं। हनुमान् का पूर्व-वृतान्त वर्णन[4] कर उनके बल-महात्म्य को बताकर उन्हें तैयार करते हैं। हनुमान् के प्रस्थान के समय अध्यात्मरामायण में, जाम्बवान् उन्हें आशीर्वाद देते हैं।[5]

वाल्मीकिरामायण एवं अध्यात्मरामायण दोनों में हनुमान् का महेन्द्र पर्वत पर चढ़ जाने का उल्लेख है।[6] अध्यात्मरामायण में वायुपुत्र हनुमान् का विशालकाय, सुवर्णवर्ण अरूण के समान मनोहर स्वरूप का वर्णन है। वाल्मीकि-रामायण में हनुमान के लङ्का की ओर प्रस्थान का भी वर्णन किया है।[7] अध्यात्मरामायण में वर्णन नहीं है।

---

1 वा० रा० 4/65/9 से 15 तक
  अ० रा० 4/9/8

2 वा० रा० 4/65/19
  अ० रा० 4/9/20, 21

3 वा० रा० 4/66/3 से 37
  अ० रा० 4/9/12

4 वा० रा० 4/66 से 38 तक
  अ० रा० 4/9/16 से 20 तक

5 अ० रा० 4/9/25, 26

6 वा० रा० 4/67/40 व अ० रा० 4/9/28

7 वा० रा० 4/67/50

सुन्दरकाण्ड

अध्यात्मरामायण में कथाक्रम :-

हनुमान् जी मकरादि जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र को लाघने के लिये परमात्मा राम का स्मरण कर, उद्यत होते हैं। देवतागण उनकी बल-परीक्षा के लिये नागमाता सुरसा को भेजते हैं। वहां पर सफलता प्राप्त कर वे आगे बढ़ते हैं। मैनाक द्वारा स्वागत प्राप्त कर और सागर-निवासिनी सिंहिका का वध कर वे समुद्र के दक्षिणी तट पर आते हैं। वहां त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बसी हुई लङ्का को देखकर नगर में घुसने का उपाय सोचते हैं। रात्रि में प्रवेश करने पर - लङ्कापुरी से उनकी भेंट होती है। वह उनको रोकती है। उस पर वे विजय प्राप्त करते हैं। लङ्किनी उनसे ब्रह्मा द्वारा बताये गये राम-जन्म - सम्बन्धी-वृतान्त तथा लङ्का विनाश का वर्णन करती है। उसी समय वह सीता के निवास स्थान को भी बताती है। तदनन्तर हनुमान् सूक्ष्म शरीर से लङ्का में प्रवेश करते हैं। वहां सम्पूर्ण नगर में घूमते हुये वे लङ्का का कथन याद करके अशोक वाटिका में सीता का दर्शन करते हैं। इसी समय रावण स्वप्न में एक स्वेच्छाचारी वानर को आया देखकर अशोक-वन में आता है। वहां सीता से राम की निन्दा कर अपनी पत्नी बनने के लिये कहता है। जानकी के राम के प्रति अटल-प्रेम व अपने प्रति कटु शब्दों को सुनकर वह उन्हें मारने को उद्यत होता है। मन्दोदरी उसे रोकती है। तत्पश्चात् अन्य राक्षसियों को सीता को त्रास देने की आज्ञा देकर चला जाता है। इसके पश्चात् त्रिजटा स्वप्न का और राक्षसियों के भयभीत होने का वर्णन है। तत्पश्चात् जानकी से हनुमान् भेंट करते हैं। राम की मुद्रिका देकर, सीता से वार्तालाप करके वे सीता की चूड़ामणि को राम के लिये लेकर विदा होते हैं। वहां से आने पर, वे वाटिका विध्वंश कर राक्षसों का तथा अक्ष का वध करते हैं। अन्त में, मेघनाथ द्वारा ब्रह्मपाश से बांध लिये जाते हैं। इसके बाद हनुमान्-रावण का सम्वाद होता है, जिसमें रावण को तत्व की शिक्षा देकर रामकी शरण में आने को कहते हैं। तत्पश्चात् लङ्कादहन का प्रसङ्ग आता है। लङ्का जलाकर हनुमान् सीता से विदा लेकर पुनः वानरों से मिलते हैं। समस्त

वानर मधु-वन में प्रसन्नता से मधुपान कर सीता का संदेश राम को सुनाने के लिये राम के पास पहुंचते हैं। वहां हनुमान् सीता का संदेश तथा अन्य समस्त वृतान्त सुनाकर राम की कृपा और भक्ति के अधिकारी होते हैं।

सुन्दरकाण्ड की कथा की तुलनात्मक समीक्षा

समुद्रोल्लंघन और लङ्का का प्रवेश :-

अध्यात्मरामायण में हनुमान् द्वारा समुद्रोल्लंघन के विस्तृत वर्णन से कथा प्रारम्भ होती है। उस समय हनुमान् के बल की परीक्षा के लिये, देवता नागमती सुरसा को भेजते हैं। सुरसा-प्रसङ्ग लगभग वाल्मीकिरामायण के समान है। अध्यात्मरामायण में सुरसा अपना अभिप्राय हनुमान् से व्यक्त करती है और उन्हें राम-कार्य के लिये प्रेरित करती है।[1] वाल्मीकिरामायण में हनुमान् पुनः आने की शपथ लेते हैं।[2] अध्यात्मरामायण में शपथ का वर्णन नहीं है। सुरसा के क्रोध का प्रसङ्ग समान है। अध्यात्मरामायण में इसके पश्चात् मैनाक पर्वत का प्रसङ्ग आता है। समुद्र की आज्ञा से मैनाक मनुष्य रूप में हनुमान का स्वागत करने को अपने मणिमय शिखरों पर आता है और फल-फूल आदि से उनका आतिथ्य करना चाहता है किन्तु हनुमान् कहते हैं कि राम-कार्य के लिये जाते हुये वे भोजनादि नहीं कर सकते हैं। मैनाक के सम्मान के लिये वे उसके शिखरों को उंगली से छू देते हैं।[3] वाल्मीकिरामायण में मैनाक के पूर्व-वृतान्त का विस्तृत वर्णन है।[4] इन्द्र द्वारा अभयदान आदि प्रसङ्गों का भी अध्यात्मरामायण में अभाव है।

समुद्रोल्लंघन के समय मार्ग में छाया-ग्राहिणी सिंहिका के प्रसङ्ग

---

1 अ० रा० 5/1/23, 24

2 वा० रा० 5/1/49

3 अ० रा० 5/1/26 से 33

4 वा० रा० 5/1/115 से 119

का भी उल्लेख वाल्मीकिरामायण में विस्तार से है।[1] अध्यात्मरामायण में वर्णन संक्षिप्त है। अध्यात्मरामायण में हनुमान् उसे पैरों से मारते हैं।[2] वाल्मीकिरामायण में मर्म-स्थान विदीर्ण करते हैं।

दक्षिण-तट पर पहुँच कर हनुमान् त्रिकूट पर्वत पर स्थित लङ्का पुरी को देखते हैं। वाल्मीकिरामायण में विशद विवेचन है।[3] हनुमान् वहाँ प्रवेश करने का विचार करते हैं। वाल्मीकिरामायण में इसकी विस्तृत व्याख्या है।[4] वे सूक्ष्म रूप में लङ्का में रात्रि में प्रवेश करते हैं। वहाँ राक्षसरूप धारिणी लङ्का उनको रोकती है। इस प्रसङ्ग का दोनों ग्रन्थों में समान वर्णन है। वाल्मीकिरामायण की भाँति अध्यात्मरामायण में भी वह हनुमान् पर पाद-प्रहार करती है। हनुमान् द्वारा मुष्टि-प्रहार का वर्णन भी दोनों ग्रन्थों में है। वाल्मीकिरामायण में लङ्किनी हनुमान् से कहती है कि लङ्किनी के पराजित होने पर विपत्ति का आगमन निश्चित है।[5] अध्यात्मरामायण में लङ्किनी हनुमान को बताती है कि पूर्वकाल में ब्रह्मा ने कहा था कि चतुर्युग के त्रेता युग में रावण के विनाश के लिये नारायण का राम अवतार होगा। सुग्रीव के द्वारा उनकी भार्या की खोज के लिये भेजे गये वानरों में से एक के प्रहार से जब वह व्याकुल होगी, उसी समय रावण का विनाश होगा।[6] अध्यात्मरामायण में, लङ्किनी सीता के निवास-स्थान का भी निर्देश करती है।[7] इसके बाद वह कहती है कि बहुत दिनों में अब उसे मोक्ष प्रदायिनी राम की स्मृति प्राप्त हुई है और उनके भक्त का दुर्लभ सङ्ग।[8] इस प्रकार उसका

---

1 वा०रा० 5/1/180, 190

2 अ० रा० 5/1/38

3 वा०रा० 5/2/124

4 वा०रा० 5/2/31, 35

5 अ० रा० 5/1/48 से 53

6 अ० रा० 5/1/54 से 56

7 अ० रा० 5/1/57

8 वा०रा० 5/14/7 से 9

रूप राम-भक्त के रूप में चित्रित है।

सीतान्वेषण में तत्पर हनुमान्, वाल्मीकिरामायण में, सर्वत्र नगरी में खोजकर अशोक वनिका में स्वत: प्रदार्पण करते हैं - यहीं पर वाटिका के समीप प्रासाद में सीता का दर्शन करते हैं।[1] अध्यात्मरामायण में वे नगर-भ्रमण करते हुये लङ्काापुरी के वचन का स्मरण कर अशोकवन में शिशंपा वृक्ष के नीचे बैठी सीता का दर्शन करते हैं।[2] वाल्मीकिरामायण में वे सीता के सौन्दर्य तथा तेज द्वारा उन्हें सीता समझते हैं। अध्यात्मरामायण में इस प्रकार कुछ नहीं है। वाल्मीकिरामायण में सीता को देख हनुमान् करूण हो उठते हैं।[3] वहां वे उनके रूप, वैभव चरित्रादि का सम्यक् निरूपण करते हैं। दोनों में अति दीनवदना, मलिनाम्बरधारिणी, एक वेणी धारण की हुई सीता का रूप है।[4] वाल्मीकिरामायण में राक्षसियों से घिरी हुई हैं।[5] अध्यात्म-रामायण में वृक्ष के पते में छिपकर हनुमान् जानकी का दर्शन कर कृतार्थ होते हैं। वहीं पर दोनों ग्रन्थों में आते हुये रावण को देखकर हनुमान् पतो में छिप जाते हैं।[6] वाल्मीकिरामायण में रावण सोकर उठते ही अपनी विशिष्ट रानियों सहित आया है। अध्यात्मरामायण में यह कथा है कि रावण को स्वप्न हुआ था कि राम का सन्देश लेकर आया हुआ एक वानर सूक्ष्म रूप से वृक्ष की शाखा पर बैठा देख रहा है। अत: वह स्वप्न को देखते ही जानकी को इसलिये दुखी करने आता है जिससे वह दूत राम के पास जाकर सब वृतान्त कहे।[7]

वाल्मीकिरामायण में सीता के समीप वह क्रूर कामान्धता का

---

1 वा0 रा0 5/14 सं0 एवम् 5/15/53

2 अ0 रा0 5/2/7, 8, 9

3 वा0 रा0 5/15/20, 26, 5/15/18, 43

4 वा0 रा0 5/15/53 व अ0 रा0 5/2/8, 9

5 वा0 रा0 5/15/38 से 54

6 अ0 रा0 5/2/12/14

7 अ0 रा0 5/2/15, 19

आनन्दरामायण सार 9/69, 71

परिचय देता है।[1] अध्यात्मरामायण में वह राम की निन्दा कर सीता के प्रति अपना प्रेम प्रकट करता है।[2] वाल्मीकि रामायण में सीता उसका तिरस्कार कर नैतिक उपदेश देती हैं। वह रावण की अत्यधिक भर्त्सना करती हैं। अध्यात्म-रामायण में भी वाल्मीकिरामायण की भाँति बीच में तृण रखकर वे रावण को कठोर वचन कहती हैं।[3] अध्यात्मरामायण में सीता की कटूक्तियों को सुनकर रावण सीता को मारने को उद्यत है। मन्दोदरी उसे इस कार्य से रोकती है।[4] रावण राक्षसियों को आज्ञा देता है कि भय अथवा आदर से वे सीता को उसके अनुकूल करें।[5] वाल्मीकि रामायण में वे सीता को रावण के प्रति उन्मुख करने का प्रयत्न करती हैं।[6] अध्यात्मरामायण में वे उनको तरह-तरह से भयभीत करती हैं।[7] दोनों ग्रन्थों में त्रिजटा के स्वप्न का वर्णन है।[8] वाल्मीकिरामायण में वे भयभीत राक्षसियों को सुरक्षा का वचन देती हैं। अध्यात्मरामायण में वे उनका भय देखकर स्वयं मूर्च्छित हो जाती है।[9]

जानकी से भेंट :-

तदनन्तर सीता का शोक, से सन्तप्त होकर वेणी के दृढ़े धागों द्वारा आत्महत्या करने का प्रसङ्ग वाल्मीकिरामायण के समान ही है।[10]

निशाचरियों के जाने के उपरान्त अध्यात्मरामायण में हनुमान् वृक्ष की शाखा पर स्थित होकर ही मधुरवाणी से रामचरित्र का वर्णन करते हैं।

---

1 वा० रा० 5/17/20

2 अ० रा० 5/2/20 से 30

3 अ० रा० 5/2/31 से 35

4 अ० रा० 5/2/37, 38

5 अ० रा० 5/2/40

6 वा० रा० 5/22/8

7 अ० रा० 5/2/43 से 46

8 अ० रा० 5/2/49 से 54 व वा० रा० 5/23 सर्ग

9 वा० रा० 5/24/47 व अ० रा० 5/2/56

10 अ० रा० 5/3/2 व वा० रा० 5/26/9 से 30

उसे सुनकर सीता उस कथा के कहने वाले को सामने प्रकट होने के लिये कहती हैं।[1] वाल्मीकिरामायण में वे राम-लक्ष्मण के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। मैत्री-वृतान्त बताते हैं एवं अपना जीवन-परिचय उनकी शङ्का निवारण हेतु देते हैं।[2] अध्यात्मरामायण में वे अपने को राम का दास और सुग्रीव का मन्त्री कहते हैं। सीता के पूछने पर वे वानर सुग्रीव व राम की मैत्री का परिचय देते समय राम-नामाङ्कित मुद्रिका देते हैं।[3] वाल्मीकिरामायण में भी इसका उल्लेख है। पूर्ण विश्वस्त होकर सीता अपनी विपत्तियाँ तथा रावण द्वारा निश्चित अवधि की सूचना देती हैं।[4] अन्य प्रसङ्ग समान हैं। दोनों में इसी समय हनुमान् ने सीता से चूड़ामणि लेकर विदा ली है।[5] सीता हनुमान् से जयंत प्रसंग को भी बताती हैं।[6] अध्यात्मरामायण में जयन्त के द्वारा पैर में चोंच मारने का प्रसङ्ग है।[7] अन्य प्रसङ्ग समान हैं।

वाटिका-विध्वंस :-

वाटिका-विध्वंस का उद्देश्य वाल्मीकिरामायण में शत्रु बल-ज्ञान की परीक्षा एवं रावण का क्रोध उत्पन्न करना है। अध्यात्मरामायण में भी वे राम के कार्य हेतु रावण से मिलने के लिये ही यह कार्य करते हैं।[8]

निशाचरियों के द्वारा हनुमान् के विषय में पूछे जाने पर वे कहती हैं कि इस राक्षसी माया को आप ही जानें। राक्षसियाँ तुरन्त रावण के पास उसकी सूचना देती हैं, वे हनुमान् सीता सम्भाषण को भी बताती हैं। राक्षसों

---

1 अ० रा० 5/3/18

2 वा० रा० 5/28/17 व अ० रा० 5/3/12

3 अ० रा० 5/3/32 से 35 तक

4 अ० रा० 5/3/38 से 44 तक

5 वा० रा० 5/38/68 व अ० रा० 5/3/49/52

6 वा० रा० 5/38/11 से 37

7 वा० रा० 5/41/7, 13, 21

8 अ० रा० 5/3/70

का वध कर हनुमान् रावण-पुत्र, अक्ष का वध करते हैं। वाल्मीकिरामायण में राक्षसों के नाम भी गिनाये गये हैं।[1]

हनुमान् का ब्रह्मपाश बन्धन :-

युद्ध में अक्ष का वध सुनकर रावण मेघनाद को भेजता है। वह ब्रह्मास्त्र से हनुमान को बांध लेता है। वाल्मीकिरामायण में ब्रह्मास्त्र से मुक्त होने में अपने को असमर्थ समझकर तथा रावण से वार्तालाप करने के लिये ही हनुमान् बंधते हैं।[2] अध्यात्मरामायण में ऐसा वर्णन नहीं है। कारण न देकर ग्रन्थकार ने यह कहा है कि जिनके नाम-जप से भक्तजन एकक्षण में ही अज्ञानकृत बन्धन को काटकर परम पद पाते हैं, उन्हीं के चरणों का ध्यान करने वाले समस्त बन्धनों से मुक्त हनुमान् का ब्रह्मास्त्र आदि बन्धन क्या करते हैं।[3]

वाल्मीकि रामायण में रावण के दरबार के प्रताप और ऐश्वर्य का अधिक वर्णन है जिसे देखकर हनुमान् सशंकित हो गये।[3] अध्यात्मरामायण में रावण ने प्रहस्त को हनुमान् का वृतान्त पूंछने का आदेश दिया।

हनुमान् रावण संवाद :-

अध्यात्मरामायण में हनुमान् रावण को आत्म-तत्व का विवेकपूर्ण दार्शनिक उपदेश देते हैं और भक्ति एवं विवेकपूर्ण मार्ग का वर्णन कर उसे राम-भक्ति करने के लिये कहते हैं।[5] क्रुद्ध होकर रावण हनुमान् को मार डालने की आज्ञा देता है। उस समय विभीषण दूत को अवध्य कहकर रावण को रोकता है। विभीषण उनके लिये बध के समान ही दण्ड निर्धारण करने को कहता है।[6]

---

1 वा० रा० 5/44/45/46, 47
2 वा० रा० 5/48/42 से 55
3 अ० रा० 5/4/99/100
4 वा० रा० 5/49/20
5 अ० रा० 5/5/15 से 23 तक
6 अ० रा० 5/4/31/32

वाल्मीकिरामायण में भी विभीषण ही परामर्श देता है। रावण हनुमान् की पूंछ जलाने की आज्ञा देता है।

लङ्का दहन :-

वाल्मीकिरामायण में लङ्का दहन का व्यापक चित्रण है।[1] अध्यात्म-रामायण में संक्षेप में। अध्यात्मरामायण में सीता की प्रार्थना पर तथा वायु का पुत्र होने के कारण अग्नि उन्हें जला न सकी। वाल्मीकिरामायण में भी ऐसा वर्णन है। वाल्मीकिरामायण में वे सीता के जलने की शङ्का से भी आशङ्कित होते हैं किन्तु चारणों से उनके अक्षत होने की बात सुनकर उनसे पुन: मिलने की इच्छा करते हैं।[2] अध्यात्मरामायण में राम का महत्व वर्णन के लिये औरभी कहा गया है कि जिसका नाम तापत्रयरूप अग्नि को शान्त करता है उसके दूत को यह अग्नि कैसे जला सकती है।[3] अध्यात्मरामायण में हनुमान् को चोर कहकर सारे नगर में घुमाया जाता है।[4] वाल्मीकिरामायण में पहले घुमाकर तब आग लगाने का वर्णन है।

सीता से विदा और राम को सीता का सन्देश सुनाना :-

अध्यात्मरामायण में वे सीता से विदा लेने जाते हैं और उन्हें आश्वासन देते हैं।[5] वाल्मीकिरामायण में यह प्रसङ्ग कुछ विस्तृत है। वहां हनुमान् से वे एक दिन और ठहरने के लिए कहती हैं।[6] अध्यात्मरामायण में सीता कहती हैं, तुम जा रहे हो, मैं कैसे प्राणधारण करूं।[7] अध्यात्मरामायण में वे सीता को कन्धे पर चढ़ाकर ले जाने को कहते हैं।[8] वाल्मीकिरामायण में पीठ पर ले जाने का वर्णन है। अध्यात्मरामायण में सीता कहती हैं कि यदि

---

1 वा0 रा0 5/5/31, 32 2 वा0 रा0 5/53, 54/55

3 वा0 रा0 5/55/6, 15 तथा 5/61/1

4 अ0 रा0 5/4/38 5 अ0 रा0 5/4/36, 38

6 अ0 रा0 5/36/3 7 अ0 रा0 5/5/5

8 अ0 रा0 5/5/6

राम राक्षसों का संहारकर उन्हें ले जायेंगे, तो उनकी अमर कीर्ति होगी।[1] वाल्मीकिरामायण में वर्णन है कि परपुरूष का स्पर्श वे नहीं कर सकती हैं और विजय-लाभकर्ता राम को भी देखना चाहती हैं।[2] अध्यात्मरामायण में समुद्रतट पर हनुमान् वानरों से मिलते हैं। वहाँ प्रसन्नता में वे मधुवन को उजाड़कर फिर राम से मिलने जाते हैं। दधिमुख आदि प्रसङ्ग भी रामायण के समान हैं। अनुमान् सीता का वृतान्त राम को सुनाते हैं, उनसे मिलने का वर्णन करते हैं और सीता की दी हुई चूड़ामणि देते हैं और जयन्त प्रसङ्ग भी बताते हैं। प्रसन्न होकर राम हनुमान् का आलिङ्गन कर उन्हें अपना सर्वस्व सौंप देते हैं। वाल्मीकिरामायण में भी यहीं पर सुन्दरकाण्ड की कथा समाप्त होती है। अध्यात्मरामायण का कथाकार राम की भक्ति के वर्णन हेतु कहता है कि जिनकी पूजा कर भक्तजन विष्णुपद प्राप्त करते हैं, उनके आलिङ्गन को पाने वाले पवन-पुत्र धन्य हैं।[3]

---

1 अ० रा० 5/5/7,8

2 वा० रा० 5/37/18

3 अ० रा० 5/5/64

युद्ध-काण्ड

अध्यात्मरामायण में कथा-क्रम :-

राम का प्रत्याशित कार्यकर हनुमान् के आने पर राम ने उनकी प्रशंसा की। सीता की प्राप्ति के लिये व्यग्र राम समुद्रोल्लंघन के विचार से हतोत्साह हो उठते हैं। सुग्रीव द्वारा ढाढ़स बंधाये जाने पर राम को आशा होती है और वे हनुमान् से लङ्का के विषय में पूछते हैं। हनुमान् से लङ्कापुरी की स्थिति, सुरक्षा तथा सैन्य-बल इत्यादि जानकर राम विजया मुहूर्त में सेना सहित प्रस्थान करते हैं। मलयाचल और सह्याद्रि पर्वतों को पारकर समुद्र-तट पर पहुंचते हैं। वहां वे सीता की स्मृति से दुखित होते हैं।

उधर रावण हनुमान् द्वारा लङ्का विध्वंस आदि का स्मरण कर मंत्रियों के साथ मन्त्रणा करता है। वे उसे निश्चित विजय का आश्वासन देकर युद्ध की ओर प्रेरित करते हैं। परन्तु उसी समय वहां कुम्भकर्ण राम के ब्रह्म होने का वर्णनकर, रावण को तत्व-ज्ञान का उपदेश देते हुये सीता को लौटा देने का परामर्श देता है। उसी समय राम-भक्त विभीषण भी आकर रावण को, सीता को लौटा देने का परामर्श देता है। उसके परामर्श को सुनकर रावण विभीषण का तिरस्कार करता है। रावण को चेतावनी देकर विभीषण अपने चार मन्त्रियों सहित आकाश मार्ग से राम के समीप आता है। सुग्रीव के द्वारा आशङ्का व्यक्त की जाने पर भी राम उसे शरण में आया जानकर स्वीकार कर लेते हैं। शरणागत विभीषण का, राम तुरन्त समुद्र के जल से राज्याभिषेक कर देते हैं। इसी समय शुक नामक रावण कामंत्री विभीषण को लेने आता है और रावण का संदेश कहने पर राम-सेना उसे अनेक प्रकार से दण्डित करती है। शुक के द्वारा दूत को अवध्य कहने पर वे उसे मुक्त कर देते हैं और वानरों की रक्षा में वह छोड़ दिया जाता है।

समुद्र-तट पर, राम समुद्र की धृष्टता को देखकर क्रुद्ध होते हैं और वे सुखा डालने की योजना करते हैं। राम का रौद्र रूप देखकर, सागर स्वयं

दिव्य रत्नादि लेकर प्रकट होता है। वह राम की अनेकों प्रकार से स्तुति करता है। राम के अमोघ वाण का लक्ष्य द्रुमकुल्य नाम का देश होता है। समुद्र स्वयं राम को नल द्वारा पुल निर्माण की योजना का परामर्श देता है। नल एवं सैन्य सहयोग से पुल का निर्माण होता है। राम वहाँ पर सेतुबन्ध के आरम्भ होने पर रामेश्वर महादेव की स्थापना करते हैं और उनका पूजन करते हैं। समुद्र को पारकर वे सुबेल पर्वत पर पहुंचकर अतिविस्तीर्ण लड्0कापुरी को देखते हैं।

इसी समय शुक नामक दैत्य, वानरों से मुक्त हो, रावण के पास जाकर सम्पूर्ण विस्तृत वृतान्त व राम के सैन्य बल का वर्णन रावण से करता है और सीता को लौटा देने को कहता है। रावण द्वारा तिरस्कृत हो वह अपने घर चला जाता है। यहीं पर शुक के पूर्व चरित्र का वर्णन है। शुक के जाने पर रावण की माता का पिता, माल्यवान्, रावण को सीता लौटा देने का परामर्श देता है और लड्0का विनाश के लिये उपस्थित अपशकुनों का वर्णन करता है। रावण माल्यवान् का भी अपमान करता है। इसके बाद वह राक्षसों को युद्ध के लिये नियुक्त करता है।

इधर रामचन्द्र अपने अर्धचन्द्राकार वाण से रावण के श्वेत-छत्र और दशो मुकुट काट डालते हैं।

राम की सेना लड्0का को चारों ओर से घेर लेती है। दोनों ओर से युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। मेघनाद अदृश्य होकर राम की सेना का संहार करता है। राम को क्रुद्ध देखकर वह नगर वापस लौट जाता है। राम हनुमान् से द्रोणाचल पर्वत से दिव्य-औषधि मंगाकर मृत वानरों को जीवित करते हैं। इसके बाद इन्द्रजित् को रक्षार्थ नियुक्त कर स्वयं रावण युद्ध करने के लिये आता है। वहां विभीषण की ओर वह मय-दानव की दी हुई शक्ति को छोड़ता है। राम द्वारा अभय-प्रदत विभीषण की रक्षार्थ लक्ष्मण आगे आते है। वह अमोघ शक्ति लक्ष्मण के शरीर में घुस जाती है। वे मूर्च्छित हो जाते हैं। हनुमान् उन्हें राम के पास उठाकर ले जाते हैं। राम उन्हें देखकर शोकाकुल हो जाते हैं। राम हनुमान् से पुन: द्रोणाचल से महोषधि लाने के लिये कहते हैं। रावण द्वारा भेजा गया कालनेमि उनके मार्ग में विघ्न उपस्थित करता है।

उस पर विजय पाकर हनुमान् औषधि लाकर लक्ष्मण को जीवित करते हैं।

भगवान् राम के वाणों से विह्वल होकर रावण राक्षसों से कहता है कि साक्षात् नारायण ने उसके विनाश के लिये अवतार लिया है। वहां से यह अपनी सहायतार्थ कुम्भकर्ण के पास जाता है। कुम्भकर्ण उसे नारद से ज्ञात हुई बातों से अवगत कराता है। वह कहता है कि विष्णु ने राम रूप से रावण के विनाश के लिए अवतार लिया है। अत: उसे जानकी लौटा देनी चाहिये। वह रावण को राम-भक्ति की शिक्षा भी देता है। रावण द्वारा कटु वचन कहे जाने पर युद्ध के लिये आता है। युद्ध क्षेत्र में वह विभीषण से मिलताहै और उसकी प्रशंसा कर वह उसको युद्ध क्षेत्र से चले जाने के लिये कहता है। राम व कुम्भकर्ण में युद्ध होता है। कुम्भकर्ण राम के हाथों मारा जाता है। इसी समय देवता तथा नारदादि परमात्मा राम की स्तुति करते हैं। इधर इन्द्रजित् निकुम्भिला गुफा में यज्ञ करने जाता है। विभीषण इस कार्य का पता लगाते हैं और इन्द्रजित् के वध का उपाय राम को बताते हैं। विभीषण तथा हनुमान् आदि के सहित लक्ष्मण निकुम्भिला के स्थान पर जाते हैं। वहां लक्ष्मण व इन्द्र-जित के मध्य युद्ध होता है। लक्ष्मण वाण से उसका वध करते हैं।

पुत्र-शोक से व्याकुल रावण सीता को मारने को उद्यत होता है। किन्तु सुपार्श्व के समझाने पर शान्त हो जाता है। तत्पश्चात् राम-रावण युद्ध होता है। राम के वाण से व्याकुल रावण लड्0का लौट आता है। तत्पश्चात् वह शुक्राचार्य से परामर्श करता है। उनकी आज्ञा से पाताल में एक गुहा तैयार कराके होम करता है। विभीषण राम से इस हवन को विनष्ट करने को कहते हैं। अड्0गद व हनुमान् वहां जाते हैं। विभीषण पत्नी सरमा की सहायता से होम-स्थान देखकर क्रुद्ध रावण अड्0गद को मारने उठता है। तब यज्ञ-विध्वंस कर वानर चले आते हैं। रावण मन्दोदरी को ढाढ़स बंधाकर उसे अपनी मृत्योप-रान्त सीता को मारने और चिता में प्रवेश करने की आज्ञा देकर युद्ध के लिये आता है। मन्दोदरी यहीं पर रावण को समझाती हुई विष्णु के अवतार-स्वरूपों का वर्णन करती है। राम-रावण का युद्ध होता है। इसी समय इन्द्र-मातलि सहित अपना रथ राम के पास भेजते हैं। रावण-राम को अपने वाणों

से व्यथितकार मातलि को बेध डालता है। राम ने ऐन्द्रास्त्र से रावण के एक सौ एक शिर काट डालने का सफल उपक्रम किया किन्तु फिर भी रावण का विनाश न देखकर राम चिन्ताग्रस्त होते हैं। इस पर विभीषण बताता है कि रावण के नाभि देश में अमृत सुरक्षित है - उसे सुखाने पर ही रावण का विनाश होगा। राम आग्नेयास्त्र उसकी नाभि में मारते हैं। मातलि के स्मरण दिलाने पर महान् तेजस्वी ब्रह्मास्त्र से राम रावण का वध करते हैं। राम के हाथों मरकर रावण सायुज्ज मुक्ति प्राप्त करता है। देवता गण राम की स्तुति और पुष्प-वर्षा करते हैं।

इसके बाद शोक सन्तप्त विभीषण को लक्ष्मण तत्व-ज्ञान का उपदेश देते हैं और उसके द्वारा रावण का और्ध्व-दैहिक कार्य-सम्पन्न कराते हैं। राम की आज्ञा से इसी समय विभीषण सम्मानपूर्वक जानकी को लाता है। राम उनके चरित्र के विषय में सन्देहयुक्त बातें कहते हैं। सीता राम के विश्वास के लिये और लोगों के निश्चय के लिए अग्नि में प्रवेश करती है। साक्षात् अग्नि-देव उनकी पवित्रता के प्रमाण के लिये विदेह पुत्री को गोद में लेकर प्रकट होते हैं। राम, जानकी-ग्रहण पर प्रसन्न होते हैं। राम इन्द्र से समस्त वानरों को जीवित करने के लिये कहते हैं। इन्द्र अमृत-वर्षा से सबको जीवन देते हैं। इसके पश्चात् विभिन्न स्थानों को देखते हुये समस्त वानरगणों के सहित राम-सीता-लक्ष्मण, अयोध्या की यात्रा करते हैं। मार्ग में भरद्वाज का आतिथ्य स्वीकार कर भरत से मिलते हैं। इसके बाद राम का राज्याभिषेक और वानरों की विदाई कावर्णन है। ग्रन्थ प्रशंसा के वर्णन से युद्ध काण्ड की समाप्तिहोती है।

युद्धकाण्ड की कथा की तुलनात्मक समीक्षा

वानर सेना का लङ्का की ओर प्रस्थान:-

राम-कार्य को सम्पन्न करने पर राम द्वारा हनुमान् के प्रति कतज्ञता व्यक्त कर उनकी प्रशंसा करना, समुद्रोल्लंघन की चिन्ता से व्याकुल होना और सुग्रीव द्वारा आश्वस्त कराया जाना, हनुमान से लङ्का का रूप पूछना और विजया नामक शुभ-मुहूर्त में लङ्का की ओर प्रस्थान करना आदि प्रसङ्गों का अध्यात्मरामायण में वर्णन हुआ है और इन प्रसङ्गों की वाल्मीकिरामायण से साम्यता है। दोनों ग्रन्थों में समुद्र तट पर पहुँचकर सीता के दुःख से राम दुःखी होते हैं। अध्यात्मरामायण में वर्णन है कि उनका दुःखी होना लीलामात्र है क्योंकिसुख-दुःख देहाभिमानी को होते हैं। राम तो साक्षात् ब्रह्म हैं। अपने मायिक गुणों से ही वे सुखी और दुःखी दिखाई देते हैं।[1] इसका उद्देश्य आध्यात्मिक तत्वों का वर्णन करना है। साथ ही राम के ब्रह्म होने की बात बताना भी लेखक का उद्देश्य है।

लङ्कापुरी में रावण का मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करने का वर्णन भी समान ही है।

विभीषण-शरणागति :-

अध्यात्मरामायण में विभीषण के तिरस्कार के पहले राक्षसराज रावण और कुम्भकर्ण का वार्तालाप होता है।[2] इसमें वह राम को परब्रह्म कहता है और सीता को लौटा देने का परामर्श देता है।[3]

---

1 अ० रा० 6/2/49 से 54

2 अ० रा० 6/2/13, 14

3 अ० रा० 6/2

अध्यात्मरामायण में विभीषण काप्रसङ्ग बहुत कुछ अंशों में वाल्मीकिरामायण के समान है। केवल विभीषण का चित्रण भक्त-रूप में किया गया है। भागवत् प्रधान विभीषण ने राम-सीता के आध्यात्मिक रूप का परिचय कराया है।[1] रावण द्वारा तिरस्कृत होने पर वाल्मीकिरामायण की भांति वह राम के पास चला आता है।[2]

वहाँ पहुंचने पर वाल्मीकिरामायण में राम के सेना नायकों ने उस पर सन्देह किया। राम के समस्त मंत्रिमण्डल ने विभीषण में दोष देखे।[3] केवल हनुमान् ने विभीषण को मित्र बनाने का परामर्श दिया।[4] अन्त में राम हनुमान् के पक्ष का समर्थन कर और अपने शरणागत-धर्म को प्रमाणित कर विभीषण को अपनी शरण में ले लेते हैं।[5] राजनीतिज्ञ राम ने विभीषण को अपना सुहृद् बनाकर रावण के सैन्यबल का ज्ञान प्राप्त कर लिया।[6] रावण-वध का संकल्प कर, राम ने सागर के जल से लक्ष्मण द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक कराया।[7] अध्यात्म-रामायण में केवल सुग्रीव विभीषण पर संदेह करता है।[8] किन्तु राम अपनी शक्ति के विषय में बताकर अपनी शरणागत-भयहारी-नीति को कहकर विभीषण को शीघ्र लाने को कहते हैं। राम कहते हैं - सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।[9] शरणापन्न विभीषण प्रसन्नवदन राम व लक्ष्मण की भक्तिपूर्ण स्तुति करता है। राम के आध्यात्मिक रूप का वर्णन करते हुये वह संसारसाग से रक्षा हेतु राम की

---

1 अ० रा० 6/2/34 से 43 तक

2 विभीषणो रावणवाक्यत: क्षणाद्विसृज्य सर्वं सपरिच्छदगृहम्।
जगाम रामस्य पदारविन्दयो:, सेवाभिकांक्षी परिपूर्ण मानस:।।
-अ०रा० 6/2/46

3 वा०रा० 6/17/18 से 49 तक

4 वा० रा० 6/17/50 से 68 तक

5 वा० रा० 6/18/22 से 34 तक

6 वा० रा० 6/19/[illegible] 7

7 वा०रा० 6/19/26

8 अ० रा० 6/3/7,8,9

9 अ० रा० 6/3/12

10 अ० रा० 6/3/15,16

स्तुति करता है।[1] विभीषण कर्मबन्धन को नष्ट करने वाली भक्ति और उससे प्राप्तहोने वाले ज्ञान की कामना करता है।[2] वह राम की आसक्तिरूपा भक्ति की याचना करता है। राम उसे अपने तत्व के रूप में भक्ति व भक्त का महत्व बताते हैं।[3] इस प्रकार सम्पूर्ण प्रसङ्ग आध्यात्मिक वातावरण का है। राम अपने दर्शन के प्रभावस्वरूप विभीषण को लङ्का के राज्य पद पर अभिषिक्त करते हैं। वे कहते हैं कि जब तक सृष्टि रहेगी विभीषण लङ्का का राजा रहेगा।

भक्ति की महता बताते हुये वानरगण कहते हैं कि विभीषण उन सब से श्रेष्ठ है क्योंकि उसने केवल भक्ति से ही भगवान की शरण ली है।[4]

रावण-दूत-प्रेषण :-

इसी मध्य रावण द्वारा भेजे गये राम-सैन्य-बल के जिज्ञासु रावण के दूत आने लगे। वाल्मीकिरामायण में कई दूतों का वर्णन है।[5] किन्तु अध्यात्मरामायण में शुक का सम्वाद ही उल्लिखित है। दोनों ग्रन्थों में सर्व-प्रथम शार्दूल ने सेना का निरीक्षण कर रावण से निवेदन किया है।[6] तत्प-श्चात शु-सम्वाद है। वानरसेना द्वारा उसे कष्ट पहुँचाने का वर्णन अध्यात्म-रामायण और वाल्मीकिरामायण में है। सुग्रीव द्वारा ही दोनों में सन्देश भेजने का वर्णन है। अन्तर केवल इतना है कि वाल्मीकिरामायण में अङ्गद की मन्त्रणा एवं सुग्रीव की आज्ञा से उसे पुनः बांध लिया जाता है। अध्यात्म-रामायण में राम की आज्ञा से उसे पकड़ते हैं।[7]

---

1 अ० रा० 6/3/15, 16

2 अ० रा० 6/3/36   3 अ० रा० 6/3/39

4 अ० रा० 6/3/47

5 वा० रा० 6/20, 6/25

6 अ० रा० 6/3/49

7 अ० रा० 6/3/55 तथा वा० रा० 6/20/32 से 35

समुद्र त्रास व सेतुबन्ध :-

वाल्मीकि रामायण में राम द्वारा तीन दिन तक समुद्र की प्रार्थना करने काउल्लेख है।[1] अध्यात्मरामायण में दिनों का वर्णन नहीं है। समुद्र द्वारा राम का स्वागत न करने पर वे क्रुद्ध हो उठते हैं और उसे सुखा डालने का निश्चय करते हैं। वाल्मीकिरामायण में वाणानुसन्धान पर लक्ष्मण उन्हें रोकते हैं। अध्यात्मरामायण में उनके रौद्र रूप को देखकर क्षुभित हो समुद्र दिव्यरूप में मणियों आदि को लेकर प्रकट होता है। वाल्मीकिरामायण में भी वह राम के क्रोध करने पर प्रकट होता है। विनम्र होकर वह नल द्वारा सेतुबन्ध-निर्माण का उपाय बताता है। अध्यात्मरामायण में वह अपने को जड़ बताकर सृष्टि की रचना का वर्णन करता हुआ राम के निर्गुण रूप का वर्णन करता है[2] और शरणागत होकर राम से अभयदान मांगता है।[3] वह अपनी दैन्यमुक्त वाणी से राम को शान्त करता है।[4] समुद्र द्वारा की गई स्तुति में आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन हुआ है। ऐसे विवेचनों के लिये भिन्न-भिन्न स्थलों पर स्तोत्रों की योजना हुई है। राम के अमोघ वाण का लक्ष्य समुद्र ने उत्तर की ओर द्रुमकुल्य नामक देश बताया।

नल द्वारा पुल-निर्माण और उसकी निर्माण-कला का, विश्वकर्मा का आशीर्वाद रामायण में वर्णित है। अध्यात्मरामायण में वह विश्वकर्मा का पुत्र कहा गया है। सेतुबन्ध के निर्माण का रामायण में विस्तृत एवं चित्रात्मक वर्णन है।[5] अध्यात्मरामायण में वर्णन अति संक्षेप में है। उसमें यह पुल एक सौ योजन विस्तीर्ण है।[6] अध्यात्मरामायण में सेतुबन्ध के आरम्भ होने पर रामेश्वर

---

1 वा०रा० 6/20/1 से 7 तक

2 अ० रा० 6/3/68 से 76 तक

3 अ० रा० 6/3/78

4 अ० रा० 6/3/75 से 78 तक

5 वा०रा० 6/22/51 से 69 तक

6 अ० रा० 6/3/87

महादेव की स्थापना का वर्णन है।[1] यह प्रसङ्ग ग्रन्थ में सर्वथा नवीन है। वाल्कीकिरामायण में इसका उल्लेख नहीं हुआ है। भगवान् ने रामेश्वर महादेव की स्थापना कर उनका पूजन किया। उनकी पूजा के महत्व का वर्णन भी वहां पर है। राम ने कहा है कि जो शिव का दर्शन कर सेतुबन्ध को प्रणाम करेगा वह ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्त हो जायेगा। जो सेतुबन्ध में स्नान कर, शिव का दर्शनकर सेतुबन्ध को प्रणाम कर काशी के गङ्गाजल से रामेश्वर का अभिषेक करके जलके पात्र को समुद्र में डाल देगा, वह ब्रहत्व को प्राप्त करता है। इस प्रसङ्ग से ज्ञात होता है कि विष्णु-भक्त होने के साथ ही ग्रन्थकार शिवभक्त भी है और उसने राम के द्वारा उनकी पूजा करा उनकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।

रावण-शुक-सम्वाद :-

समुद्र को पारकर राम सुबेल पर्वत पर आते हैं। शुक द्वारा रावण को सेतुबन्ध का सन्देश देने का वर्णन दोनों ग्रन्थों में हैं।[2] अध्यात्मरामायण में शुक के द्वारा राम के सैन्यबल का विस्तृत वर्णन हुआ है।[3] इसमें मुख्य-मुख्य वानरों के नाम, जैसे - सुग्रीव, हनुमान् अङ्गद, रम्भ, शरभ आदि के नामों का उल्लेख है। शुक इनके बल का वर्णन करता हुआ इनको दिखाता है। सेना की संख्या का भी वर्णन है।[4] अध्यात्मरामायण में शुक ने राम के ब्रह्मरूप का वर्णन तथा जीव, आत्मा आदि का तात्विक निरूपण किया है।[5] दार्शनिक विवेचन करने वाला शुक का रूप अध्यात्मरामायण में मिलता है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य ही है दार्शनिक तत्वों का विवेचन कथा के माध्यम से करना। भक्ति को प्रधानता देने के कारण कथाकार ने शुक के द्वारा रावण को राम की भक्ति

---

1 अ० रा० 6/4/1 से 4 तक

2 अ० रा० 6/4/15 से 4 तक वा० रा० 6/25 /32

3 अ० रा० 6/4/25 से 39 तक

4 अ० रा० 6/4/23 से 36 तक

5 अ० रा० 6/4/39 से 49 तक

करने की भी शिक्षा दी है। वह रावण को सत्सङ्ग व राम के चरणों की सेवा करने का उपदेश देता है। वाल्मीकिरामायण व अध्यात्मरामायण में इस प्रकार अन्तर है। वाल्मीकिरामायण में शुक द्वारा लक्ष्मण की पत्रिका रावण को देने का भी वर्णन है। अध्यात्मरामायण में उसको तिरस्कृत कर, रावण उसे जाने का कह देता है। इसमें शुक का पूर्व-जन्म का भी वृतान्त है।[1] अगस्त्य के शाप से इस ब्रह्मवेता ब्राह्मण को राक्षस का जन्म मिला था। अगस्त्य ने ही इसके शाप की समाप्ति के लिये बताया था कि राम के दर्शन पाकर, रावण को तत्व-ज्ञान का उपदेश देकर उसे परम-पद मिलेगा। अध्यात्मरामायण में शुक पूर्ववत् ब्राह्मण शरीर को प्राप्त कर वानप्रस्थों के साथ रहने लगा।

माल्यवान् का रावण को उपदेश :-

शुक के चले जाने पर रावण की माता के पिता माल्यवान् का रावण को राजनीति की शिक्षा देने का प्रसङ्ग है। साथ ही लङ्का में होने वाले अपशकुनों की ओर आकृष्ट कराने का वर्णन अध्यात्मरामायण में भी वाल्मीकिरामायण की भांति है।[2] वाल्मीकिरामायण में वह रावण को राजनीतिज्ञ के रूप में समझाता है। अध्यात्मरामायण में माल्यवान् का एक और रूप है। वह रावण से अपने कुल की कुशलता के लिये जानकी को वापस कर राम-भक्त होने की शिक्षा देता है।[3] अध्यात्मरामायण में रावण को समझाने वाले सभी पात्र दार्शनिक विवेचन करते हैं और राम-भक्ति करने का उपदेश अवश्य देते हैं। वे राम को ब्रह्मस्वरूप में जाननेवाले उनके भक्त-रूप में हैं। माल्यवान की भी बातों को न मानकर वह राक्षसों को युद्ध के लिये नियुक्त करता है। राम

---

1 अ० रा० 6/5/1 से 24 तक

2 अ० रा० 6/5/25 से 32 तक वा० रा० 6/35/स 8 से 37 तक

3 अ० रा० 6/5 /34 से 36 तक

तरन्ति भक्तिपूतान्तास्ततो रामो न मानुष:।
भजस्व भक्तिभावेन रामं सर्वहृदालयम ।।

राम की शक्ति ज्ञात होने पर व्याकुल रावण क्रियाशील हो जाता है। वाल्मीकि-रामायण में इसका उल्लेख है।[1] अध्यात्मरामायण में वर्णन है कि अनेक तत्वज्ञों से उपदिष्ट होकर रावण अपना हठ नहीं छोड़ता है। अध्यात्मरामायण में सुबेल पर्वत पर स्थित राम ने सभा में स्थित रावण के छत्र मुकुटादि को एक वाण से नष्ट कर दिया, जिससे रावण लज्जित हो जाता है।[2] सुग्रीव के द्वारा रावण के मुकुट आदि के निक्षेप का वर्णन वाल्मीकि-रामायण में है। वाल्मीकिरामायण में सुबेल पर्वत पर स्थित होने के पूर्व ही युद्धाह्वान की भूमिका बंध गई है। रावण के द्वारा राम के मायामय शिरों को[3] सीता को दिखाने का तथा शोक से व्याकुल सीता को सरमा के द्वारा सान्त्वना देने का और सरमा द्वारा युद्धविषयक समाचार ज्ञात करने आदि प्रसङ्गों का वर्णन वाल्मीकिरामायण की भाँति अध्यात्मरामायण में नहीं है। अङ्गद का दौत्य तथा अङ्गद रावण सम्वाद भी अध्यात्मरामायण में नहीं है। अध्यात्मरामायण में रावण को हठ पर स्थित देखकर दोनों पक्षों में युद्ध प्रारम्भ होता है। वानर-राक्षस युद्ध के बाद मेघनाद के युद्ध का वर्णन है। वाल्मीकिरामायण में पहले हनुमान्मेघनाद युद्ध होता है। अङ्गद के द्वारा कलश-भङ्ग का वर्णन वाल्मीकि-रामायण में है किन्तु अध्यात्मरामायण में नहीं है। निशायुद्ध तथा मेघनाद द्वारा राम-लक्ष्मण को नाग-पाश में आबद्ध करने का प्रसङ्ग अध्यात्मरामायण में नहीं है। इसी प्रकार गरूण द्वारा उनकी मुक्ति का वर्णन भी नहीं मिलता। अध्यात्मरामायण में मेघनाद के मायावी-युद्ध का वर्णन तो है किन्तु, अन्त में राम से ही युद्ध करने का वर्णन है। उनके क्रोध को देखकर वह नगर वापस लौट जाता है। रामायण में युद्ध का विस्तृत वर्णन है। अध्यात्मरामायण में

---

1 वा० रा० 6/26/8 से 6/28/42

2 अ० रा० 6/5/44, 45

3 वा०रा० 6/34/27, 28

अधिक विस्तार नहीं है। अध्यात्मरामायण में मेघनाद के जाने पर राम की आज्ञा से हनुमान् के द्वारा लाई गई, द्रोणाचल पर्वत पर स्थित औषधि से वानरों के जीवित होने का उल्लेख है।[1] अध्यात्मरामायण में इसके बाद अति-काम प्रहस्तादि प्रमुख राक्षसों का प्रमुख वानरगणों के साथ युद्ध का वर्णन है। इसमें वानरगण राम-तेज के प्रभाव से अत्यन्त शक्तिशाली हैं।[2] राम-सुयश तथा उनकी अलौकिकता की चर्चा इन्हीं प्रसङ्गों के माध्यम से कथाकार करता रहता है। वह राम के ब्रह्मस्वरूप को विस्मृत नहीं होने देता जैसा कि वह समय-समय पर कहता है - राम तो चिन्मय, अविनाशी ब्रह्म हैं। युद्धादि तो, वे माया के वश और मानव चरित्र का अनुकरण करते हुये करते हैं।[3] वाल्मीकिरामायण में रावण सर्वप्रथम सुग्रीव के साथ,[4] तदनन्तर वानर-वृन्दों के साथ[5] युद्ध करता है। अध्यात्मरामायण में पहले वह लक्ष्मण से युद्ध करता है जिसमें अपनी अमोघ शक्ति से उनको मूर्च्छित करता है। अध्यात्मरामायण में उल्लेख है कि यह[6] शक्ति मय दानव की दी हुई है, जिसे वह पहले विभीषण पर छोड़ता है। राम से अभय प्राप्त विभीषण की रक्षार्थ लक्ष्मण आगे आते हैं और उसकी शक्ति का लक्ष्य बनते हैं। वाल्मीकिरामायण में यह ब्रह्म-शक्ति है। रावण द्वारा लक्ष्मण को मूर्च्छित करना, हनुमान द्वारा उनको उठाना और राम के समीप लाना - आदि वर्णनों में रामायण से साम्य है। अध्यात्मरामायण में रावण लक्ष्मण को नहीं उठा पाता है क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत के सार पर-मेश्वर विराट पुरूष हैं। इसमें हनुमान द्वारा रावण पर मुष्टिका प्रहार का भी वर्णन है, जिससे व्याकुल होकर वह लङ्का चला जाता है। अध्यात्म-

---

1 अ० रा० 6/5/71 से 74

2 अ० रा० 6/5/78 से 85 तक

3 अ० रा० 6/5/86

4 वा० रा० 6/59/36 से 41 तक

5 वा० रा० 6/59/51

6 अ० रा० 6/6/5

रामायण में हनुमान् भक्त होने के कारण ही लक्ष्मण को उठा लेते हैं। वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण आत्म-चिन्तन करने से व्यथामुक्त हो गये। अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण को साक्षात् नारायण का अंश जानकर वह शक्ति उन्हें छोड़कर रावण के रथ पर चली जाती है।[1] अध्यात्मरामायण में, इसके पश्चात् राम-रावण युद्ध का वर्णन है। राम के तीखे वाणों से रावण विचलित हो जाता है। उसका मुकुट काट कर राम उससे कहते हैं - तुम वाणों से पीड़ित हो, अत: मैं तुम्हें जाने की आज्ञा देता हूं।[2] दर्प-चूर्ण होन पर लज्जित रावण लङ्का को जाता है। इस पराभव का वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी है।

वाल्मीकिरामायण में रावण द्वारा ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित लक्ष्मण आत्म-चिन्तन से व्यथामुक्त हो गये। अध्यात्मरामायण में राम, लक्ष्मण की व्यथा दूर करने के लिये हनुमान् को महोषधि लाने के लिये द्रोणाचल पर्वत पर भेजते हैं। इधर लज्जित हुआ रावण युद्धक्षेत्र से आकर कुम्भकर्ण को जगाने की आज्ञा देता है।[4] अध्यात्मरामायण में इस स्थल पर यह वर्णन नहीं है। उसमें रावण कालनेमि के पास जाता है। कालनेमि प्रथम तो उसे आत्मबोध का उपदेश देता है और सीता को लौटाने के लिये कहता है। कालनेमि दार्शनिक तत्वों का विवेचन करता हुआ, राम के आध्यात्मिक स्वरूप को बताते हुए प्रथम तो निर्गुण रूप का और फिर सगुण रूप का आश्रय लेने के लिये कहता है।[5] अध्यात्म-रामायण का कालनेमि तत्वज्ञ व रामभक्ति से ओत प्रोत है। वह रामभक्ति और उसके उपायों की विशद् विवेचना करता है।[6] रावण के क्रोधित होने पर

---

1 अ० रा० 6/6/17

2 अ० रा० 6/6/29

3 वा० रा० 6/59/138

4 वा०रा० 6/60/116

5 अ० रा० 6/6/48 से 57 तक

6 अ० रा० 6/6/58 से 63 तक

वह कपट-मुनि का वेष बनाकर हनुमान् के मार्ग में विघ्न उपस्थित करता है।[1] वहाँ पर हनुमान् के स्पर्श से मुक्ति को प्राप्त हुई मकरी दिव्यरूप धारिणी होकर कालनेमि के कपट-वृतान्त को बताती है। यह मकरी सुधान्य-माली नाम की अप्सरा थी, जिसे किसी ऋषि ने शाप दिया था। हनुमान् कालनेमि का वध करते हैं। औषधि लाकर हनुमान् लक्ष्मण को चेतना युक्त करते हैं। इसके पश्चात् रावण के आदेश से कुम्भकर्ण को जगाने का वर्णन है।[2] अध्यात्म-रामायण में कुम्भकर्ण से मिलने के पहले रावण की चितावस्था का वर्णन है। इसमें रावण ब्रह्म द्वारा मनुष्य के हाथ से निश्चित की गई अपनी मृत्यु का स्मरण करता है। वह जानता है कि नारायण ने राम के रूप में अवतार लिया है, वे उसको अवश्य मारेंगे।[3] इसमें रावण को दिये गये अनरण्य के शाप का भी वर्णन है, जिन्होंने कहा था कि उनके वंश में सनातन पुरूष परमात्मा के अवतार लेने पर उनके द्वारा रावण की मृत्यु होगी।[4] वाल्मीकिरामायण में कुम्भकर्ण स्वयं रावण के मन्दिर में जाकर उसे नैतिक उपदेश देता है।[6] इसे सुनकर रावण क्रुद्ध हो उठता है। अध्यात्मरामायण में रावण का कुम्भकर्ण के पास जाने का वर्णन है। वहीं पर कुम्भकर्ण द्वाराराम के आध्यात्मिक-स्वरूप के विवेचन एवं तात्त्विक उपदेश का वर्णन है।[7] अध्यात्मरामायण में कुम्भकर्ण का राम-भक्त रूप भी स्पष्ट है।[8] राम को वह रामभक्ति का उपदेश देकर उनकी शरण में

---

1 अ० रा० 6/7/4, 5

2 अ० रा० 6/7/48, 49, 50

3 अ० रा० 6/7/42 से 47 तक

4 अ० रा० 6/7/46

5 वा० रा० 6/60/22 से 56 तक

6 वा० रा० 6/63/1 से 21 तक

7 अ० रा० 6/7/58 से 70 तक

जाने को कहता है। कुम्भकर्ण ने रामावतार को एक सहस्त्र अवतारों के समान बताया है। वह कहता है कि राम की भक्ति ही ज्ञान और मोक्ष देने वाली है। वाल्मीकि-रामायण में कुम्भकर्ण रावण-सम्वाद के अन्तर्गत महोदर द्वारा सीता को मायाजाल से वश में करने की षड्यन्त्र योजना का वर्णन है।[1] अध्यात्मरामायण में यह नहीं है। इसके पूर्वका विद्युद्जिह्म प्रसङ्ग भी अध्यात्म-रामायण में नहीं है।

अध्यात्मरामायण में युद्ध-पूर्व विभीषण कुम्भकर्ण-मिलन का वर्णन है। इस प्रसङ्ग के वर्णन में कुम्भकर्ण के भक्त-रूप को दिखाने की ही योजना लक्षित होती है। कथाकार ने भीषण कुम्भकर्ण में भी भक्ति की उज्जवल रश्मियों को विकीर्ण किया है। अध्यात्म रामायण में राक्षस आदि रामभक्त हैं, यह बात रावण के प्रति उनके आध्यात्मिक उपदेशों से स्पष्ट है। अतः युद्ध के पूर्व इसकी योजना कथाकार के उद्देश्य के अनुकूल ही है। युद्ध-क्षेत्र में वह भाई से कहता है - राम के चरण का आश्रय पाकर राक्षसों के कल्याण के लिये तुम चिरकाल तक रहो।[2] उसने पूर्वकाल में नारद से सुना था कि विभीषण भगवद्-भक्त है।[3] अध्यात्मरामायण में वह भाई से मिलकर फिर उसे सामने से हट जाने को कहता है। अध्यात्मरामायण में वह राम से ही युद्ध करता है। इसका विस्तृत वर्णन भी है।[4] वाल्मीकि-रामायण में हनुमान्[5] नील[6] तथा पंच-प्रमुख[7] वानरों से युद्ध करता है। अङ्गद एवं सुग्रीव से भी उसके युद्ध का वर्णन है। वाल्मीकिरामायण में राम कुम्भकर्णयुद्ध के पूर्व लक्ष्मण कुम्भकर्ण युद्ध का भी वर्णन है।[8]

---

1 वा० रा० 6/64/21 से 35 तक

2 अ० रा० 6/8/13, 14

3 अ० रा० 6/8/14 द्वितीय पंक्ति

4 अ० रा० 6/8/18 से 30 तक

5 वा० रा० 6/67/15 से 20 तक

6 वा० रा० 6/67/22 से 24

7 वा० रा० 6/67/25 से 31

8 वा० रा० 6/67/102 से 113 तक

कुम्भकर्ण के कटे शिर का लङ्का के द्वार पर और धड़ पाताल पर गिरने का वर्णन-प्रसङ्ग दोनों में है। दोनों में रावण शोक का वर्णन है। अध्यात्मरामायण में कुम्भकर्ण की मृत्यु पर देवता पुष्प-वृष्टि करते हैं। इसी समय नारद प्रकट होकर भक्ति-युक्त स्तुति भी करते हैं।[1] इसका मुख्य कारण राम के ब्रह्म रूप का वर्णन, दार्शनिक-विवेचन तथा राम-भक्ति का महत्व बताना है। इसी[2] प्रसङ्ग में निर्गुण को मन का अविषय बताकर उनके सगुण रूप के चिन्तन को महत्व दिया गया है। यहीं पर नारद की भविष्यवाणी का वर्णन है, जिसमें वे कहते हैं कि कल लक्ष्मण इन्द्रजित को मारेंगे और राम दूसरे दिन रावण को युद्ध में पराजित करेंगे।[3] वाल्मीकिरामायण में भ्रातृ-शोक से परितप्त रावण को त्रिशिरा ने आश्वस्त किया है। जबकि अध्यात्मरामायण में इन्द्रजित ने।[4]

वाल्मीकि रामायण में युद्ध के पूर्व मेघनाद का यज्ञ कर्म वर्णित है।[5] अध्यात्मरामायण में भी वह निकुम्भिला गुफा में जाकर यज्ञ करता है। वाल्मीकि-रामायण में मेघनाद के दो बार यज्ञ करने का वर्णन है।[6] दोनों ग्रन्थों में विभीषण द्वारा इस कार्य का पता लगाकर राम को बताने का वर्णन है।[7] लक्ष्मण, वानरों के साथ उसका यज्ञ विध्वंस करते हैं। यहां वर्णन में एक अन्तर है।

---

1 अ० रा० 6/8/34 से 47 तक

2 अ० रा० 6/8/43 से 45

3 अ० रा० 6/8/50

4 वा० रा० 6/69/7

5 अ० रा० 6/8/54 से 56 तक
वा० रा० 6/73/18 से 26 तक

6 वा० रा० 6/73/18 से 26 तथा 6/84 /14 से 6/86/2

7 अ० रा० 6/8/60, 61

अध्यात्मरामायण में विभीषण यह बताता है कि मेघनाद उसी के हाथ से मरेगा, जिसने बारह वर्ष तक निद्रा और आहार छोड़ दिया है - लक्ष्मण वनवास की अवधि में इसी प्रकार रहते हैं, यह भी विभीषण राम से बताता है। मेघनाद पहले विभीषण को कटु वचन कहता है, फिर लक्ष्मण से उसका युद्ध होता है। राम के प्रताप से ही लक्ष्मण मेघनाद का वध करते हैं।[1]

निकुम्भिला में यज्ञ करने का, विभीषण का राम से निवेदन करने एवं लक्ष्मण के लिये उसके विनाशार्थ जाने की आज्ञा मांगने का वर्णन वाल्मीकि-रामायण तथा अध्यात्मरामायण दोनों, में समान ही है। यज्ञ की समाप्ति के पूर्व ही विवश होकर वह युद्ध करता है। वाल्मीकि-रामायण में अन्तर यह है कि वहां पर वह पहले हनुमान् से युद्ध करता है[2], फिर लक्ष्मण से। अध्यात्मरामायण में केवल लक्ष्मण से युद्ध करताहै।[3] दोनों ग्रन्थों के अनुसार विभीषण से वाग्युद्ध होता है।[4] अध्यात्मरामायण में वह विभीषण को शरविद्ध भी करता है। मेघनाद से लक्ष्मण के पूर्व-युद्ध का वर्णन अध्यात्मरामायण में नहीं है। इसमें राम से मेघनाद के मायावी युद्ध का वर्णन है, जिसमें राम के क्रोध को देखकर वह चला जाता है। इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। वाल्मीकिरामायण में राम को ब्रह्मास्त्र से विद्ध करने का, जामवन्त के आदेश से हनुमान् का हिमालय से मृतसंजीवनी औषधि लाने का और रामलक्ष्मण को वानरों सहित वेदनामुक्त करने का वर्णन प्रथम मेघनाद युद्ध में है। अध्यात्म-रामायण में तथा वाल्मीकिरामायण में प्रथम युद्ध में असमानता है व द्वितीय

---

1 अ0 रा0 6/8/61
  वा0 रा0 - चैत्य निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यतिहुतावानुपपातीर्ा
  देवैरपि सवासवैः दुराधर्षो भवत्येव संग्रामे रावणात्मजः।।

2 वा0 रा0 6/86/19 से 31

3 अ0 रा0 6/9/26 से 47 तक

4 वा0 रा0 6/87/11 से 31 अ0 रा0 6/9/22 से 24 तक

युद्ध में समानता है।

लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध पर राम की प्रसन्नता लक्ष्मण के प्रति स्नेहाभिव्यक्ति आदि का उल्लेख दोनों में समान है।[1]

दोनों ग्रन्थों में इस द्वितीय युद्ध का समय 3 दिन है।[2] वाल्मीकि-रामायण में युद्ध के अनन्तर लक्ष्मण के विशल्यीकरण का उल्लेख है।[3]

दोनों ग्रन्थों में पुत्र शोकाभितप्त एवं अत्यन्त व्यथित रावण विलाप करता है।[4] अध्यात्मरामायण में तथा वाल्मीकिरामायण दोनों में राम- रावण युद्ध के पूर्व पुत्र शोक से व्याकुल रावण सीता का वध करने का निश्चय करता है किन्तु अपने मंत्री सुपार्श्व द्वारा उपदिष्ट होने पर वह अपना विचार त्याग कर लौट आता है।[5] मेघनाद वध के पश्चात्, वाल्मीकिरामायण में उल्लेख है कि राम-रावण युद्ध के पर्व द्वि-दलों में परस्पर युद्ध होता है। अध्यात्म-रामायण में वर्णन है कि रावण स्वयं जाकर राम से युद्ध करता है। तदनन्तर राम के वाण से आहत हुआ रावण शुक्राचार्य के परामर्श से पाताल में एक गुफा तैयार कराके मौनावलम्बी होकर यज्ञ करता है, जिसमें होमाग्नि से बहुत बड़ा रथ, घोड़े, धनुष, तरकश और वाण उत्पन्न होंगे जिनसे वह अजेय हो जायेगा।[6] रावण द्वारा यज्ञ-सम्पादन की सूचना विभीषण के द्वारा प्राप्त कर, राम अङ्गद औरलक्ष्मण को यज्ञ-विध्वंस के लिये भेजते हैं। वहां विभीषण की पत्नी सरमा उन्हें होम-स्थल को संकेत द्वारा बताती है। यज्ञ-स्थल पर पहुंच कर अङ्गद रावण-पत्नी मंदोदरी का अपमान करता है। पत्नी के अपमान से क्रोधित होकर रावण यज्ञवेदी से उठकर अङ्गद पर प्रहार करता है। इसी समय वानर-

---

1 वा० रा० 6/91/8 से 47 तक अ० रा० 6/9/55 से 55 से 58 तक

2 वा० रा० 6/91/24 अ० रा० 6/9/57

3 वा० रा० 6/91/10 से 27 तक

4 वा० रा० 6/92/5 से 22 तक
अ० रा० 6/9/63 से 68 तक

5 वा० रा० 6/92/9 से 66 तक

गण यज्ञ-विध्वंस करते हैं।

वानरों के चले जाने पर अपमानिता पत्नी को रावण समझाता है। अध्यात्मरामायण में रावण, मंदोदरी को तत्व ज्ञान का उपदेश देता है। वह मन्दोदरी को आत्म स्वरूप का ज्ञान कराते हुये सुखदु:खादि से मुक्त हो जाने के लिये कहता है। रावण मंदोदरी से यह भी कहता है कि राम के हाथों मृत्यु को प्राप्त कर परम-पद का अधिकारी होगा। अध्यात्मरामायण में वर्णन है कि मुक्ति के लिये ही रावण ने राम से वैर किया था। वह मंदोदरी को, अपनी मृत्योपरान्त, सीता का बध करने तथा बाद में रावण की चिता में प्रवेश करने की आज्ञा देता है। रावण के वचनों को सुनने के बाद मंदोदरी राम के ब्रह्मरूप का वर्णन कर, सीता को पुन: राम के पास लौटा देन की, रावण से प्रार्थना करती है। रावण उसको समझाता है कि बन्धु-बान्धवों के विनाश के पश्चात् वह युद्ध से कैसे विरत हो सकता है। वह कहता है - मैं राम के वाणों से विद्ध होकर विष्णु-धाम को जाऊंगा और इसी कारण से मैंने सीता का हरण किया है।[1]

राम-रावण युद्ध :-

इसके बाद दोनों ग्रन्थों में राम-रावण युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में हनुमान् रावण पर मुष्टिका प्रहार करते हैं। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्मरामायण दोनों में ही युद्धवीर गुणग्राही रावण हनुमान् की वीरता की प्रशंसा करता है।[2]

राम-रावण युद्ध के पूर्व प्रमुख वानरों का प्रमुख राक्षसों से युद्ध होता है। वाल्मीकि रामायण में सभी राक्षसों तथा वानरों का पृथक पृथक युद्ध करने का विस्तृत वर्णन है। अध्यात्मरामायण में इसका संकेत मात्र है। वानरों को रावण द्वारा व्यथित देखकर राम युद्ध के लिये आते हैं।

---

1 अ0 रा0 6/10/57 से 60 तक

2 अ0 रा0 6/11/7,8 वा0 रा0

3 वा0 रा0 6/103/30

युद्ध के समय, राम को रथहीन देखकर इन्द्र ने मातलि सहित अपने रथ को भेजा। इसका उल्लेख दोनों ग्रन्थों में हुआ है।

राम रावण का क्रमश: उग्रतर युद्ध होता है। वाल्मीकिरामायण में चिन्ताक्रान्त राम को अगस्त्य ऋषि ने 'आदित्य हृदय स्तोत्र' का महत्व बताकर उसका जप करने का आदेश दिया।[1] अध्यात्मरामायण में उल्लेख है कि राम द्वारा रावण के सिर काटने पर भी बढ़ने लगे और रावण विनाश नहीं हुआ।[2] तब विभीषण ने रावण को ब्रह्मा द्वारा दिये गये वरदान का उल्लेख किया, जिससे उसकी भुजायें और शिर काटने पर भी बढ़ेंगे।[3] रावण के नाभि-प्रदेश में कुण्डलाकार रूप में अमृत है, यह रहस्य विभीषण राम से बताता है। राम आग्नेयास्त्र का प्रयोग कर उसके नाभिस्थित अमृत को सुखा देते हैं। यह प्रसङ्ग हनुमन्नाटक में आया है।[4]

रावण-वध का रहस्य जानने पर ब्रह्मास्त्र द्वारा रावण-वध का वर्णन दोनों ग्रन्थों में हुआ है। अध्यात्म-रामायण में इसका स्मरण मातलि ने कराया है।[5] राम ने जिस वाण से रावण का वध किया, उसके रूप का विस्तृत वर्णन अध्यात्मरामायण में हुआ है।[6]

रावण-मृत्यु :-

रावण-मृत्यु के प्रसङ्ग में दोनों ग्रन्थों में अन्तर है। वाल्मीकि-रामायण में उल्लेख है कि रावण का हृदय विदीर्ण होने के उपरान्त वह रथ

---

1 वा०रा० 6/103/30

2 अ० रा० 6/11/48, 49

3 अ० रा० 6/11/51 से 54

4 हनुमन्नाटक 6/14/26

5 अ० रा० 6/11/61, 62, 63

6 अ० रा० 6/11/64 से 67 तक

से रणभूमि में गिर गया। अध्यात्मरामायण में रावण सबके देखते ही राम में लीन हो गया।[1] रावण के देह से प्रकाशमान ज्योति निकलकर रघुनाथ में प्रवेश कर गई। अध्यात्मरामायण में रण-स्थल में नारद ने कहा है कि विरोध बुद्धि से वह सदैव राम को देखता था तथा उसकी चित्तवृत्तियाँ राम में ही लगी थीं।[2] अतः रावण मोक्ष का अधिकारी हुआ। राम-चरित्र की महत्ता ही इस प्रसङ्ग के मूल में है। ग्रन्थ में उल्लेख हुआ है कि किसी भी भाव से राम का स्मरण करने वाला मुक्ति का अधिकारी होता है। बन्धन-हीन होकर वह राम में सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है।

विभीषण का शोक तथा रावण की अन्त्येष्टि :-

शोकाकुल विभीषण को वाल्मीकि रामायण में राम ने आश्वस्त किया है।[3] अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण उसे तत्वज्ञान के उपदेश से शोक रहित करते हैं।[4] अध्यात्मरामायण में वर्णन है कि राम की आज्ञा से वह भाई का और्ध्व-दैनिक कर्म करता है। प्रथम तो विभीषण पापाचारी भाई की अन्त्येष्टि करने के लिये सहमत नहीं होता, किन्तु राम के उपदेश से वह मन्दोदरी को आश्वस्त कर रावण को अग्नि-दान देता है।[5] वाल्मीकि-रामायण में पत्नियों द्वारा तर्पण करने का भी उल्लेख है।[6]

इसके पश्चात् विभीषण के राज्याभिषेक का विस्तृत वर्णन है। लक्ष्मण, राम की आज्ञा से विभीषण का अभिषेक कराते हैं।

राम हनुमान् से सीता के समीप संदेश एवं कुशल समाचार लेकर जाने और उनका संदेश लाने को कहते हैं, इसका वर्णन दोनों ग्रन्थों में हुआ है।[7]

---

1 अ० रा० 6/11/82 2 अ०रा० 6/11,81,82

3 वा०रा० 6/109/15 से 19 तक

4 अ० रा० 6/11/10 से 28 तक

5 अ० रा० 6/11/31 से 39 तक

6 वा० रा० 6/111/122

7 वा० रा० 6/112/24 से 26 तक तथा अ० रा० 6/12/51,52

संदेश भेजने का प्रसङ्ग समान ही है। वाल्मीकि ने वर्णन किया है कि वहाँ जाकर हनुमान् राक्षसियों के वध की कामना करते हैं और दीन-वत्सला सीता उन्हें नैतिक आदेश देकर इस कार्य से विरत करती हैं। [1]

सीता-आनयन :-

दोनों ही ग्रन्थों में राम विभीषण को भूषणवस्त्राभिषिक्त कर सीता को लाने का आदेश देते हैं। सीता को शिविका पर लाने का उल्लेख दोनों ग्रन्थों में हुआ है।[2] अध्यात्मरामायण में, वाल्मीकिरामायण में वर्णित सीता-विभीषण[3] - संवाद का उल्लेख नहीं हुआ है।

सीता को देखकर वाल्मीकि रामायण में राम लोकापवाद के भय से[4] तथा अध्यात्मरामायण में, प्रकट रूप से सीता को अशोभनीय बातें कह कर भी, वास्तव में अग्नि को थाती रूप में प्रदत असली सीता के ग्रहणार्थ ही, उनकी अग्नि परीक्षा लेते हैं।[5] राम द्वारा सीता के प्रति दुर्वादों का उल्लेख[6] वाल्मीकिरामायण में है, अध्यात्मरामायण में केवल संकेत मात्र है।[7]

देवताओं द्वारा राम की प्रशंसा :-

अध्यात्मरामायण में ब्रह्मा तथा शङ्करादि देवताओं के द्वारा राम की स्तुति के उपरान्त अग्निदेव सीता को सौंपते हैं। स्वयं अग्निदेव कहते हैं - ' प्रतिबिम्बरूपणी मायामयी सीता अदृश्य हो गई है। यह तपोवन में सौंपी हुई जानकी आप ग्रहण कीजिये।[8]

---

1 वा० रा० 6/113/28 से 44 तक

2 वा० रा० 6/114/14, 15 तथा अ० रा० 6/12/68,69,70

3 वा० रा० 6/113/9,13

4 (क) जनवादं भयाद्राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा - वा० रा० 6/115/11
(ख) प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रय - वा० रा० 6/121/16

5 अ० रा० 6/12/65

6 वा० रा० 6/115/2 से 24 तक

स्तुति का प्रसङ्ग वाल्मीकि रामायण में भी है किन्तु दोनों में महान् अन्तर है। वाल्मीकि रामायण में देवों की उक्तियां राम के पराक्रम की सराहना से युक्त हैं।[1] अध्यात्म रामायण में इस स्तुति में राम के आध्यात्मिक रूप का निरूपण हुआ है, साथ ही ये स्तुतियां भक्ति भावना से ओत प्रोत हैं।[2] देवों की स्तुतियों के बाद इन्द्र की स्तुति का वर्णन हुआ है। राम के आदेश से इन्द्र द्वारा राम सेना को जीवित करने का उल्लेख भी अध्यात्मरामायण में हुआ है।[3]

दशरथ दर्शन :-

इसके पश्चात दोनों ही ग्रन्थों में राम द्वारा दशरथ का दर्शन किये जाने का प्रसङ्ग है।[4] अध्यात्मरामायण में इतना ही उल्लेख है कि राम दशरथ को प्रणाम करते हैं। दशरथ उनसे कहते हैं कि राम ने उन्हें दु:ख समुद्र से उबार दिया। वाल्मीकि-रामायण में दशरथ उनके पराक्रम की प्रशंसा भी करते हैं।

अयोध्या -प्रत्यावर्तन :-

राम के आदेश से अयोध्या- प्रत्यावर्तन के लिये विभीषण के द्वारा पुष्पक विमान लाने का प्रसङ्ग दोनों ही ग्रन्थों में आया है। सखा एवं सैन्य गणों के प्रति कृतज्ञता अर्पित कर, राम सहित सबके विमानारूढ़ होने का प्रसङ्ग लगभग वाल्मीकिरामायण की तरह है। राम सीता को वे समस्त स्थल दिखाते हैं, जहां युद्ध या वनवास की अवधि में अनेक कार्य हुये थे। इसका वर्णन वाल्मीकि-रामायण के वर्णन के अनुसार ही है।

भारद्वाज के आश्रम पर पहुंच कर अयोध्या का कुशल क्षेम का प्रश्न जानने के पश्चात् हनुमान् के अयोध्या जाने का प्रसङ्ग आता है, जो वाल्मीकि से

---

1 वा० रा० 6/119/2, 6 तथा 6/120/2, 16

2 अ० रा० 6/13/1 से 18 तथा 6/13 /24 से 32 तक

3 वा० रा० 6/120/7 तथा अ० रा० 6/13/38, 39

4 वा०रा० 6/119/12, 35

साम्य लिये हुये है। अध्यात्मरामायण में ब्रह्म-राम के आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन कर भरद्वाज उनका स्वागत करते हैं और अपने आश्रम में ठहराते हैं। राम के स्वरूप का वर्णन, दार्शनिक विवेचन के लिये ही हुआ है। वाल्मीकिरामायण में भरद्वाज के तप-माहात्म्य का वर्णन वाल्मीकि ने किया है। महर्षि के लिये इस प्रकार का वर्णन करना अनुकूल ही था। अध्यात्मरामायण में भरद्वाज के तपोबल की चर्चा मात्र है।

हनुमान्-भरत-मिलन :-

इस प्रसङ्ग का वर्णन दोनों ग्रन्थों में हुआ है।[1] अध्यात्मरामायण में भरत मिलन से पहले हनुमान की भेंट गुह से होती है। राम के आगमन का सुखद समाचार सुनकर भरत हनुमान् को एकलक्ष गौ, सौ-गांव और परम सुन्दरी सोलह कन्यायें देते हैं।[2]

राम का राज्याभिषेक :-

अयोध्या आने पर समस्त पुरवासियों द्वारा राम के स्वागत का वर्णन है। वाल्मीकि ने राम राज्य वर्णन के प्रसङ्ग के साथ ही युद्धकाण्ड की कथा समाप्तकर दी है। अध्यात्मरामायण में अभिषेक के उपरान्त वानरों की विदा तथा ग्रन्थ की प्रशंसा के बाद युद्धकाण्ड की समाप्ति होती है। अध्यात्म-रामायण का समस्त उत्तर-काण्ड दार्शनिक तत्वों एवं रामभक्ति के विवेचन से युक्त है।

अभिषेक के पहले भरत की स्तुति, राम के परात्म-स्वरूप के वर्णन

---

1 वा० रा० 6/125/37 से 6/126/54 तक
 अ० रा० 6/14/50 से 54 तक

2 अ० रा० 6/14/60, 61

एवं भक्ति भावना से युक्त है।[1] शङ्कर एवम् देवगणों की स्तुति में भी अध्यात्मरामायण ने दर्शन एवं भक्ति के सरस चित्र उपस्थित किये हैं।[2] शिव द्वारा की गई स्तुति में राम के अद्वितीय, निरूपाधिक एवं मायातीत ब्रह्मरूप का वर्णन हुआ है।[3] इसी स्तुति में राम-मन्त्र की उपासना और रामभक्ति का वर्णन हुआ है। अध्यात्मरामायण में देवता, इन्द्र, पितृ, यक्ष, गन्धर्व आदि सभी राम की पृथक् पृथक् प्रशंसा करते हैं। ग्रन्थ-प्रशंसा के साथ युद्ध-काण्ड समाप्त होता है।

---

1 अ० रा० 6/15/ 1 से 8 तक

2 अ० रा० 6/15/ 51 से 73 तक

3 अ० रा० 6/15/51 से 63 तक

उत्तर-काण्ड

अध्यात्म-रामायण में कथाक्रम :-

राज्याभिषेक के अनन्तर राम ने क्या कार्य किये, पार्वती की इस जिज्ञासा के उपशम के लिए शङ्0कर ने आगे उत्तर-काण्ड की कथा का वर्णन किया है।

राम के राज्यसिंहासन पर बैठने के पश्चात् अगस्त्यादि महर्षि उनका अभिनन्दन करने के लिये आते हैं। राम द्वारा पूजित ऋषियों में अगस्त्य रावण वधादि कार्यों के लिये राम की प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि रावण को मारना कठिन न था किन्तु मेघनाद का वध अत्यन्त दुष्कर कार्य था। मेघनाद के शौर्य की प्रशंसा पर राम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। उनके आश्चर्यान्वित होने पर महर्षि अगस्त्य ने राम को, रावण-पितामह पुलस्त्य की कथा एवं उसकी वंश परम्परा का वर्णन कर, उनके पूर्व-इतिहास से अवगत कराया। रावण तथा विभीषणादि की तपस्या तथा उनकी राज्यस्थापना का भी वर्णन अगस्त्य जी करते हैं। रावण की दिग्विजय के इतिहास का भी उल्लेख ग्रन्थ में हुआ है। राम की जिज्ञासा-स्वरूप अगस्त्य ने वाली और सुग्रीव का पूर्ण चरित तथा रावण-सनत्कुमार-सम्वाद का भी वर्णन किया है। तदनन्तर अगस्त्य जी मुनि-जनों सहित अपने आश्रम को चले जाते हैं।

इसके बाद राम-राज्य का वर्णन है। अपने राज्य-कार्य को सम्यक् सम्पादित करते हुये राम ने दश हजार वर्ष राज्य किया।

राज्य-काल में ही सीता एक दिन राम से निवेदन करती हैं कि देवताओं ने उनसे बैकुण्ठ जाने की प्रार्थना की है। इसको सुनकर राम, सीता से कहते हैं कि लोकापवाद के बहाने से वे सीता का परित्याग करेंगे। सीता के दो पुत्र होंगे, उनकी शुद्धि का अयोध्या के नागरिकों को विश्वास कराने के लिये शपथ करके पृथ्वी के छिद्र द्वारा बैकुण्ठ जाने के रहस्य से, राम, सीता को अवगत कराते हैं।

लोकापवाद के भय से राम सीता का त्याग करते हैं। राम की आज्ञा से लक्ष्मण उन्हें वाल्मीकि के आश्रम पर छोड़ आये। दिव्यदृष्टा ऋषि सम्पूर्ण वृतान्त जानकर जानकी का सत्कार करते हैं और उन्हें अपने आश्रम में ले आते हैं।

सीता-परित्याग के अनन्तर लवण-वध काप्रसङ्ग आता है। यमुना-तट वासी महर्षि राम के समीप आकर मधु दैत्य का वृतान्त सुनाते हैं तथा लवणासुर के अत्याचारों का वर्णन कर स्वरक्षार्थ राम की प्रार्थना करते हैं। राम ने महर्षियों को आश्वासन देकर शत्रुघ्न को लवण-वध के लिये नियुक्त किया। उसका वध करने के उपलक्ष्य में शत्रुघ्न ने देवों की वरदान-स्वरूपा मथुरा नगरी बसायी। वहां 12 वर्ष निवास करने के पश्चात् शत्रुघ्न पुन: अयोध्या आते हैं।

इसके बाद महर्षि वाल्मीकि का, लव-कुश के साथ राम का अश्वमेघ यज्ञ देखने आने का वर्णन है। यज्ञशाला में लव-कुश के मुख से रामायण का मधुर गान सुनकर राम उन्हें दस सहस्त्र स्वर्ण मुद्रा देते हैं किन्तु उसे लवकुश ने ग्रहण नहीं किया।

राम लव-कुश को सीता-पुत्र जानकर, सीता सहित महर्षि को ले आने के लिये अङ्गद, विभीषण आदि को आज्ञा देते हैं और कहते हैं कि उस सभा में जानकी सबके विश्वास के लिये साक्षी दें जिससे कि सब लोग सीता को निष्कलंक जानें। यज्ञशाला में सीता को साथ लेकर जब महर्षि वाल्मीकि आते हैं, उस समय वे सीता की निष्कलङ्कता के लिये प्रभावशाली वचनों से सीता की निष्कलङ्कता का प्रमाण देते हैं। राम, सीता को पवित्र स्वीकार करते हैं। इसी समय सीता पृथ्वी में समाहित हो जाती हैं। शोकाकुल राम को ब्रह्मा आश्वस्त करते हैं।

इसके बाद राम एवं मुनिवेषधारी काल की गुप्त-वार्ता का प्रसङ्ग आता है। इस वार्ता के गुप्त होने के कारण, राम, लक्ष्मण को द्वारपर नियुक्त करते हैं इसी समय राम के दर्शनार्थ दुर्वासा ऋषि का आगमन होता है। दुर्वासा

के शाप के भय से लक्ष्मण रामाज्ञा के विरुद्ध राम को दुर्वासा आगमन की सूचना देते हैं, जिसके दण्ड-स्वरूप राम ने लक्ष्मण के लिये प्राण-दण्ड के स्थान पर त्याग-दण्ड निश्चित किया। लक्ष्मण सरयू तट पर सशरीर दिवगंत हुये।

इसके बाद राम के महाप्रयाण का वर्णन हुआ है। राम के सभी भ्राता तथा अयोध्या के नागरिक राम के साथ महाप्रस्थान के लिये तत्पर होते हैं। राम के साथ सभी पुरवासी परमधाम को गये। राम, भाइयों के सहित अपने आदि विग्रह विष्णु में प्रविष्ट हो गये। समस्त वानर, राक्षसादि तथा अयोध्यावासी सरयू के जल में डूबकर, मनुष्य-देह को त्याग कर सान्तिक लोकों को प्राप्त हुये।

ग्रन्थ की प्रशंसा के बाद उतर-काण्ड की कथा समाप्त होती है।

उतर-काण्ड की कथा की तुलनात्मक समीक्षा

इस काण्ड में वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्मरामायण की कथा वस्तु में पर्याप्त भेद हैं। वाल्मीकिरामायण का उतर-काण्ड आख्यानप्रधान है। अध्यात्मरामायण में आख्यानों के साथ ही दार्शनिक तत्वों का सङ्कलन एवं भक्तिज्ञान और कर्म का विवेचन भी हुआ है। इसलिये स्थल स्थल पर आध्यात्मिक चर्चा भी हुई है, जिसका वाल्मीकिरामायण में पूर्ण अभाव है।

राम के अभिनन्दन के निमित ऋषियों का आगमन :-

भगवान् राम के अयोध्या में सिंहासनासीन होने पर, विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि तथा सप्तर्षि-गण, महर्षि अगस्त्य के साथ राम का अभिनन्दन करने जाते हैं।[1] वाल्मीकि-रामायण में भी अभिनन्दन के लिये आये हुये ऋषि-गणों का उल्लेख है।[2] वाल्मीकि-रामायण में अगस्त्य मुनि ने राम की जिज्ञासा की परितृप्ति के लिये रावण-जन्म एवं उसके द्वारा वरदान प्राप्ति इत्यादि का पूर्व वृतान्त सुनाया।

राक्षसादि - जन्म-वृतान्त :-

अध्यात्मरामायण तथा वाल्मीकिरामायण के इस प्रसङ्ग में साम्य है।[3] रावण के आदि पूर्वज ब्रह्मा के तपोनिष्ठ पुत्र, पुलस्त्य, राजर्षि तृण-विन्दु की कन्या से विवाह करते हैं। उस राजकन्या से विश्रवा नामक धर्मनिष्ठ पुत्र की उत्पति होती है।[4] विश्रवा का विवाह भरद्वाज की पुत्री से होता है। विश्रवा पुत्र वैश्रवण का धनाध्यक्ष बनने तथा पुष्पक विमान सहित पिता से मिलने

---

1 अ० रा० 7/1/7, 8, 9

2 वा०रा० 7/1/1, 6

3 वा०रा० 7/2/4

अ० रा० 7/1/24

4 वा० रा० 7/2/4 से 32 तक अ० रा० 7/1/24 से 35 तक

तथा हिंसाहीन निवास स्थान के विषय में जानने का वर्णन ग्रन्थ में हुआ है। पिता की आज्ञा से वह विश्वकर्मा की बनायी लड्0कापुरी में निवास करता है।[1] इन प्रसड्0गों के वर्णन में वाल्मीकि रामायण से समानता है। अन्तर इतना है कि अध्यात्मरामायण की शैली संक्षिप्त है तथा वाल्मीकिरामायण में वर्णन-विस्तार है।

इसके पश्चात् अध्यात्मरामायण में सुमाली द्वारा राक्षसों के हित के उपाय में विचार करने का वर्णन आता है। सुमाली का वृतान्त तथा उसके भाइयों का वृतान्त एवं तपस्यादि का वर्णन[2] अध्यात्मरामायण में नहीं है। वाल्मीकि-रामायण में अगस्त्य द्वारा राक्षस एवं यज्ञोत्पत्ति का, सृष्टि के आदि क्रम से, वर्णन के प्रसड्0ग में यह प्रसड्0ग आता है। इसके बाद के प्रसड्0ग अध्यात्मरामायण में वाल्मीकि के आधार पर ही हैं। आगे के प्रसड्0गों में वर्णन है कि सुमाली ने अपनी कन्या कैकेयी को पुलस्त्य पुत्र विश्रवा मुनि के समीप उन्हें वरण के लिये भेजा है।[3] प्रदोष काल के दारूण समय में उसे पुत्राभिलाषावश अपने समीप आया देखकर विश्रवा मुनि ने उसके लिये कूर-कर्मा पुत्रों को जन्म देने की भविष्यवाणी की। इससे आशड्0कत हो कैकसी ने मुनि से कहा कि क्या उन महर्षि से भी ऐसे पुत्र उत्पन्न होंगे। यह सुनकर महर्षि ने कनिष्ठ पुत्र को धर्मात्मा होने का आशींवाद दिया।[4] अध्यात्मरामायण में मुनि ने राम-भक्ति में तत्पर पुत्र होने का आशींवाद दिया है।[5] कैकसी से तीन पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। अध्यात्मरामायण में इस वर्णन के पश्चात् कथाकार के अपने उद्देश्य के अनुसार अगस्त्य द्वारा राम के ब्रह्म रूप का वर्णन ग्रन्थ

---

1 अ0 रा0 7/1/36 से 44 तक

2 वा0 रा0 7/5/5 से 28 तक

3 वा0 रा0 7/9/12 अ0 रा0 7/1/48, 49, 50

4 वा0रा0 7/9/25, 27

5 अ0 रा0 7/1/55, 56

में हुआ है।[1] राम के रूप का वर्णन करते हुये वे राम की भक्ति का निरूपण भी करते हैं। अगस्त्य कहते हैं कि राम का गुण कीर्तन ही पापों को नाश करने वाला है।

इसके बाद कथा इस प्रकार है - कैकसी ने रावण से, विश्रवा के ज्येष्ठ पुत्र कुबेर की भाँति बनने की इच्छा प्रकट की। माँ की इच्छापूर्ति के लिये भाइयों सहित रावण गो-कर्ण क्षेत्र में तपस्या करने जाता है।[2] अध्यात्म-रामायण में इन भाइयों के तपस्काल का वर्णन है।[3] ब्रह्मा ने तीनों भाइयों को अभीष्ट वरदान देकर उन्हें परितुष्ट किया।[4] इन वरों की याचना और प्राप्ति का वर्णन अध्यात्मरामायण में वाल्मीकिरामायण के आधार पर ही है, केवल वर्णन-शैली में संक्षिप्तता है। रावण की अभीष्ट सिद्धि का समाचार सुनकर सुमाली पुनः भूलोक में आ गया।[5]

सुमाली ने अपने दौहित्र रावण को पुनः कुबेर से लङ्का नगरी छीनकर, उस पर अधिकार करने के लिए उसे प्रोत्साहित किया।[6] पहले तो उसने इस कार्य को शिष्टाचार से विरुद्ध बताया परन्तु फिर सुमाली के सचिव प्रहस्त द्वारा राजनीति के समझाने पर सहमत हो गया।[7]

अध्यात्मरामायण में, इसी प्रसङ्ग में वर्णन है कि प्रहस्त को रावण ने दूत बनाकर भेजा और कुबेर को लङ्का से निकालकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। कुबेर ने पिता की आज्ञा से लङ्कापुरी को छोड़कर कैलाश पर्वत पर जाकर महादेव को प्रसन्न किया। उन्हीं की कृपा से विश्वकर्मा से निर्मित

---

1 अ० रा० -7/1/61, 63

2 वा० रा० 7/9/43 से 46 तक अ० रा० 7/2/6, 7

3 अ० रा० 7/2/8, 9, 10

4 अ० रा० 7/2/11 से 23 तक वा० रा० 7/10/16, 35, 45

5 अ० रा० 7/2/24

6 अ० रा० 7/2/25, 26, 27 वा० रा० 7/11, 7, 8

7 अ० रा० 7/2/27 से 33 तक वा० रा० 7/11/14 से 20 तक

अलकापुरी में निवास किया।[1] वाल्मीकिरामायण में शिव को प्रसन्न करने का उल्लेख नहीं है। उसमें वर्णन है कि कुबेर ने शान्तिपूर्वक लङ्0कापुरी एवं राज्य-समर्पण का संदेश दूत से भेज दिया।[2] इस प्रकार रावण लङ्0का पुरी में और कुबेर अलकापुरी में निवास करने लगे।[3]

सिंहासनासीन रावण ने अपनी बहन सूर्पणखा का विवाह कालख ज वंश के राक्षस विद्युज्जिह्म के साथ कर दिया। वाल्मीकिरामायण में कालख ज का नाम कालकेय है।[4] रावण ने अपना विवाह मय की पुत्री मन्दोदरी के साथ किया।[5] मय के द्वारा रावण को दी गयी अमोघ शक्ति का वर्णन दोनों ग्रन्थों में हुआ है।[6] वैरोचन की पुत्री वृत्रज्वाला के साथ कुम्भकर्ण[7] तथा शैलूष की पुत्री सरमा के साथ विभीषण का विवाह हुआ।[8] वाल्मीकिरामायण में वृगज्वाला के स्थान पर व्रजल्वाला नाम दिया गया है। इन सभी वर्णनों का पूर्ण आधार वाल्मीकिरामायण है। वर्णनों में पूर्ण साम्य है, अन्तर केवल शैली हैं।

मेघनाद के जन्म के विषय में दोनों ग्रन्थों में साम्य है। ब्रह्मा द्वारा प्राप्त वरदान के अनुसार कुंभकर्ण को घोर निद्रा ने आबद्ध कर लिया, उसके लिये एक गुफा का निर्माण करा के रावण दिग्विजय के लिये चल देता है।[9]

---

1 अ0 रा0 7/2/33 से 36 तक

2 वा0 रा0 7/11/32 तथा 33 प्रथमपंक्ति

3 वा0 रा0 7/11/49, 50

4 वा0 रा0 7/12/2 अ0 रा0 7/2/38, 39

5 अ0 रा0 7/2/40

6 अ0 रा0 7/2/40

7 अ0 रा0 7/2/41

8 अ0 रा0 7/2/42 तथा 43 प्रथम पंक्ति

9 अ0 रा0 7/2/45, 46

वाल्मीकि रामायण में इस दिग्विजय का विस्तृत वर्णन है और साथ ही कई अन्तर्कथाओं का भी वर्णन है। अध्यात्मरामायण में दिग्विजय का विस्तृत वर्णन नहीं है क्योंकि अध्यात्मरामायण के लेखक ने राम-कथा को अति संक्षिप्त में ही कहना चाहा है। अत: संक्षेप में, कुबेर को परास्त करने और पुष्पक विमान को छीनने,[1] मेघनाद का देवताओं से युद्ध करने, इन्द्र को बन्दी बनाने[2] और ब्रह्मा के द्वारा उनको छुड़ाने का वर्णन हुआ है।[3] नन्दीश्वर के शाप आदि का वर्णन वाल्मीकिरामायण के आधार पर ही है। कैलाश पर्वत को उठाने का वर्णन भी वाल्मीकिरामायण के समान ही है। रावण का सहस्त्रार्जुन के साथ युद्ध करने का वर्णन और पुलस्त्य द्वारा उसको छुड़ाये जाने कावर्णन वाल्मीकिरामायण में है, अध्यात्मरामायण में इसका अभाव है। वाली से रावण का युद्ध और रावण के पराजित होने का वर्णन अति संक्षिप्त है। अध्यात्म-रामायण में इसका वर्णन करने के पश्चात् अगस्त्य ने राम के विराट् रूप का वर्णन किया है[4] और उन्होंने मायातीत व भक्तजनों से सदा अभिन्न रहने वाले राम की भक्ति भावपूर्ण स्तुति की है।[5] इस प्रकार का निरूपण आध्यात्मिक रूचि प्रधान और भक्ति की चर्चा करने वाले कथाकार के लिये उपयुक्त ही है।

अध्यात्मरामायण में इसके बाद वाली - सुग्रीव के जन्म का वर्णन है।[6] इन्द्र और सूर्य ही वानर रूप से उत्पन्न हुये थे। वाल्मीकिरामायण में यह प्रसङ्ग नहीं है। वाल्मीकिरामायण में हनुमान् के जन्म का अति विस्तृत वर्णन है, जो अध्यात्मरामायण में नहीं है। वाली सुग्रीव की जन्मकथा कावर्णन

---

1 अ० रा० 7/2/48, 49

2 अ० रा० 7/2/52, 53

3 अ० रा० 7/2/54

4 अ० रा० 7/2/63 से 69 तक

5 अ० रा० 7/2/76, 77

6 अ० रा० 7/3/2

इस प्रकार है[1] - किसी समय ध्यानस्थ ब्रह्मा के आनन्दाश्रुओं से एक वानर का जन्म होता है। ब्रह्मा के पास रहते हुये किसी दिन एक मायामय सरोवर में कूदने से वह स्त्री रूप हो गयाहै। ब्रह्मा की पूजा से लौटे इन्द्र उसे देखकर काम से मोहित चित हो जाते हैं। उनका वीर्य स्खलित होकर उस रमणी के वालों को छूता हुआ पृथ्वी पर गिरता है और इसी से वाली का जन्म होता है।

उसी समय सूर्य भी वहां आते हैं और कामविद्ध होकर उसकी ग्रीवा पर अपना वीर्य छोड़ते हैं। इससे सुग्रीव की उत्पति हुई। सूर्य उस स्त्री को, उसकी सहायता के लिये हनुमान् को देकर चले जाते हैं। उन पुत्रों को लेकर वह एक बार सो गई। दूसरे दिन फिर पूर्व रूप पाकर वह वानर ब्रह्मा के पास जाता है। ब्रह्मा उसे विश्वकर्मा की बनायी किष्किन्धापुरी का राज्य देते हैं।

इसके बाद अगस्त्य ने रावण-सनत्कुमार-सम्वाद का वर्णन किया है।[2] इसमें सनत्कुमार के मुख से रावण अपनी जिज्ञासा के फलस्वरूप सुनता है कि विष्णु के हाथों मरने वाला, विष्णु पद प्राप्त करता है। इस कथन को सुनकर वह श्रीहरि के साथ युद्ध करने का निश्चय करता है।

सनत्कुमार विष्णु के स्वरूप का वर्णन करते हैं और बताते हैं कि त्रेतायुग में वे देवताओं और मनुष्यों केकल्याण के लिये रामरूप में अवतीर्ण होंगे।[3] यह कहकर वे रावण को रामभक्ति का उपदेश देते हैं।[4] वाल्मीकिरामायण में यह वर्णन नहीं है। इस प्रसङ्ग के द्वारा विष्णु के रामावतार लेने एवं रावण का उनसे वैर होने के कारण पर प्रकाश पड़ता है।

---

1 अ० रा० 7/3/2 से 24 तक
2 अ० रा० 7/3/30 , 31, 32
3 अ० रा० 7/3/34 से 36 तक
4 अ० रा० 7/3/54 से 57 तक

राम राज्य :-

अध्यात्मरामायण में राम राज्य का वर्णन अपेक्षाकृत संक्षिप्त है। जनश्रुति के कारण सीता का वनवास दोनों ग्रन्थों में वर्णित है।[1] अध्यात्म-रामायण में वाल्मीकिरामायण से आधार लेकर भी थोड़ा आध्यात्मिक एवम अलौकिक वर्णन है। लोकापवाद को सुनने के पहले एक प्रसङ्ग आता है। इसका वर्णन ग्रन्थ में इस प्रकार है[2] - सीता राम से कहती हैं कि देवताओं ने आकर उनसे राम के वैकुण्ठ पधारने के लिये प्रार्थना की। देवताओं ने कहा कि यदि चिच्छक्ति सीता यदि पहले वैकुण्ठ चली जाय तो रघुनाथ भी वहां आयेंगे। इस रहस्य को सुनकर राम ने सीता से कहा, देवि मैं तुम्हें लोकापवाद के मिष से त्याग दूंगा। वन में, वाल्मीकि के आश्रम में तुम्हारे दो पुत्र उत्पन्न होंगे। उसके पश्चात् तुम मेरे पास फिर आओगी। लोक की प्रतीति के लिये शपथ करके पृथ्वी के छिद्र से तुरन्त वैकुण्ठ जाओगी और पीछे से मैं आऊंगा। इस प्रसङ्ग की योजना राम के ईश्वरत्व और उनके अलौकिक प्रभाव के लिये ही हुई है।

सीता परित्याग :-

सीता-परित्याग का प्रसङ्ग दोनों ग्रन्थों में समान ही है। विजय नामक गुप्तचर से सीता विषयिणी अपनी लोकनिन्दा को सुनकर वे लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि वे उनको वाल्मीकि के आश्रम के निकट वन में छोड़ आयें।[3]

वाल्मीकि के आश्रम पर पहुंच कर वे सीता को रथ से उतार कर उनसे कहते हैं कि रघुनाथ ने सीता को लोकापवाद के भय से त्याग दिया है। इसमें उनका कोई दोष नहीं।[4] लक्ष्मण ऐसा कहकर चले जाते हैं। दु:खातुरा सीता के विलाप के विषय में शिष्यों के मुख से सुनकर महर्षि ने ज्ञानदृष्टि से सब जान

---

1 अ० रा० 7/4/55, 56 वा० रा० 7/43 से 7/52 सर्ग तक

2 अ० रा० 7/4/32 से 44 तक

3 अ० रा० 7/4/55, 56

4 अ० रा० 7/5/58, 59

लिया है।[1] सीता की पूजा करके वे उनको आश्रम में ले आते हैं।[2] यहां मुनि-पत्नियां उन्हें साक्षात् परमात्मा विष्णु की भार्या लक्ष्मी जानकर उनकी सेवा करती थीं।[3]

सीता परित्याग के वृतान्त का आधार कथाकार ने वाल्मीकि-रामायण को बनाया है किन्तु वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है। वाल्मीकिरामायण में वर्णन विस्तृत और मानवीय भावों के विवेचन से युक्त एवम् यथार्थ रूप में है। अध्यात्मरामायण में तो राम-सीता दोनों ही इस बात को जानते थे। यही कारण है कि वाल्मीकिरामायण के राम की भांति, अध्यात्मरामायण में राम, लक्ष्मण को आज्ञा देते समय शोक सन्तप्त नहीं दिखाई देते। वाल्मीकि-रामायण में सीता राम के प्रति संदेश भी भेजती हैं। अध्यात्मरामायण में यह वर्णन नहीं है।

मार्ग में लक्ष्मण और सुमन्त्र से होने वाली वार्ता का वर्णन भी अध्यात्मरामायण में नहीं है, जिसमें सुमन्त्र लक्ष्मण को सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि ब्राह्मणों ने दशरथ से कहा था कि श्रीराम निश्चय ही अधिक दुःख उठायेंगे। उनका शीघ्र ही प्रियजनों से वियोग होगा। सुमन्त्र यह भी बताते हैं कि दीर्घकाल बीतते राम, लक्ष्मण को, सीता को, भरत और शत्रुघ्न सभी को त्याग देगें। इसके लिये सुमन्त्र ने भृगु-ऋषि की कथा का तथा उनके द्वारा विष्णु दिये गये शाप का वर्णन किया है। वाल्मीकि रामयण में वर्णित सीता-परित्याग अध्यात्मरामायण की अपेक्षा स्वाभाविक एवम् अधिक मार्मिक है।

वाल्मीकि रामायण में सीता को वन में छोड़ने के बाद लौटकर आये हुए लक्ष्मण, राम को नैतिक एवं वैराग्य पूर्ण वचनों के द्वारा सान्तवना देते हैं।

---

1 अ० रा० 7/5/60

2 अ० रा० 7/5/61

3 अ० रा० 7/5/62

वाल्मीकि रामायण के उतरकाण्ड में सीता परित्याग के बाद नृग की कथा तथा अन्य पौराणिक कथाओं का विवेचन किया गया है, जिन्हें लक्ष्मण को राम ने सुनाया है।[1] अध्यात्मरामायण में इस बात का केवल इतना ही वर्णन है कि लक्ष्मण जी के पूछने पर राम उन्हें उतम कथायें सुनाया करते थे। उन्होंने लक्ष्मण को राजा नृग का, प्रमादवश ब्राह्मण के शाप से तिर्यग्योनि प्राप्ति का वृतान्त भी सुनाया।[2]

वाल्मीकि-रामायण में जहां पर राम-लक्ष्मण की वार्ता का विषय पौराणिक कथायें हैं। अध्यात्मरामायण में उनके बीच आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं भक्ति सम्बन्धी चर्चा होती है। लक्ष्मण राम के निर्विकार ब्रह्मस्वरूप का वर्णन कर उनसे अज्ञान के विनाश का उपाय पूछते हैं।[3] राम उन्हें ज्ञानोपदेश देते हैं। इसमें वे सद्गुरू का महत्व बताते हैं, यमनियमादि की शिक्षा देकर कर्म और ज्ञान के विषय में दार्शनिक उपदेश देते हैं।[4]

राम, मोक्ष का साधन बताते हुये ज्ञान और कर्म की विवेचना करते हैं। इस प्रसङ्ग में आत्मा, परात्मा, अविद्या, अज्ञान तथा जीव आदि के विषय मे दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है तथा जीवन्मुक्ति का साधन आत्मज्ञान बताया गया है। इस प्रसङ्ग में राम के मुख से निर्गुण के साथ सगुण स्वरूप का भी चिन्तन करने का उपदेश दिया गया है।[5]

लवणासुर-वध :-

इसके पश्चात् शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर वध,[6] तथा राम के द्वारा यज्ञ

---

1 वा० रा० 7/53 सर्ग से 77 सर्ग तक

2 सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना, रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः।
राज्ञः प्रमतस्य नृगस्य शापनो, द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ।।
– अ० रा० 7/5/2

3 अ० रा० 7/3/3, 4, 5

4 अ० रा० 7/5/6 से59 तक

5 अ० रा० 7/5/61

6 अ० रा० 7/6/25

किये जाने का वर्णन और उस यज्ञ में वाल्मीकि के साथ लव-कुश का आगमन,[1] आदि प्रसङ्गों का वर्णन हुआ है। इनका वर्णन वाल्मीकिरामायण के आधार पर ही है किन्तु वर्णन अपेक्षाकृत संक्षिप्त हैं।

राम की अश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर, वाल्मीकि के द्वारा तथा राम के द्वारा सीता की निष्कलङ्कता प्रमाणित करने और सीता के भूमिप्रवेश का प्रसङ्ग भी वाल्मीकि के ग्रन्थ के समान है।[2] वाल्मीकि-रामायण में सीता के भू-प्रवेश के उपरान्त राम का शोक विक्षुब्ध एवम अति उग्र स्वरूप देखने को मिलता है।[3] अध्यात्मरामायण में उनके रौद्ररूप के दर्शन नहीं होते है। उसमें वर्णन है कि भगवान् राम आगामी कार्य को जानते थे तथापि अनजान के समान उन्होंने सीता के लिये शोक किया।[4] वाल्मीकिरामायण तथा अध्यात्मरामायण में ब्रह्मा राम को सान्त्वना देते हैं। वाल्मीकि-रामायण में ब्रह्मा उनको, उनेके वैष्णव स्वरूप का स्मरण करने के लिये कहते हैं। वे सीता के वैकुण्ठ जाने की बात भी कहते हैं।[5]

राम-कौशल्या-वार्तालाप :-

माताओं के परलोक गमन के पहले आध्यात्मरामायण में राम-कौशल्या भेंट का वर्णन है।[6] कौशल्या राम को शुद्ध ब्रह्मरूप जानकर उनसे भव-बन्धन काटने वाले ज्ञान का उपदेश देने को कहती हैं।[7] राम, मोक्ष प्राप्ति के साधनरूप तीन मार्गों - ज्ञान योग, भक्ति योग और कर्म योग का वर्णन करते हैं।[8] इसमें तीनों

---

1 अ० रा० 7/6/34, 35, 36

2 अ० रा० 7/7/28 से 44 तक वा० रा० 7/97

3 वा० रा०

4 अ० रा० 7/7/48, 49

5 अ० रा० 7/7/48

6 अ० रा० 7/7/53

7 अ० रा० 7/7/54 से 57 तक

मार्गों का विवेचन कर भक्ति को श्रेष्ठ कहा गया है। भक्ति और भक्त के स्वरूप का चित्रण किया गया है तथा निर्गुण-भक्ति के उपायों का वर्णन किया गया है।

ज्ञान, भक्ति और कर्म को स्थान पर चर्चा करने वाले, दार्शनिक तत्वों का विवेचन करने वाले एवं राम भक्ति को सर्वश्रेष्ठ स्थान देने वाले कथा-कार के लिये ऐसे प्रसङ्गों को रखना उपयुक्त ही था। इनके माध्यम से कथाकार ने ज्ञान, भक्ति और कर्म का विवेचन किया है और भक्ति के महत्व का प्रति-पादन किया है।

राम से ज्ञान प्राप्त कर उनका ध्यान करती हुई कौशल्या, चित्रकूट में ही योग को हृदयङ्गम् कर भक्तिभाव से राम का ध्यान करती हुई कैकेयी और विमल बुद्धि सुमित्रा ने पति का सामीप्य प्राप्त किया।[1] वाल्मीकिरामायण में वर्णन है कि जीवन में धर्म का अनुष्ठान करने से तीनों को पति का समीप्य मिला। अध्यात्मरामायण में तीनों माताओं का दर्शन राम की अनन्य भक्त के रूप में होता है। ज्ञान और भक्ति से उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

मुनिवेष में काल का राम से गुप्त वार्तालाप[2] दुर्वासा मुनि का आगमन[3], लक्ष्मण को त्याग-दण्ड[4] तथा लक्ष्मण को इन्द्र द्वारा सशरीर स्वर्ग ले जाने का वर्णन[5], इसके पश्चात् हुआ है। ये प्रसङ्ग भी अध्यात्मरामायण में वाल्मीकि रामायण के समान हैं।

<u>राम का महाप्रयाण</u> :-

भ्राताओं, परिजनों एवं वानर-भालुओं के सहित राम के महाप्रयाण

---

1 अ० रा० 7/7/82 से 84 तक
2 अ० रा० 7/8/17 से 39 तक
3 अ० रा० 7/8/40, 41
4 अ० रा० 7/8/64 से 66 तक
5 अ० रा० 7/8/67 से 71 तक

का वर्णन पूर्णत: वाल्मीकि रामायण की तरह है। दोनों में यह अन्तर है कि वाल्मीकिरामायण में विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, मैनद तथा द्विविध को राम पृथ्वी पर रहने का आदेश देते हैं।[1] अध्यात्मरामायण में यह वर्णन नहीं है। वाल्मीकिरामायण के समान ही[2] अध्यात्मरामायण में वर्णन है कि समस्त पुरवासी एवं वानर आदि सरयू के जल में डूबकर, मनुष्य देह को त्यागकर तथा आभूषणों से विभूषित होकर, विमानों पर चढ़कर सान्तिक लोकों में जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि ब्रह्मा की प्रार्थना पर रघुनाथ ने भाइयों के साथ सशरीर वैष्णव तेज में प्रवेश किया।

अध्यात्मरामायण में ब्रह्मा की प्रार्थना पर, राम सबके देखते-देखते चक्रादि आयुधों से युक्त चतुर्भुज रूप हो गये। लक्ष्मण फण धारण कर भगवान् की शय्यारूप शेषनाग हो गये तथा कैकेयी पुत्र भरत और लवणान्तक शत्रुघ्न, दिव्य शङ्ख और चक्र हो गये।[3]

इसके बाद ग्रन्थ प्रशंसा है और यहीं पर ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है।

---

1 वा० रा० 7/108 सर्ग

2 अ० रा० 7/9/64 से 67 तक

3 अ० रा० 7/9/56 से 57 तक

चतुर्थ-परिच्छेद

अध्यात्मरामायण के दार्शनिक-सिद्धान्त

अध्यात्म-रामायण में राम के रूप में ब्रह्म का निरूपण हुआ है। ग्रन्थ में राम को परब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म, ईश्वर, जीव जगत् आदि विषयों का विवेचन पूरे ग्रन्थ में बिखरा पड़ा है। ये विवेचन कभी-कभी प्राङ्0गक कथाओं के माध्यम से किये गये हैं और कभी चरित्रों के पारस्परिक संवादों के माध्यम से। ग्रन्थ के मंगलाचरण में ही राम के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन संवादो के माध्यम से। ग्रन्थ के मंगलाचरण में ही राम के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन इस प्रकार हुआ है कि 'चिन्मय अविनाशी प्रभु ने पृथिवी का भार उतारने के लिए सूर्यवंश में माया-मानव रूप से अवतार लिया और राक्षसों का विनाश करके पुन: अपने आद्य-ब्रह्म स्वरूप में लीन हो गये।[1]

राम का यह आद्य-ब्रह्म-स्वरूप अध्यात्मरामायण में कैसा है इसके स्पष्ट हो जाने पर ही यह निश्चित हो सकेगा कि अध्यात्मरामायण में परम-तत्व ब्रह्म का स्वरूप अभिप्रेत है।

राम का ब्रह्मरूपत्व :-

राम ही साक्षात् ब्रह्म हैं। वे विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदि के एकमात्र कारण हैं वे माया के आश्रय हैं और माया से परे ही हैं। वे निर्मल और स्वयंप्रकाश या स्वयंज्योतिरूप हैं। उनका स्वरूप अचिन्त्य है और

---

1 य: पृथिवीभरवारणाय दिविजै: संप्रार्थितश्चिन्मय: संजात: पृथ्वीतले रविकुले मायामनुष्यो व्यय:

निश्चक्रं हतराक्षस: पुनरगाद्ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ।। अ0 रा0 1/1/1

उपाधि कृत दोषों से रहित है।[1]

<u>जगत्कारणता</u> :-

ब्रह्म-स्वरूप राम विश्व की उत्पत्ति-स्थिति तथा लयादि के एक-मात्र कारण हैं। शाङ्कर वेदान्त में ब्रह्म को जगत् का निमितकारण और उपादान-कारण दोनों ही माना गया है। अज्ञान से उपहित चैतन्य अर्थात् ईश्वर को चैतन्यप्राधान्य की दृष्टि से निमितकारण और उसकी उपाधि की प्रधानता की दृष्टि से उस ईश्वर को उपादान कारण कहा जाता है। जिस प्रकार मकड़ी जाले रूपी कार्य के सन्दर्भ में अपनी प्रधानता से निमित कारण और अपने शरीर की दृष्टि से उपादानकारण होती है तथा जिस प्रकार वह अपना जाला बनाने के लिये अन्य वस्तुओं की अपेक्षा नहीं रखती,[2] उसी प्रकार ईश्वर सृष्टि के पूर्व अकेला ही बिना किसी अन्य तत्व की सहायता के केवल अपनी माया-शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि की रचना कर देता है। अतः जिस प्रकार मकड़ी अपने तन्तु-रूप कार्य के लिये अभिन्ननिमितोपादान कारण है, वैसे ही जगत्रूपकार्य के लिये राम अभिन्ननिमितोपादान कारण हैं। राम सृष्टि-काल में अकेले ही बिना किसी सहायता की अपेक्षा के केवल अपनी माया-शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि कर देते हैं। यह माया राम की उपाधि है। यह उपाधि ही उनकी शक्ति कही गई है। इसी माया या अज्ञान सेउपहित चैतन्य की दृष्टि से राम जगत् के निमित कारण हैं और अपनी उपाधि अर्थात् माया की दृष्टि से उपादान कारण हैं।[3] राम अपने कार्य में व्याप्त हैं।

---

1 आनन्दसान्द्रममलंनिजबोधरूपं 1/1/2

2 सृष्टेः प्रागेक एवासी र्निर्विकल्पो नुपाधिकः ।
त्वदाश्रया त्वद्विषया माया ते शक्तिरूच्यते ।। अ0 रा0 3/3/20

3 तैत्ति0 2/6/1

'तद् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' यही कार्यव्याप्ति उपादान-कारणता का लक्षण है। अध्यात्मरामायण में महादेव जी ने राम का तात्त्विक रूप बताते हुये कहा है कि वह समस्त विश्व को रचकर उसके बाहर, भीतर, आकाश के समान व्याप्त है। इस प्रकार राम जगद्व्याप्त ॥जगत् में व्याप्त॥ ॥ ॥ और उससे परे ॥जगदुत्तीर्ण॥ ॥ ॥ भी हैं। जगत् रूप कार्य का स्वतन्त्र कारण होने से वह कर्ता सर्वज्ञ है। 'य: सर्वज्ञ: सर्वविद्, यस्य-ज्ञानमयं तप: - वह जड़ जगत् का चेतनकर्ता है।

<u>चिन्मात्रत्व</u> :-

राम चैतन्यस्वरूप हैं। चित् का अर्थ है ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप या ज्ञाप्तिस्वरूप। राम जड़ नहीं है। वह चिन्मात्र हैं। चैतन्य उनका गुण नहीं है बल्कि स्वरूप है'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ॥तैति0 2/1/1 ॥ इस श्रुति वाक्य में भी ज्ञान और ब्रह्म का ऐक्य ही कहा गया है। वह सर्वधर्मातीत हैं क्योंकि सभी धर्म प्रतीयमान और आरोपित होने के कारण मिथ्या हैं।

राम के अवतार के समय स्तुत करती हुई कौशल्या ने राम के इसी ज्ञानस्वरूप के लिए कहा है कि 'राम अच्युत और अनन्त हैं। अपने स्वरूप से न गिरने वाले अर्थात् मन और वाणी के अविषय इन्द्रियों से परे सत्तामात्र और ज्ञानस्वरूप हैं।[1] वे निर्मल तुरीय पद में स्थित हैं।[2] वे प्राण नहीं है, वे मन नहीं है, वे शुद्ध चैतन्य हैं।[3] राम चिन्मात्र ज्योति स्वरूप है। वह शरीर में

---

1 त्वां वेदवादिन: सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम् । - अ0 रा0 1/3/21

2 सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्य एवामल: सदा । - अ0 रा0 1/3/22

3 अप्राणोह्यमना: शुद्ध: इत्यादि ।

- श्रुतिरब्रवीत् । अ0 रा0 1/3/14

॥तैति0 2/6/1 ॥

स्थित रह कर बुद्धि को प्रकाशित करते हैं। इसलिये वही सबके आत्मा हैं।[1] वह साक्षी और अव्यय हैं। क्योंकि वह जाग्रद्, स्वप्न और सुषुप्ति - इन तीन प्रकार की सृष्टियों से विलक्षण हैं। इन सृष्टियों के वह चेतन साक्षी हैं।

आनन्दरूपता :-

राम आनन्दरूप हैं, अर्थात् निरतिशय सुखरूप हैं। आनन्द और राम में धर्माधर्मिभाव नहीं है प्रत्युत ज्ञान के समान आनन्द भी राम का स्वरूप ही है। अध्यात्म रामायण में राम को आनन्दघन,[2] निर्मल और अचिन्त्य कहा गया है। राम वाणी और मन का विषय नहीं बन सकते क्योंकि वह इन सबके साक्षी हैं।[3]

अचिन्त्य रूप :-

उसी के प्रकाश से यह सब प्रकाशित हैं। श्रुतियां भी ब्रह्म को ' नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।[4] इसी के द्वारा बुद्धि, मन प्राण और इन्द्रिय-मण्डल से अगम्य बताती हैं। अत: वह वाणी और मन का विषय नहीं बन सकते। वह अचिन्त्यस्वरूप हैं।

---

1 जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्याख्या वृतयो बुद्धिजैर्गुणै : ।
तासां विलक्षणो राम त्वं साक्षी चिन्मयो व्ययः ।।
- अ0 रा0 3/3/30

2 आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपं - अ0 रा0 1/1/2

3 वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्धयादीनामतीन्द्रियम् ।
- अ0 रा0 1/3/21

4 यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम् ।
- केनो0 1/4/5

इस प्रकार ब्रह्म या राम सच्चिदानन्दस्वरूप सिद्ध होते हैं। यही सच्चिदानन्द राम अपनी माया शक्ति से उपहित होने पर एक होकर भी अनेक रूप में भासमान होते हैं।

<u>मायोपहितता</u> :-

राम माया रूपी उपाधि से उपहित हैं। यह माया उनकी शक्ति है। इसी उपाधि से उपहित रूप में वह संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाले हैं। राम या ब्रह्म में जगत्कारणता माया के उपहितत्व की दृष्टि से ही है। यह उपहितत्व भी काल्पनिक है। माया की दृष्टि से सत्वादि गुण से संयुक्त होने पर भी राम या ब्रह्म बस्तुत: शुद्ध तुरीय पद में स्थित हैं।[1] ब्रह्म राम, सम्पूर्ण हैं, अति मायिक हैं, और आनन्दमय हैं। अपनी माया के गुणों से उपहित होकर अवतार लेते हैं और विचित्र लीलायें करते हैं।

<u>मायाश्रयत्व</u> :-

अध्यात्मरामायण के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में विकल्प और उपाधि से रहित राम थे। राम की शक्ति माया, राम को ही विषय करने वाली और उसी पर आश्रित है।[2] अपने मायिक गुणों के भेद से ही राम रजोगुण द्वारा जगत्कर्ता ब्रह्मा सत्व गुण द्वारा विष्णु और तमोगुण द्वारा शम्भु कहे जाते हैं।[3] माया को अङ्गीकार कर वह गुणवान् से हो जाते हैं। तब वह अगणित गुणशाली अप्रमेय होते हैं। भाषा के गुणों में प्रतिविम्बित

---

1 त्वमेव मायया विश्वं सृजस्यवसि हंसि चा
सत्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्यं एवामल: सदा ।। - अ० रा० 1/3/22

2 सृष्टे: प्रागेक एवासी निर्विकल्पो नुपाधिक:।
त्वदाश्रयात्वद्विषया माया ते शक्तिरूच्यते।। - अ० रा० 3/3/20

3 देवतिर्यङ्०मनुष्यायश्च कालकर्मक्रमेणतु ।
त्वं रजोगुणतो ब्रह्मा जगत: सर्वकारणम्।।
-अ० रा० 3/3/28

हो कर वह, विभिन्न नाम धारण करते हैं।[1] किन्तु वह उन गुणों में लिप्त नहीं होते हैं।[2] वह परात्मा राम माया का आश्रय होकर भी माया से परे हैं। जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक अपनी विद्या से सबको अभिभूत कर देता है किन्तु स्वयम् अभिभूत नहीं होता। उसी प्रकार राम भी अपनी माया शक्ति से सबको अभिभूत कर देते हैं किन्तु स्वयम् उससे परे रहते हैं।[3] वह परानन्दस्वरूप राम माया के आश्रय हैं। वे माया के अधिष्ठान हैं माया उनमें हैं वह माया में नहीं हैं। क्योंकि कल्पित या अवास्तविक पदार्थ अधिष्ठान बन ही नहीं सकता। जब वह वस्तुत: है ही नहीं तो उसमें किसी भी सतावान् पदार्थ के होने न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। उसकी तो केवल भ्रान्ति या प्रतीति ही मात्र होती है। माया की सन्निधि मात्र से ही इस विश्व की रचना होती है। जिस प्रकार चक्कर लगाते समय नेत्रों के घूमने से गृह आदि भी घूमते हुये प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार देह और इन्द्रिय रूप कर्ता के किये हुए कर्मों का आत्मा में आरोप भ्रान्तिवशात् हो जाता है।[4] शुद्ध चेतनघन राम में ज्ञान और अज्ञान एक साथ उसी प्रकार नहीं रह सकते जैसे सूर्य में प्रकाशरूपता का कभी व्यभिचार नहीं होता। उनमें अज्ञान का लेश भी नहीं है। क्योंकि वे तो ज्ञान-स्वरूप हैं। वे माया के अधिष्ठान हैं इसलिये वह उन्हें मोहित या भ्रान्त नहीं कर सकती।[5]

---

1 अयं हि विश्वद्भवसंयमानामेक: स्वमायागुणविम्बितो य: ।
विरंचि विष्णवीश्वर नाम भेदान् धते स्वतन्त्र: परिपूर्णआत्मा।।
हरिकमलजशम्भुरूपभेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत: ।
रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे।। 3/8/52

2 देहान्विभर्षि न च देह गुणेर्विलिप्तस्त्वतो विभेत्यखिलमोहकरीचिमाया
असड्0गोह्यंपूरूष: इतिश्रुते:।

3 जगतेन न ते लेप: आनन्दानुभवात्मन: । अ0 रा0 1/2/15

4 यथा हि चाक्षुणा भ्रमतागृहादिकं विनष्टभ्रमतीव दृश्यते।
तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मन: कृते परे ध्यास्य जनो विमुह्यति ।। अ0 रा0 1/1/

5 अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने, मायाश्रयत्वान्त हि मोहकारणाम् ।
– अ0 रा0 1/1/24

वास्तविक तथ्य तो यह है कि राम समस्त उपाधियों से रहित सतामात्र, मन तथा इन्द्रियों के अविषय[1] आनन्दघन और निर्विकार हैं।[2] यह अवास्तविक माया उनकी सन्निधि मात्र से अस विश्व की रचना करती है। किन्तु अज्ञानवश लोग इन कार्यों को निर्विकार सर्वात्मा में आरोपित कर लेते हैं। अध्यात्म-रामायण में इस बात को शङ्कर-पार्वती संवाद के अवसर पर स्पष्ट किया गया है। इस वर्णन में स्वयं सीता ने राम का तात्विक रूप बताते हुए स्वयं को मूल प्रकृति बताया है, जो कि ब्रह्म-राम की सन्निधि मात्र से विश्व की उत्पत्ति करने वाली हैं। अत: राम के द्वारा सम्पन्न समस्त कार्य माया के हैं उन्हें राम में अज्ञजनों ने आरोपित किया है।[3] ब्रह्म राम माया के गुणों से व्याप्त होने के कारण गुणवान् प्रतीत होते हैं। चिदाभास[4] के सहित बुद्धि ही सब कार्य करती है।

नानारूपत्व :-

पहले कहाजा चुका है कि सृष्टि के आदि में अकेले निरूपाधिक राम ही थे।[5] वे एको हं बहुस्याम् के संकल्पानुसार अनेकों रूपों अनेकों रूपों में प्रकट हुए। अपनी माया के गुणों में प्रतिबिम्बित होकर उन्होंने विभिन्न नाम धारण

---

1 बुद्धयादिसाक्षी ब्रह्मैव तस्मिन्निर्विषये खिलम ।।

- अ0 रा0 3/9/32

2 आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरंजनम् । अ0 रा0 1/1/33

3 एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि ।

आरोपयन्ति रामे स्मिन्निर्विकारे खिलात्मनि ।।

- अ0 रामा0 1/1/42

4 वस्तुत: माया में पड़े हुए ब्रह्म-राम के प्रतिबिम्बांश को चिदाभास कहा गया है।

5 अ0 रा0 3/3/20

किये।[1] जिस प्रकार सूर्य एक होकर भी अनेक दर्पणों में प्रतिविम्बित होता है। इन अनेक प्रतिविम्बों में से उसका विम्ब रूप ही सच्चा है और वास्तविक होता है शेष प्रतिबिम्ब तो दर्पण के कारण प्रतीत होते हैं। दर्पण के नष्ट हो जाने पर प्रतिबिम्ब नहीं रहते है केवल सूर्य ही रह जाता है, उसी प्रकार माया के गुणों में प्रतिबिम्बित राम नाना रूपों में भासमान होते हैं। वह एक होकर भी बहुरूपिणी माया के कारण कार्य, कारण, कर्तृत्व, फल और साधनादि भेद से अनेक रूपों में भामान होते हैं।[2] वह राम ओड्0कार पद से बाच्य कहे जाने पर भी वस्तुत: वाणी से अगोचर परम पुरूष ही हैं।[3] समस्त जगत राम से अलग कुछ नहीं है। माया के गुणों में प्रतिबिम्बित हुए वह परमेश्वर राम जगत्-रूप भी कहे जा सकते हैं। इस प्रकार वाच्य वाचक भेद से वर्तमान सकल जगत-प्रपंच राम ही है।[4] यह रातत्व के जगद्व्यापास्वभाव ( ) का कथन है।

जिस प्रकार चुम्बक की सन्निधि मात्र से लोहा क्रियाशील हो जाता है। उसी प्रकार उस चेतन की सन्निधि मात्र से यह विश्व सब ओर भासित होता है।[5] सब का अधिष्ठानत्वेन कारण होने से राम ही सत्य

---

1 अयं हि विश्वोद्भवसंयमानामेक: स्वमायागुणविम्बितौय: । 1/5/50
त्वं विश्वरूप: पुरूषों मायाशक्तिसमन्वित: ।। 7/2/69

2 अ0 रा0 1/5/54

3 वाच्यवाचकभेदेन भवानेव जगन्मय: ।
- अ0 रा0 1/5/53

4 ओंकारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषय: पुमान् । 1/5/53

5 जगन्तिनित्यं परितोभ्रमन्ति यत्सन्निधौचुम्बकलोहवद्धि: ।
- अ0 रा0 1/1/19

हैं।[1] मृतिका में घट आदि के समान यह दृश्यमान आकाशादि सारा प्रपंच राम में ही कल्पित है। सर्वाधिष्ठान राम के ज्ञान से कार्यमात्र का ज्ञान हो जाता है। अत: राम के ज्ञान से भोक्तृ-वर्ग तथा भोग्य-वर्ग सबका ज्ञान हो जाता है। क्योंकि यह सम्पूर्ण भाक्तृ-वर्ग तथा भोग्य-वर्ग तद्रूप राम से अभिन्न ही है। रज्जु में सर्प भ्रम के समान अज्ञान से ही [राम में] सम्पूर्ण जगत् की कल्पना की जाती है।[2] ब्रह्म का ज्ञान हो जाने से यह सारा प्रपंच उसी में लीन हो जाता है।[3] तात्पर्य यह है कि राम के स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर यह जगत् नहीं रह जाता। अत: जगत् का भान अज्ञान के कारण ही है। इस प्रकार सारांशत: राम आकाश के समान बाहर भीतर सब ओर विराजमान, निर्मल, असङ्ग, नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और अव्यय हैं। वह प्रकृति से परे और अज्ञान जन्य जन्मादि छ: भाव विकारों से रहित हैं।[4] वह गमनादि से रहित निर्विकार और पूर्ण है। जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन प्रकार की सृष्टियों से विलक्षण हैं। इन सृष्टियों को चेतन साक्षी हैं। उनकी शक्ति का नाम माया है। जिस समय यह माया शक्ति निर्गुण राम को ढक लेती है, उसे वेदान्तनिष्ठ पुरूष अव्याकृत कहते हैं।[5] सम्पूर्ण चराचर अज्ञानवश राम में ही आरोपित है। वस्तुत: ये सब प्रप च है ही नहीं।

---

1 त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम्।।

- अ0 रा0 2/1/25

2 आज्ञानान्न्यस्तो सर्वं त्वयि रज्जौ भुजङ्गवत्

-अ0 रा0 2/1/28

3 त्वज्ज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत् ।।।

- अ0 रा0 2/1/28

4 अ0 रा0 6/3/29

5 त्वामेव निर्गुणं शक्तिरावृणोति यदा तदा।
अव्याकृतमिति प्राहुर्वेदान्त परिनिष्ठिता: ।

- अ0 रा0 3/3/21

ब्रह्म का सूक्ष्म शरीर :-

परब्रह्म राम का सूक्ष्म देह हिरण्यगर्भ और स्थूल देह विराट् कहलाता है।[1] अग्नि, सूर्य, चन्द्र तथा समस्त प्राणियों में जो चेतनांश है तथा देहधारियों में जो धैर्य-शार्य और आयुर्बल है, वह राम ही की सता है।[2] संसार में जो सत् और असत् है वह सब राम का प्रकाशन ही हैं। परब्रह्म-राम नित्यमुक्त होकर भी अपनी माया के गुणों में प्रतिविम्बित होकर काल, प्रधान, पुरूष और अव्यक्त इन चार नामों से कहा जाता है।[3]

महाप्रलय की स्थिति में समस्त विश्व का उसी कारण-स्वरूप परात्मा में लय हो जाता है।[4] उस स्थिति में केवल परमब्रह्म-राम ही शेष रहते हैं। समस्त जीव राम में ही विलीन हो जाते हैं। राम का यह लोकोत्तीर्ण एवम् लोकव्याप्त स्वरूप अध्यात्मरामायण में निरूपित हुआ है।

समस्त ब्रह्माण्ड का जो उनके स्वरूप में लय कहा गया है। वस्तुत: यह लय किसी सतावान् पदार्थ का लय नहीं है। यह तो कल्पित और केवल

---

1 अ०रा० 3/9/31 से 34 तक

2 अ० रा० 6/15/56, 58

3 स एव नित्यमुक्तो पि स्वमायागुणविम्बित: ।
काल प्रधानं स पुरूषो व्यक्तं चेति चतुर्विध: ।।
- 1/2/40

4 विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं विलापयेदात्मनि सर्वकारणे
पूर्णश्चिदानन्दमयो वतिष्ठते, न वेद बाह्यं न च किं चिदान्तरम् ।
- 7/5/47

5 त्वमादिर्जगतां राम त्वमेवस्थितिकारणम् ।
त्वमन्ते निधनस्थानं स्वेच्छाचारस्त्वमेव हि।
- अ० रा० 6/3/20

प्रतीयमान पदार्थ का लय है। जैसे ज्ञानोतरकाल में रज्जु में सर्प, सर्पत्वलय को प्राप्त होता है वैसे ही ब्रह्म-ज्ञान के बाद सारे पदार्थ तदतिरिक्त कुछ नहीं रह जाते।

अध्यात्म-रामायण में राम के स्थूल[1] तथा सूक्ष्म रूपों का निरूपण इस प्रकार हुआ है -

देहद्वय मदेहस्य तव विश्वं रिरिक्षिषो:।
विराट् स्थूलं शरीरं ते सूत्रं सूक्ष्ममुदाहृतम्।।[2]

स्थूलस्वरूप को ही परब्रह्म राम का विराट्रूप कहा गया है। सूत्र का अर्थ है सूत्रात्मा अर्थात् हिरण्यगर्भरूप । जगत् में भगवान् का रूप दर्शन, उनके विभिन्न अङ्गों का ही देखना उनका विराट् रूप का दर्शन करना है। मुण्डकोपनिषद् में परमेश्वर से सूक्ष्म तत्वों की उत्पत्ति का प्रकार बताकर इस जगत् में ही उनका विराट् रूप वर्णित किया गया है -

अग्निर्मूर्धा चक्षुंषी चन्द्रसूर्यौ दिश:श्रौत्रे वाग्विवृताश्चवेदा:
वायु: प्राणों हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी हृयेष सर्वभूतान्तरात्मा[3]

अध्यात्मरामायण में कबन्धोद्धार के प्रसङ्ग में गन्धर्व ने राम की स्तुति करते हुये उनके विराट् स्वरूप का इसी प्रकार वर्णन किया है -

स्थूलेण्डकोशे देहे ते महदादिभिरावृते।
सप्तभिरूत्तरगुणैर्वैराजो धारणाश्रय: ।।[4]

---

1 मया ततमिदं सर्वं जगदअ यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित: ।। गीता 9/4

2 सं० 15, श्लोक 30, यु० का० अ० रा०

3 मुण्डकोप० 4

4 अ० रा० 3/9/35

अध्यात्मरामायण में एक स्थल पर ब्रह्मराम के स्थूल अथवा विराट् स्वरूप का वर्णन इस प्रकार हुआ है।[1]

'त्वमेवं सर्वं कैवल्यं लोकास्ते व्यवा:स्मृता:

एकमात्र मोक्ष स्वरूप ब्रह्म-राम के अवयव सम्पूर्ण लोक हैं। पाताल उनका चरण तल हैं, महातल एंड़ी है, रसातल गुल्फ हैं। तलातल जानु हैं तथा सुतल उनकी ※ जंघायें और वितल उनके दो उरु हैं। अतल और पृथिवी जघन भाग हैं, भूलोक नाभि है, स्वर्लोक वक्ष:स्थल है तथा महर्लोक ग्रीवा है। जनलोक मुख है तप-लोक ललाट है तथा सत्यलोक मस्तक है। इन्द्रादि लोकपालगण भुजायें, दिशायें कर्ण हैं, अश्विनीकुमार नासिका हैं और गग्नि मुख है। सूर्य, राम के नेत्र हैं, चन्द्रमा मन है, काल भ्रूभृइOगी है और वृहस्पति बुद्धि है। रूद्र उनका अहंकार है, वेद वाणी है, यम उनकी दाढ़े है और नक्षत्र दन्तावलि हैं। माया उनका हास्य है, सृष्टि कटाक्ष है, धर्म आगे का भाग और अधर्म पीछे का भाग है। रात और दिन उनके निमेषोन्मेष हैं। समुद्र उनकी कुक्षि और नदियां नाड़ियां है। वृक्ष और औषधियां उनके रोम हैं, वृष्टि उनका वीर्य है। ज्ञान शक्ति उनकी महिमा है। यही राम का स्थूल शरीर है।[2]

इसी विराट् रूप का दर्शन-वर्णन देवताओं द्वारा, विजयोपरान्त राम की स्तुति के समय हुआ है।[3] श्रीमद्भागवत[4] में वर्णित ब्रह्म के विराट्

---

1 अ0 रा0 3/9/36 से 45 तक

2 रोमाणि वृक्षौषधयो रेतो वृष्टिस्तव प्रभो।
  महिमा ज्ञानशक्तिस्ते एवं स्थूलं वपुस्तव ।।
  — अ0 रा0 3/9/45

3 अ0 रा0 7/2/64 से 69

4 श्रीमद्भागवत - 2/1/23 से 36

स्वरूप से इसमें पर्याप्त समानता है।

चराचर जगत् ब्रह्म का ही स्वरूप है। ब्रह्म-राम के मुख से वाणी के सहित अग्नि देव प्रकट हुये। भुजाओं से लोकपाल, नेत्रों से चन्द्रमा और सूर्य तथा कानों से द्रिशा विदिशायें उत्पन्न हुईं। घ्राणेन्द्रिय से प्राण तथा अश्विनीकुमार प्रकट हुये। जङ्0घन, जानु, ऊरु और जघनादि अङ्0गों से भुवर्लोक आदि हुये। कुक्षि से चार समुद्र, स्तनों से इन्द्र और वरूण तथा वीर्य से बाल-खिल्य-मुनीश्वर हुये। उपस्थेन्द्रिय से यम, गुदा से मृत्यु, क्रोध से त्रिनयन, अस्थियों से पर्वत, केशों से मेघ, रोमों से औषधियां तथा नखों से गधे उत्पन्न हुये।

अन्तत: रामनिर्गुण ब्रह्म ही ठहरते हैं। अब देखना यह है कि कैसे वे दशरथ के पुत्र-रूप में अवतीर्ण हुए और कैसे रावण से लड़े, कैसे सारी मानवीय लीला उन्होंने उम्पन्न की। क्या निर्गुण तत्व इस प्रकार की क्रिया कर सकता है इन प्रश्नों का समाधान अध्यात्मरामायण में इस प्रकार किया गया है :-

वस्तुत: न तो एक अनेक होता है, निर्विकार में सविकारता आती है और न निगुर्ण सगुण ही बनता है। बात सिर्फ एक के अनेक रूप में दिखाई पड़ने, निर्विकार तत्व में सविकार पदार्थों के दिखाई पड़ने और निर्गुण में सगुण रूप दिखाई पड़ने भर की है और यह दिखाई पड़ना जीव की अनादि अविद्या का कुपरिणाम है। इस प्रकार अविद्या की बदौलत नानात्व की प्रतीति मात्र होने से सविकारता, यगुणता और प्रपंचों की सता न समझनी चाहिए। ये सब स्वरूपत: हैं ही नहीं इसलिए निर्गुणरामतत्व के नाना रूप ग्रहण का कोई समाधान ढूढ़ना ही व्यर्थ है। निर्गुणराम तो सदा अविकारी, चिन्मय और अद्वय, एक ही हैं। अनेकत्व की प्रतीति तो जीव की अविद्या के ही कारण है। जैसे स्वप्न के अनेकपदार्थों की सता केवल स्वप्न-द्रष्टा की बुद्धि की ही उपज होती है। उनका कोई न तो उपादान है और न उनकी कारणता का कोई समाधान ही ढूढ़ना पड़ता है।

ब्रह्म को जगत् का स्रष्टा तथा अभिन्ननिमित्तोपादान कारण कहा गया है। उक्त चेतन, आनन्दमय सता, अचेतन और दु:खमय संसार में कैसे अनेकमय प्रतीत होने लगता है। निर्विकार सविकास कैसे हो जाता है इस विषय का समाधान अध्यात्मरामायण में इस प्रकार किया गया है -

जिस प्रकार घट, शराव मृतपिण्ड आदि अलग-अलग पदार्थ हैं और एक दूसरे से पूर्णतया स्वतंत्र हैं। किन्तु मृतिका से स्वतन्त्र भ्रे न तो किसी की सता है और न उससे कोई भिन्न ही है। अत: पारमार्थिक सत्य मृतिका ही है। उसी प्रकार जितना भी जगत् प्रपंच है, वह सब परस्पर रूप और नाम से भिन्न होते हुये भी या भिन्न दिखाई पड़ते हुये भी सततत्व ब्रह्म या राम से न तो भिन्न ही है न स्वतंत्र ही। अत: पारमार्थिक सता तो एक ही रहती है।[1] सिर्फ उसके अनेक रूप दिखाई भर पड़ते हैं। इस प्रकार सारी सृष्टि, सारी स्थिति और समस्त प्रलय अविद्या के कारण ही जीव को प्रतीतकार होते हैं। जहां जो वस्तु नहीं है, वहां उसके ज्ञात होने की बुद्धि ही अविद्या[1] है।

<u>माया</u> :-

अध्यात्मरामायण में राम को निर्गुण ब्रह्म और सीता को मूल प्रकृति कहा गया है। ग्रन्थ में सीता ने हनुमान् से कहा है - मां विद्धिमूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्[2] यही मूल प्रकृति संसार की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करने वाली माया है। राम की सन्निधिमात्र से यह विश्व का सृजन

---

1 अतस्मिंस्तद्बुद्धिरविद्या।

- अ0 रा0 7/2/70 तथा 1/5/53

2 अ0 रा0 1/1/34

करती हैं।[1] यह माया त्रिगुणात्मिका है। इसको विश्वविमोहिनी तथा महामाया भी कहा गया है। सम्पूर्ण संसार की आदिकारण यह माया ब्रह्म की गृहिणी कही गई है। इस माया से ब्रह्मा आदि सब प्रजायें उत्पन्न होती हैं।[2] यह सत्व, रजस् तथा तमोगुणों वाली त्रिगुणात्मिका माया सदा ब्रह्म के आश्रित होकर भासमान होती है तथा अपने गुणों के अनुरूप शुक्ल, लोहित और कृष्णवर्ण प्रजा उत्पन्न करती है। यह रामतापनीयोपनिषद् में तमोरूपा कही गई है। यह अनिर्वचनीया और अनादि है। सत् तो यह हो नहीं सकती क्योंकि 'एकमेवाद्वितीयम्' इत्यादि श्रुति ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी को सत् बतलाती नहीं हैं। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर इस माया की निवृत्ति भी सदा के लिए हो जाती है। जो सत् हो वह तो विनष्ट नहीं होता। माया को हम असत् भी नहीं कह सकते। क्योंकि जीवको इसका अनुभव होता है। इन विरोधी गुणों के कारण जड़ माया को मुक्ति की कसौटी पर अनिर्वचनीय ही सिद्ध किया जा सकता है।[3] इसको अविद्या नाम से भी कहा गयाहै। क्योंकि यह अविद्या की समष्टि है। जैसे जीव की समष्टि ही हिरण्यगर्भ है वैसे ही अविद्या की समष्टि ही माया है। यही जन्म-मरण रूप संसार का कारण है।[4] जिस अज्ञान के कारण प्राणी को असत् जगत् सत् दिखाई पड़ता है। उसे ही अविद्या कहते हैं। अविद्या, विद्या की विरोधिनी है। जिसप्रकार

---

1 तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ।। 1/1/34

2 त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्यां ब्रह्मादयः प्रजाः
त्वदाश्रयात्सदाभाति माया या त्रिगुणात्मिका ।। अ0 रा0 2/1/11
सूते जस्त्रं शुक्लकृष्णलोहिताः सर्वदा प्रजाः।
— अ0 रा0 2/1/12

3 अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरुच्यते ।
— अ0 रा0 2/1/22

कृत्रिम नटी सूत्रधार की इच्छानुसार ही नाचती है, उसी प्रकार यह माया-रूपणी नटी भी ब्रह्म के आश्रित और उसी के द्वारा प्रेरित है।[1]

इस प्रकार ब्रह्म को अनेक जीवों और जगत् इत्यादि नाना रूपों में दिखाने वाली माया ही मायाजीव और परमात्मा के बीच में रहने वाली है।[2] अत: जीव और परमात्मा के बीच भेद बुद्धि का कारण माया ही है। यह माया अविद्या, संसृति और बन्धन आदि नामों से भी जानी जाती है। इसी प्रकार शरीरादि अनात्म पदार्थों में जो सद्भूत आत्मा की प्रतीति होती है वह भी माया के ही कारण। माया के कारण ही शुद्ध चेतन आत्मा अपने को कर्ता, भोक्ता इत्यादि मानता है। इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि इसी माया के द्वारा इस समग्र जगत् की कल्पना हुई है। अध्यात्मरामायण में कहा गया है कि माया की दो शक्तियां हैं।[3] ॥1॥ विक्षेप, ॥2॥ आवरण। आवरण शक्ति द्वारा यह सत्य को ठगती है और विक्षेप शक्ति द्वारा भिन्न-भिन्न आकारों में परिण होती : प्रतीत होती है। अपनी इसी विक्षेप शक्ति के कारण ही महत्तत्व से लेकर ब्रह्मा तक समस्त संसार की स्थूल और सूक्ष्म रूपों में सृष्टि करती है।[4] आवरण शक्ति सतत्व को आवृत करके जीव में असत् संसार के प्रति सत्यत्व की बुद्धि बनाए रहती है यह सम्पूर्ण विश्व रज्जु में सर्प भ्र के समान शुद्ध परमात्मा में माया - कल्पित है। जिस प्रकार रज्जु में सर्प का भाव, भ्रम के कारण होता है। उसी प्रकार शुद्ध परमात्मा में यह

---

1 यथा कृत्रिमनर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया।।
त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी।। अ0 रा0 2/9/59

2 आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनो: ।अ0 रा03/1/13

3 सैव माया तयैवासौ संसार: परिकल्प्यते
रूपे द्वे निश्चिते पूर्वं मायाया: कुलनन्दन ।।
- अ0 रा0 3/4/22 तथा 3/4/23

4 विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत्
लिङ्गाद्यब्रह्मपर्यन्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदत: ।। अ0 रा0 3/4/23

विश्व भी माया के कारण भासमान होता है।[1] देह, बुद्धि और इन्द्रियादि से युक्त सम्पूर्ण चराचर जगत् अर्थात् ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (कीट) पर्यन्त जो कुछ दिखायी या सुनायी देता है, वह सब मायाजन्य है। यही प्रकृति भी कहलाती है। यही सर्वदा, संसार रूपी वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश की कारण है, सात्त्विक, राजस और तामस प्रजा उत्पन्न करती है। यही अपने गुणों से अहर्निश सर्वव्यापक आत्मदेव को मोहित कर कामक्रोध और हिंसा, तृष्णारूपिणी कन्याओं को उत्पन्न करती है।[2] वह अपने कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व को जीवात्मा में आरोपित कर उसे अपने वशीभूत किए हुए सदा क्रीडा करती रहती है। इस माया से युक्त होकर जीवात्मा अपने वास्तविक या पारमार्थिक स्वरूप को भूला रहता है।

जिस प्रकार चुम्बक की सन्निधि से जड़ पदार्थ लोहा चलायमान हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म की दृष्टि पड़ने से ही माया सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि कर देती है।[3] अध्यात्मरामायण की सीता भी माया या प्रकृति-रूपिणी हैं। राम की सीता रूपिणीमाया रावणादि को रंगमंच पर लाती हैं। उसी के कारण रावणादि राम रूप परमतत्व का विस्मरण करके, उससे पराङ्मुख होकर नानादु:खों में पड़े रहते हैं और उस माया के हटने पर मोक्षपद को प्राप्त होते हैं।

जीव :-

'जीवति प्राणान्धारयतीति जीवः' - इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीता है, अर्थात् प्राणों को धारण करता है, वह जीव है। जीव के विषय में अध्यात्मरामायणकार के विचार ये हैं - मायोपाधि में चैतन्य का प्रति-

---

1 रज्जौ भुजङ्गवद्भ्रान्त्या विचारे नास्ति किंचन ।
श्रूयते दृश्यते यद्यत्स्मर्यते वा नरैः सदा ।। अ0 रा0 3/4/25

2 अ0 रा0 6/6/49 से 53

3 यथा चुम्बकसांनिध्याच्चलन्त्येवायसअन्दयः ।
जडास्तथा त्वया दृष्टा माया सृजति वै जगत् ।। अ0 रा0 6/14/29

विम्ब जीव है। अत: अविधानामक उपाधि में चैतन्य का प्रतिबिम्ब ही जीव है। अध्यात्मरामायण में इस प्रकार कहा है -

'अविधाजन्य देहादि संघातों में प्रतिविम्बित हुई चित् शक्ति ही लोक में जीव कहलाती हैं।[1] जीव और ब्रह्म के बीच वास्तव में कोई भेद नहीं है। क्योंकि प्रतिबिम्ब औपाधिक है, कल्पित है, वह विम्ब से अलग नहीं है। जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब, विम्ब रूप मुख से भिन्न सता नहीं रखता किन्तु उसकी पृथक प्रतीति केवल दर्पण रूप उपाधि की विद्यमानता के कारण होती है। उसी प्रकार ब्रह्म और जीव में केवल औपाधिक भेद है। अविधा रूप उपाधि के कारण ब्रह्म जीव कहलाता है। इस प्रकार परात्मा ही प्रतिबिम्ब रूप से जीवत्व को प्राप्त हुआ है। इस प्रकार अनिर्वचनीय अविधा ही इस जीव के जीवत्व का कारण है।

जिस प्रकार जलाशय में आकाश के तीन भेद दिखायी पड़ते हैं - एक महाकाश, दूसरा जलाकाश और तीसरा प्रतिबिम्बाकाश - इसी प्रकार चैतन्य भी अविधा या माया में तीन रूपों से प्रतिभासित होता है। एक तो पूर्ण चैतन्य, दूसरा बुद्धि से अविच्छिन्न चैतन्य और तीसरा बुद्धि में प्रतिबिम्बित चैतन्य अथवा चेतन का आभास।[1] लिङ्गदेह का अभिमानी यह चेतनाभास ही इस जगत् में लिप्त हुआ जीव है।[2] अहंकार, बुद्धि प च प्राण और एकादश इन्द्रिया - इनके समूह को लिङ्ग देह कहते हैं।[3] सुख, दु:खादि धर्म इसी लिङ्गदेह के हैं किन्तु जीव अहङ्कारवश इनके सुख, दु:खादि को

---

1 अविधाकृतदेहादिसङ्घाते प्रतिबिम्बिता ।
चिच्छक्तिर्जीवलोके स्मिन्‌ जीव इत्यभिधीयते।। अ० रा० 1/7/34

1.क जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभ:।। अ० रा० 1/1/45
बुद्धयवच्छिन्न चैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चिति: । अ० रा० 1/1/46

2 स एव जीवसंज्ञश्च लोके भाति जगन्मय: ।। अ० रा० 2/1/22

3 अहङ्कारश्च बुद्धिश्च प चप्राणेन्द्रियाणि च ।
लिङ्गमित्युच्यते प्राज्ञैर्जन्म मृत्युसुखादितम ।। 2/1/21

अपना समझ कर सुखी और दु:खी होता है। भ्रान्तिवश ही उसमें कर्तृव्य और जीवत्व का आरोप है। शुद्धचेतन की स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन उपाधियां कही गयी हैं। इन उपाधियों से अविच्छिन्न वह चेतन तत्व जीव कहलाता है। इनसे वियुक्त वही परमेश्वर है।[1] कभी भी सर्पभाव को न प्राप्त होने वाली रज्जु पर सर्प के आरोप के समान शरीरादि कर्मों को शुद्ध बुद्ध आत्मा में आरोपित करने से सुख, दुख की प्राप्ति समझनी चाहिये। बुद्धयादि में परिकल्पित आत्म-सम्बन्ध से ही जीव की प्रतीति होती है। शरीरेन्द्रिय में आत्मसंबन्ध से ही जीव की प्रतीति होती है। जब तक शरीरेन्द्रिय में आत्मसम्बन्ध है, तभी तक जीव का जीवत्व है। शरीरादि के कार्यों को स्वीकार कर उससे प्राप्त होने वाले विषयों का सेवन करता हुआ, रागद्वेषादि के गुणों में बंधकर जीव संसार चक्र में फंसा रहता है।[2] यह पहले मन के गुणों की सृष्टि करता है फिर नाना प्रकार के कर्म करता है। ये कर्म गुणों के अनुसार शुक्ल, कृष्ण और लोहित तीन प्रकार के होते हैं। यह जीव कर्मों के वशीभूत होकर मोक्ष होने के पहले तक आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। प्रलयकाल में सब भूतों का उपसंहार हो जाने पर भी यह वासनाओं और कर्मों के सहित अनादि अविद्या से उपहित अभिनिविष्ट बना रहता है। नवीन सृष्टि आरम्भ होते ही यह अपनी पूर्व वासनाओं से युक्त मन के सहित फिर उत्पन्न[3] अविद्या के कारण ही आत्मा में अनात्म वस्तु

---

1 अ० रा० 2/1/23, 24

2 कामान् जुषन् गुणैर्बद्ध संसारे वर्तते वश:।। अ० रा० 4/3/24

3 शुक्ललोहितकृष्णानि गतयस्तत्समानत: ।

- अ० रा० 24/3 कि०

एवं कर्मवशाज्जीवो भ्रमत्याभूतसम्प्लवम ।

- अ० रा० 4/3/24

सर्वोपसंहृतौ जीवो वासनाभि: स्वकर्मभि/।

अनाद्यविद्यावशग स्तिष्ठत्यभिनिवेशत: ।

- अ० रा० 4/3/26

को परिकल्पित करता है। जब तक अज्ञानजन्य अध्यास के कारण जीव में देह हूँ मैं कर्ता हूँ, ऐसा अभिमान करता रहता है, तब तक निरन्तर उसे विवश होकर जन्म मृत्यु आदि दुःख भोगने पड़ते हैं। [1] अहंकार से व्याप्त हुआ देही अहङ्कार के संकल्प से प्रेरित होकर संकल्प रूप बेड़ियों से बंधता है। [2] संकल्प करने से ही जीव स्वयं सदा शोक करता है। [3] इस अहंकार के सत्व रजस् और तमस् नामक उत्तम, और अधम तीन प्रकार के देह हैं। तामस संकल्प से जीव तमोगुणी योनियों को प्राप्त करता है। सात्विक संकल्प वाला होकर सुख-पूर्वक रहता है। राजस संकल्प होने से लोकक्रियाएं करता हुआ संसार में आसक्त रहता है।

जीव-ब्रह्मैक्य :-

हम कह चुके हैं कि अनादि अविद्या से उत्पन्न हुई बुद्धि में प्रतिबिम्बित चेतन का प्रकाश ही जीव है। [4] बुद्धि के साक्षी रूप में आत्मा उससे पृथक् है। किन्तु चिदाभास साक्षीआत्मा तथा बुद्धि के एकत्र रहने से परस्पर अन्योन्याध्यास होने से क्रमशः एक दूसरे की चेतना और जड़ता प्रतीत होती है। बुद्धि और आत्मा का सम्बन्ध होने से आत्माकी चेतनता बुद्धि आदि में और बुद्धि की जड़ता आत्मा में प्रतीत होने लगती है जैसे कि अग्नि

---

1 यावद्देहोऽस्मि कर्तास्मीत्यात्माहं कुरुते वशः ।
अध्यासात्तावदेव स्याज्जन्मनाशादिसम्भवः ।।
- अ० रा० 6/4/47

2 अ० रा० 7/6/42 से 45 तक

3 त्रयस्तस्याहमो देहा अधमोत्तममध्यमाः ।।
- अ० रा० 7/6/45

4 अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो, जीवः प्रकाशो यमितीर्यतेचितः ।
- अ० रा० 7/5/40

से तपे हुये लोह पिण्ड में अग्नि और उसकी उष्णता दिखाई देने लगती है। अध्यासवश बुद्धि से लेकर शरीरपर्यन्त अनात्म वस्तुओं में आत्मबुद्धि होती है।[1] वेद-वाक्यों से आत्मज्ञान का अनुभव कर, जीव उपाधिरहित आत्मा का साक्षात्कार कर ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त कर लेता है।

तत्वमसि आदि महावाक्यों के द्वारा पूर्ण चेतन के साथ जीव की एकता प्रतिपादित की जाती है। तत्वमसि में लक्ष्यार्थभूत चैतन्यैक्य इस वाक्य का बोध्य है।[2] इसका बोध होते ही अविद्या अपने कार्यों सहित नष्ट हो जाती है और केवल चैतन्य अनुभूत होता है। अविद्या उपाधि से रहित जीव परात्मा ही है।[3] ज्यों ही जीव आत्मज्ञान के द्वारा शरीरेन्द्रि-यादि से आत्म-बुद्धि हटाकर आत्मा को जान लेता है, वैसे ही उसका जीवत्व नष्ट हो जाता है। आत्म रूप बुद्धि के अतिरिक्त जीव की सता नहीं रहती। जीव-ब्रह्मैक्य का तात्पर्य है, जीव के जीवत्वापनयन द्वारा आत्मभूत

---

1 चिद्बिम्ब साक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गतस्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवद्
अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते, जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ।।

- अ० रा० 7/5/41

2. अज्ञान आदि की समष्टि, इनसे उपहित सर्वज्ञता आदि से विशिष्ट चैतन्य तथा इनसे अनुपहित चैतन्य तद् पद का वाच्यार्थ बनते हैं। इन उपाधियों से अनुपहित चैतन्य है, वह तद् पद का वाच्यार्थ बनते हैं। इन उपाधियों से अनुपहित चैतन्य है, वह तद् पद का लक्ष्यार्थ बनता है। अज्ञान आदि की व्यष्टि, इनसे उपहित अल्पज्ञता, आदि से विशिष्ट चैतन्य तथा इनसे अनुपहित चैतन्य त्वम् पद का वाच्यार्थ बनते है। इन उपाधियों से अनुपहित चैतन्य है, वह त्वम् पद का लक्ष्यार्थ बनता है।

3 देहो हमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता
नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते ।।

- अ० रा० 2/4/33

ब्रह्मत्व का साक्षात्कार कर लेना। इसलिए पारमार्थिक दृष्टि से जीव भी निर्विकार है, अद्वितीय आकाश के समान निर्लेप, नित्य, ज्ञानमय और शुद्ध है।[1] जिस समय जीव को यह ज्ञान हो जाता है कि चिदाभास के सहित बुद्धि ही कार्य की कर्त्री है, उस समय अविद्या नष्ट हो जाती है। बुद्धि तो जड़ है चेतन के आभास से ही उसमें कर्तृत्व आता है। बुद्धि में प्रतिबिम्बित यह चेतन का आभास मिथ्या है क्योंकि सभी आभास मिथ्या होते हैं।[2] आभास की सता तो उस वस्तु के कारण है जिसमें यह चेतनतत्व प्रतिबिम्बित है। उसके (उपाधि) विनाश के साथ प्रतिबिम्ब का विनाश हो जाता है। चिरन्तन सत्य तो केवल बिम्ब मात्र अर्थात् चेतनतत्व मात्र रहता है। ब्रह्म ज्ञान होते ही यह बुद्धि अपने कार्यों (बुद्ध्यादि) के सहित विनष्ट हो जाती है, मृषा चिदाभास भी उपाधिरूप बुद्धि के विनष्ट होते ही नष्ट हो जाता है, उस समय एकमात्र चैतन्य या परात्मा ही शेष रहता है। उस समय वह आत्मा को देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, और अहङ्कारादि से पृथक् जानकर मुक्त हो जाता है।[3] जिस प्रकार समुद्र में जल, दूध में दूध, महाकाश में घटाकाशादि और वायु में वायु मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार उपाधियों के विनष्ट होते ही जीव ब्रह्म के साथ अभिन्न रूप से स्थित हो जाता है।[4] यह सम्पूर्ण प्रपंच माया के द्वारा परात्मा में परिकल्पित है। जीव ब्रह्म में अविद्या से

---

1 एक एवाद्वितीयो यमाकाशवदलेपक: ।
नित्यो ज्ञानमय: शुद्ध: स कथं शोकमर्हति ।।
— अ० रा० 4/3/16

2 आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते।। अ० रा० 1/1/48

3 अ० रा० 6/6/56

4 आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं।
भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ।।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पय: ।
क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथानिल: ।।
— 7/5/56

कल्पित भेद है। अहं ब्रह्मास्मि के द्वारा ब्रह्माकारा-वृत्ति, जिसे विद्या कहा जाता है, उसी से अविद्या की निवृत्ति होती है। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति [1] क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे[2] आदि वाक्यों के द्वारा प्रमाणित है कि ब्रह्मज्ञान होते ही अविद्या अपने कार्यों सहित विनष्ट हो जाती है और जीव मुक्त हो जाता है।

जिस प्रकार सर्प की केंचुली बांबी के ऊपर मृत और सर्प द्वारा परित्यक्त हुई पड़ी रहती है। उसी प्रकार जिसने अभिमान त्याग दिया है, उसका शरीर पड़ा रहता है।[3] ब्रह्म और जीव इन दो तत्वों का विचार करने से यह निश्चित हो गया है कि ब्रह्म और आत्मा एक ही तत्व के दो नाम हैं। यही तत्व अपने शुद्ध, मुक्त, बुद्ध रूप में परात्मा, या परमात्मा, ब्रह्म परब्रह्म और अध्यात्मरामायण की भाषा में राम कहा गया है और अविद्योपाधि से अविच्छिन्न होने पर जीव कहा जाता है। यह अविद्या कोई वास्तविक पदार्थ नहीं है इसलिये एतत्कर्तृक भेद भी सर्वथा अवास्तविक है। इसलिये परमात्मा और जीवात्मा अभिन्न हैं। अविद्या या माया जन्य अशेष जगत प्रप च भी माया के अवास्तविक होने के कारण सर्वथा अवास्तविक एवम् प्रतीतिक मात्र है। अत: यह समस्त जगत् आत्मतत्व मात्र का विलास है।

<u>सृष्टि</u> :-

परमतत्व राम अर्थात् ब्रह्म, आत्मा, जीव, आदि के स्वरूप का विवेचन करने के पश्चात् अविद्याकृत सृष्टि के वर्णन के सम्बन्ध में भी अध्यात्मरामायण के विचारों का समीक्षण करना आवश्यक है। यद्यपि यह सृष्टि

---

1 मुण्डकोप0 3/2/29 2 मुण्डकोप0 2/2/8

3 अशरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशत: - छान्दो0 8/12/1

तद्यथा हि निर्ल्वयिनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीतैवमेवेदं शरीरं शेतेऽथायमशरीरो मृत: प्राणो ब्रह्मैव तेज एव ।।

- वृहदा0 4/4/7

प्रातीतिक एवं मायिक ही है। फिर भी कार्य रूप में इसकी प्रक्रिया जाननी ही चाहिए। सृष्टि के आरम्भ में निर्विकल्पक, अनुपाधिक राम मात्र थे। उनकी ही आश्रित और उन्हीं को विषय करने वाली माया शक्ति से ही इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। मायोपाधि से उपहित चैतन्य (ईश्वर) अर्थात् राम के द्वारा क्षुभित होने पर इसी माया शक्ति से महतत्व उत्पन्न हुआ है और महत्तत्व से अहड्0कार प्रकट हुआ है।[2] महतत्व से संवृत अहड्0कार तीन प्रकार का हुआ है - सात्विक, राजस, और तामस ।[3]

अविद्या में प्रतिफलित जीवों के भोग के लिए (तमः प्रधान) (प्रकृति से) तामस, अहड्0कार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच सूक्ष्म तन्मात्रायें हुई और इन सूक्ष्म तन्मात्राओं से क्रमशः इनके गुणानुसार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पांच महाभूत हुये।[4] राजस अहड्0कार से दस इन्द्रियां और सात्विक अहड्0कार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता मन की उत्पत्ति हुई और इन सबसे मिलकर समष्टि सूक्ष्म - शरीर रूप हिरण्यगर्भ हुआ जिसका दूसरा नाम सूत्रात्मा भी है।[5] पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच

---

1 सृष्टेः प्रागेक एवासीर्निर्विकल्पो नुपाधिकः । अ0 रा0 3/3/20

2 त्वया संक्षोभ्यमाणा सा महतत्वं प्रसूयते। अ0 रा0 3/3/23
महतत्वादहड्0कारस्त्वया सञ्चोदिताभूत।। अ0 रा0 3/3/23

3 अहड्0कारो महतत्वसंवृतस्त्रिविधो भवत ।
सात्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भण्यते।।
- अ0 रा0 3/3/24

4 तामसात्सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन् भतान्यतः परम् ।
स्थूलानि क्रमशो राम क्रमोत्तरगुणानि हि ।। 3/3/25

5 तेभ्यो भवत्सूत्ररूपं लिड्0ग सर्वगतं महत् ।
अ0 रा0 3/3/26

कर्मेन्द्रिय, पांच प्राणों मन तथा बुद्धि से मिलकर सूक्ष्म शरीर बनता है जिसे लिङ्ग शरीर कहते हैं। अज्ञानाकृत चित जब इस लिङ्ग शरीर के साथ अहं का अध्यास करता है, तब उसकी संज्ञा तेजस होती है और जब ईश्वर लिङ्ग शरीर में अभिमान करता है तब वह हिरण्यगर्भ कहलाता है। इन दोनों में अन्तर दृष्टिमात्रक है, वह यह है कि तेजस व्यष्टि है और हिरण्यगर्भ समष्टि है। ग्रन्थ में इसके लिये लिङ्ग सर्वगतं कहा है।

स्थूलभूत समूह से विराट् उत्पन्न हुआ तथा विराट[1] पुरूष से यह सम्पूर्ण स्थावर जंगम संसार प्रकट हुआ।[2] अपने मायिक गुणों के भेद से ईश्वर, रजोगुण द्वारा जगत्कर्ता ब्रह्मा सत्वगुण द्वारा जगत् की रक्षा करने वाले विष्णु और तमोगुण से उसका लय करने वाले भगवान रूद्र हुये।[3] बुद्धि के सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों से ही प्राणी की जाग्रत् , स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें होती हैं।[4] इस प्रकार से सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन अध्यात्मरामायण में हुआ है।

विभिन्नताओं से भरे संसार की उत्पति ईश्वर की इच्छा से होती है। जिस प्रकार बालक अपने विनोदार्थ खिलौने बनाता है, उसी प्रकार ईश्वर लीलावश सृष्टि की रचना कर देता है। किन्तु यह सृष्टि जब ईश्वराधी

---

1 स्थूलेण्डकोशे देहे ते महदादिभिरावृते ।
सप्तभिस्त्तरगुणे वैराजो धारणाश्रय: । अ0 रा0 3/9/35

2 ततो विराट् समुत्पन्न: स्थूलाद् भूतकदम्बकात् ।
विराज: पुरूषात्सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।।
- अ0 रा0 3/3/27

3 अ0 रा0 3/3/29

4 जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या वृत्तयो बुद्धिजैर्गुणै :
- अ0 रा0 3/3/30

है तो प्रश्न उठता है कि इसमें वैषम्य क्यों हैं [1] कोई दु:ख पाता है और कोई सुख, उसके लिए कहा गया है कि ईश्वर इस सृष्टि का मेघ के समान व्रीहि आदि के लिए कारण है।[2] अर्थात् जैसे मेघ तो समस्त बीजों के लिये एक सा कारण होता है किन्तु बीज के अनुसार ही वृक्ष होता है, उसी प्रकार ईश्वर भी इस सृष्टि का कारण है। जीव अपने कर्मानुसार भोग करता है। ईश्वर-कृत सृष्टि को धर्माधर्मसापेक्ष कहा गया है।[3] सृष्टि अनादि है। अत: धर्म-अधर्म भी अनादि हैं।[4] अपने पूर्वकृत कर्म ही जीव के सुख अथवा दु:ख के कारण होते हैं।[5] अपने पूर्व- स चित् धर्माधर्म कर्मों के अनुसार मनुष्य-शरीर पाप और पुण्य के मेल से उत्पन्न होता है। पूर्व-जन्म के कर्मों के अनुसार यह जन्म होता है और इस जन्म के कर्मों के अनुसार ही जीव का दूसरा जन्म होता है। इस प्रकार जीव कर्मों के वशीभूत होकर प्रलय-पर्यन्त आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है।[6] धर्माधर्म के अनुसार ही वह सुखदु:खादि को भोगता है। अत: सृष्टि का वैषम्य ईश्वर का अन्याय नहीं है।

जगत् में वृक्ष, नदी, पर्वत, पक्षी, मनुष्यादि की विविधता दृष्टिगोचर होती है। इन सबमें एक ही वस्तु की सत्ता है। यह जगत् नाम-रूप

---

1 शाङ्करभाष्य 4/1/34 । भामती, पृ0 164

2 वही

3 वही

4 वही

5 क: कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतु: सुखस्य वा।
स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदु:खयो: ।।

— अ0 रा0 2/6/5

6 शुक्ललोहितकृष्णानि गतयस्तत्समानत: ,
एवं कर्मवशाज्जीवो भ्रमत्याभूतसम्प्लवम् ।।

से भिन्न होते हुए भी सत् से न तो भिन्न है और न स्वतन्त्र । अध्यात्मरामायण में इसी तथ्य को इस प्रकार कहा गया है - हे प्रभो । वाच्य-वाचक भेद से आप ही सम्पूर्ण जगत्रूप हैं।[1] अर्थ अपने शब्द से भिन्न सत्ता रखते हुए भी भिन्न नहीं होता, उसी से उद्भूत होता है, उसी प्रकार यह जगत् ईश्वर की अभिव्यक्ति मात्र है - ग्रन्थ में कहा गया है - जगतामादिभूतस्त्वं जगत्त्वं जगदाश्रय:[2] ईश्वर जगत्रूप होकर भी उससे परे है।[3] जिस प्रकार घटादि मृत्तिका के विकार हैं, उसी प्रकार ब्रह्म सत् है, जगत् उसका विकार है। जिस प्रकार शराव, घटादि भिन्न भिन्न आकार वाले हैं किन्तु मृत्तिका से भिन्न उनकी सत्ता नहीं है। पारमार्थिक सत मृत्तिका ही है। उसी प्रकार जगत् वैचित्र्य ब्रह्म से भिन्न नहीं, पारमार्थिक सत् ब्रह्म ही है। यदि कहा जाय कि ब्रह्मतो निर्विकार है, उसमें यह विकार कहां से आया। तो विकार का दर्शन अविद्या के कारण है। अविद्या अथवा अध्यास के द्वारा जहां जो वस्तु नहीं है उसके होने की बुद्धि होती है। रज्जु में सर्प का, सूर्य-रश्मियों में जल का अवभासित होना ही अध्यास है।

<u>मोक्ष</u> :-

मोक्ष का स्वरूप - अविद्या के कारण जो अध्यास या भ्रम आत्मा को अनात्म रूप में प्रकट करता है, उसका विगलन या दूरीकरण हो जाना ही मोक्ष है। जब तक अविद्या में फंसा हुआ जीव अपने को कर्ता समझता रहता है, तब तक वह संसारी बना रहता है और दु:खों से व्याप्त रहता है।

---

1 वाच्यवाचक भेदेन भवानेव जगन्मय: ।

- अ0 रा0 1/5/53

2 अ0 रा0 1/5/52

3 सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान्पर: । 1/5/52

दु:खों का नितान्त अभावरूप मोक्ष सबसे बड़ा पुरूषार्थ है। यह नित्य है और सब विक्रियाओं से रहित है, क्योंकि श्रुति में इसे अन्यत्रधर्मादिन्यत्राधर्मादिन्यत्र स्मात्कृताकृतात् अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च कहती है।

ब्रह्म ज्ञान मात्र को मोक्ष का साधन श्रुतियां बताती हैं। इसके लिए कर्मों के पूर्ण उच्छेद का उपदेश करती हैं। ब्रह्म और आत्मा के ऐक्य-ज्ञान के पश्चात् कुछ भी करणीय नहीं। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।[1] नविभेति कुतश्चन[2] अभयं वै जनक प्राप्तोसि तथा तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति आदि।

अविद्या-कल्पित भेद की निवृति हो जाने पर आत्मा ब्रह्म हो जाता है। संसारी भाव के निवर्तित हो जाने पर नित्यमुक्त आत्मा का स्वरूप प्रकट हो जाता है। मोक्ष, अतिशय, अनाधेय ब्रह्म का स्वरूप ही है।

अब विचारणीय है है कि अध्यात्मरामायण में मोक्ष के विषय में लेखक के क्या विचार है मोक्ष का स्वरूप क्या है किस प्रकार का मोक्ष लेखक को अभिप्रेत है उसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं अध्यात्मरामायण में कहा गया है [4] - आत्मज्ञान अथवा ब्रह्म ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यह ज्ञान तत्वमसि आदि वाक्यों के द्वारा पूर्ण चेतन के साथ एकता का ज्ञान उत्पन्न होना ही है। साभास अहंरूप अवच्छिन्न चेतन का पूर्ण चेतन केसाथ ऐक्य ज्ञान उत्पन्न होते ही अविद्या अपने कार्यों सहित नष्ट हो जाती है। इसके पश्चात् कुछ भी करणीय नहीं, क्योंकि अविद्या के कारण ही आत्मा अपने को कर्ता भोक्ता समझ कर जीव - भाव को प्राप्त होता है। विद्या विरोधिनी, अविद्या के नष्ट होते ही आत्मा अपने स्वरूप को पहचान

---

1 मु० 3/2/9

2 तैति० 2/9

3 बृहदा० 4/2/4

4 विशुद्धतत्वानुभवो भवेतत: ।
सम्यग्विदित्वाथ परं पदंव्रजेत् ।। अ० रा० 5/4/22

लेता है। यह आत्मज्ञान ही मोक्ष है।[1]

यदि कहा जाय कि आत्मा तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध एवं जन्म-मरणादि अवस्था से रहित है। फिर मुक्त आत्मा को मोक्ष की क्या आवश्यकता चेतन आत्मा में जड़ता किस प्रकार आ सकती है इसके लिये ग्रन्थ में कहा गया है कि[2] जड बुद्धि से संयोग होने पर ही चेतन आत्मा में कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि उसी प्रकार जड़ता प्रकट हो जाती है जिस प्रकार अग्नि में शीतलता आ जाती है, यद्यपि वे उनके गुण नहीं है।

आत्मा, देह, इन्द्रिय, प्राण और शरीर से युक्त है - यह समझना ही बन्धन का कारण है।[3] स्थूल, सूक्ष्म प्रत्येक शरीर आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसका वास्तविक स्वरूप आवृत किये हुये है। अत: इनकोआत्मा का कोश कहते हैं। पांचो कोश अध्यास द्वारा अपने को आत्मा रूप में प्रदर्शित करते हैं। जब आत्मा इन पांचों कोशों से अलग करके अपने को आत्म रूप में समझ लेता है। तभी वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।[4] सर्प के भ्रमवाली रज्जु में वास्तविकता का भान होने पर जिस प्रकार सर्प का अस्तित्व दूर हो जाता है, उसी प्रकार इन कोशों का भी कहीं अस्तित्व नहीं रह जाता।

---

1 अ0 रा0 3/4/42, 43, 44

2 चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गतस्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवद् ।
अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयतेजडाजडात्वं च चिदात्मचेतसो।।

— अ0 रा0 7/5/41

3 देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गतस्त्वात्मेतिबुद्ध्वा रिवलबन्धभाग्भवेत।।

— अ0 रा0 5/4/18

4 आत्मा चिदानन्दमयो विकारवान्देहादि सङ्घाद्व्यतिरिक्तईश्वर:।

— अ0 रा0 5/4/20

निरञ्जनो मुक्तउपाधिभि: सदा ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते ।

— अ0 रा0 5/4/21

ग्रन्थ में कहा गया है कि [1] जिस समय आचार्य और शास्त्र के उपदेश से जीवात्मा और परमात्मा की एकता का पूर्ण बोध होता है उसी समय मूला अविधा अपने कार्य [शरीरादि] तथा इन्द्रियों के सहित परमात्मा में लीन हो जाती है।[2] अविद्या की यह लयावस्था ही मोक्ष है।[3] अध्यात्म-रामायण के मोक्ष को आगन्तुक नहीं कहा गया है। आत्मा[4] में मोक्ष का कथन केवल उपचारत: है। आत्मा की मुक्तावस्था आगन्तुक नहीं है, क्योंकि वह तो सदा ही मुक्त है।

मुक्ति :-

हम देखते हैं कि अध्यात्मरामायण के लेखक पर शङ्कराचार्य के अद्वैत और बहुत अंशों में विशिष्टाद्वैत का प्रभाव स्पष्ट रूप से रहा है। साथ ही निर्गुण और सगुण में लेखक ने सामंजस्य करने का पूर्ण एवं व्यावहारिक प्रयत्न किया है। भक्ति के क्षेत्र में गीता और श्रीमदभागवत से प्रभावित लेखक शङ्कर के ज्ञान-मार्ग की निष्ठा से ओतप्रोत है। इसलिए दोनों भक्ति और ज्ञान की धाराओं को लेकर उसने समन्वित मार्ग का अनुसन्धान किया है। सद्यो मुक्ति के साथ सायुज्य, सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियों का भी दर्शन ग्रन्थ में होता है।

---

1 आचार्यशास्त्रोपदेशादैक्यज्ञानं यदा भवेत् ।।

— अ० रा० 3/4/42

2 आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव हि ।
लीयतेकार्यकरणै : सदैव परमात्मनि ।।

— अ० रा० 3/4/43

3 अ० रा० 3/4/43, 44

4 सावस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्युपचारतो पमात्मनि ।।

— अ० रा० 3/4/44

सद्यो-मुक्ति — निर्गुण ब्रह्म के उपासक को प्राप्त होती है। यह दो प्रकार की है -

1. जीवन्मुक्ति,
2. विदेह मुक्ति ।

1. जीवन्मुक्ति के लिए देह त्याग की आवश्यकता नहीं। निर्गुण तत्व की भक्ति से ब्रह्मात्मैक्यज्ञान हो जाने पर स्थूल देह रहने पर भी मुक्ति हो जाती है। जैसे ही मिथ्या ज्ञान समाप्त हुआ और अहं-ब्रह्मास्मि का बोध हुआ वैसे ही बुद्धि अद्वैत में स्थिर हो जाती है और वह पुरूष जीवन्मुक्त कहाने लगता है। उसे फिर संसार का मोह कभी पीड़ित नहीं करता। जिस प्रकार एकबार यह ज्ञात होने पर कि रज्जु सर्प नहीं है उस सर्प का भय पीड़ा नहीं देता उसी प्रकार एक बार अनुभव हो जाने पर कि संसार अध्यास है - इस संसार की अनुरक्ति सर्वदा के लिये दूर हो जाती है। अतः अन्य पुरूषों के लिये जो संसार है मुक्त पुरूष के लिये देहादि के रहते हुए भी अस्तित्वहीन है।

ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है - जिस प्रकार गाढ़ निद्रा में सोए हुए पुरूष को अहङ्कार का अभाव हो जाने पर प्रप च की प्रतीति नहीं होती उसी प्रकार अहङ्कारहीन मुक्त पुरूष को जीते हुए प्रप च का भान नहीं होता।[1] उसके लिये न आत्मा का अनेकत्व है और न उससे अन्य किसी वस्तु की तात्त्विक सता। केवल एक वस्तु सत् है, वह हैं राम या आत्मतत्व। इस अवस्था में स्थित होने पर जीवात्मा कर्म और माया दोनों से मुक्त हो जाता है और यह मुक्त अवस्था ही पूर्ण मुक्ति है।

---

1 प्रसुप्तस्यानहम्भावात्तदा भाति न संसृतिः।
जीवतो ऽपि तथा तद्वन्मुक्तस्यानहङ्कृतेः ।।
- अ0 रा0 6/12/19

विदेह मुक्ति :-

विदेह मुक्ति में आत्मज्ञान हो जाने पर भी जीव कर्मफल को भोगता हुआ मृत्युपर्यन्त अनासक्त होकर रहता है। कर्म-विनाश के पश्चात् संकल्पजाल क्षीण हो जाने पर तथा शरीरपात हो जाने पर मुक्तात्मा ब्रह्म में लीन हो जाता है।[1]

जीवनमुक्ति तथा विदेहमुक्ति के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में, विष्णु-लोक, ब्रह्मलोक इत्यादि प्राप्ति को भी मोक्ष कहा गया है। और इस मोक्ष के साधन रूप में ईश्वर की उपासना या भक्ति का उपदेश किया गया है। इसके अन्तर्गत पूजा, अर्चन, नाम-जप तथा भगवान् के स्वरूपों का चिन्तन करना आदि आते हैं। इस सगुण-भक्ति से ही परम-धाम और विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। रामभक्ति और उसकी कृपा के द्वारा उनके भक्त इस ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। ऋषि सुतीक्ष्ण को, शापित कबन्ध को, राम यही परमधाम प्रदान करते हैं।[2] जटायु को भी यही परमधाम अर्थात् विष्णु-लोक मिलता है।[3]

इस सगुण-भक्ति के द्वारा प्रसन्न होकर राम कृपा-स्वरूप मुक्ति प्रदान करते हैं। इस क्रम में चार प्रकार की मुक्तियों का वर्णन अध्यात्मरामायण

---

1 निःसङ्कल्पो यथाप्राप्त व्यवहारपरो भव।
क्षयेसंकल्पजालस्य जीवो ब्रह्मत्व माप्नुयात्।।
- अ० रा० 7/7/55

2 तुष्टोऽहं देवगन्धर्व भक्त्या स्तुत्या च तेऽनघ।
याहि मे परमं स्थानं योगिगम्यं सनातनम् ।।
- अ० रा० 3/9/55

3 उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ।
- अ० रा० 3/8/54

में मिलता है, ये हैं - सायुज्य, सालोक्य, सार्ष्टि और सामीप्य। ये मुक्तियाँ ईश्वर की उपासना करने से, सेवा करने कथा श्रवणादि से तथा स्तोत्र पठनादि से प्राप्त होती हैं -

जटायु के प्रसङ्ग में सारूप्य-मुक्ति का वर्णन है। [1] उतरकाण्ड में भी इसका वर्णन है। ऋषि सुतीक्ष्ण इत्यादि सायुज्य पद की प्राप्ति करते हैं।[2] जटायु को भी सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।[3] उतरकाण्ड में इन मुक्तियों का वर्णन हुआ है।[4]

निष्कर्ष :-

अध्यात्मरामायण न तो दर्शन शास्त्र का कोई ग्रन्थ है और न दार्शनिक सिद्धान्तों का कोई सङ्कलन, इसलिये दार्शनिक मतवादों का क्रमबद्ध विवेचन तथा समस्त दार्शनिक समस्याओं का संश्लिष्ट निराकरण इसमें सम्भव नहीं है। ग्रन्थकार का प्रकट उद्देश्य भी किसी दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना नहीं है। इस ग्रन्थ में हमें ज्ञानसिन्धु की उतालतरंगों की अनुपम छटा देखने को नहीं मिलती। इसमें जन-मानस-प्लावनकारिणी भक्ति की ऐसी मन्दाकिनी बहायी गयी है जिसका पर्यवसान ज्ञान सिन्धु में है। इसलिए ज्ञान के जिन आवश्यक तत्वों का इस रामकथा में समन्वय हो पाया है उनके आधार पर जिस दार्शनिक भिति का निर्माण होता है वह निश्चय ही अद्वैत-वेदान्त कही

---

1 श्रृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत् ।
स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत्।। अ० रा० 3/8/55

2 मत्सारूप्यं भजस्वाद्य सर्वलोकस्य पश्यतः ।। - 3/8/40

2 अ० रा० - देहान्ते मम सायुज्यं लप्स्यसे नात्रसंशयः ।।
- अ० रा० 3/3/39

3 रामेण दग्धो रामस्य सायुज्यमगमत्क्षणात् । - अ० रा० 5/7/41

4 अहेतुक्यव्यवहिता या भक्तिर्मयि जायते। 7/7/65
सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा। 7/7/66

जा सकती है। यह अद्वैत वेदान्त भगवान् शङ्करप्रतिपादित अद्वैत वेदान्त ही है। शङ्कर के अद्वय सच्चिदानन्द ब्रह्म ही इस कथा के नायक राम हैं। राम उसी प्रकार निर्गुण हैं, निराकार हैं, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, समस्त जीव, जगत् की जन्मस्थिति और लय के कारण हैं, शुद्ध चेतन हैं, सर्वव्यापक एवं सर्वातीत हैं। समस्त जीव और समस्त जगत् उन राम की माया के कारण ही स्थित एवं नाना रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं। आवरण और विक्षेप रूपोंवाली यह माया व्यष्टि रूप में प्रत्येक जीव की अविद्या है। जीव राम-तत्व से भिन्न नहीं है। इस अनिर्वचनीय अविद्या के फलस्वरूप वे तद्भिन्न प्रतीत होते हैं। चिद् अचिद् समस्त अर्थात् चेतन और जड़मयी यह सकल सृष्टि राम की माया अर्थात् इस ग्रन्थ की नायिका सीता की ही कृति है। वह मूल-प्रकृति है। समस्त जगत् इस प्रकार से रामतत्व में विवर्तित मात्र होता है। वस्तुत: उसकी निरपेक्ष कोई सता नहीं है। जीव की सारी क्रियायें तद्गत अविद्या के कारण हैं। इस माया का आधार और विषय यह अखण्ड-निर्गुण तत्व राम ही हैं।

जीवन तो राम के अंश हैं और न राम से अलग उनकी कोई सता है। वैसे ही सारे जड़ पदार्थ भी न तो उस परमतत्व के शरीर हैं और न परमाणु पुंज, न राम से अलग उनकी सता है, इसलिये यह ग्रन्थ अपनी तत्व-मीमांसा विषयक मान्यताओं में न तो विशिष्टाद्वैत से प्रभावित है और न द्वैताद्वैत इत्यादि मतो से ही। द्वैतवादियों के प्रभाव की तो आशङ्का ही नहीं की जासकती। जीवन के परमलक्ष्यभूत मुक्ति के सम्बन्ध की मान्यताओं में भी यह ग्रन्थ सुस्पष्टत: शाङ्कर वेदान्त की प्रतिध्वनि मात्र है। जीवन-मुक्ति, क्रम मुक्ति और विदेह मुक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों में शाङ्कर मतवाद से सर्वाङ्गीण समानता है। इस ग्रन्थ के द्वारा प्रतिपादित मुक्त-जीव ब्रह्म ही हो जाता है। ब्रह्म का किंकर या दास या सेवक अथवा विशिष्ट जीव नहीं बनता। मुक्तात्मा का कोई शरीर नहीं होता। हाँ, क्रम-मुक्ति जो वास्तविक मुक्ति नहीं है प्रत्युत मुक्त रूपी वास्तविक गन्तव्य के मार्ग का एक सम्भव पड़ाव मात्र है। उसमें भले ही जीव अपने उपास्य राम के सगुणस्वरूप

का होकर सायुज्य सारूप्य आदि के रूप की क्रम मुक्ति का अनुभव करता रहे किन्तु यह मोक्ष का वास्तविक स्वरूप नहीं है। अध्यात्मरामायण में के अनुसार समस्त संकल्प जाल के क्षय हो जाने पर जीव ब्रह्म हो जाता है।[2] वह सामीप्य, सालोक्य सार्ष्टि, सायुज्य मोक्ष को नहीं प्राप्त करता। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मोक्ष के सम्बन्ध में यह धारणा शाङ्करकर वेदान्त की ही धारणा है। अध्यात्मरामायण में स्थूल जगत् की सृष्टि में पंचीकरण-प्रक्रिया को स्वीकार किया गया है।

इस जगत् की प्रतीति केवल अज्ञान के कारण अध्यासवश ही होती है। जैसे असर्पभूत रज्जु में सर्प का अध्यास होता है। वैसे ही चिदात्मक ईश्वर में जगत् अध्यस्त प्रतीत होता है।[3] जीव भी अनादि अविद्या-जन्य बुद्धि में प्रतिबिम्बित आत्मा ही है तद्भिन्न[4] कुछ नहीं। अनादि अनिर्वचनीय माया की भिन्न भिन्न उपाधियों के कारण नाना पदार्थों की प्रतीति होती है। आत्मा ही एकमात्र तत्व है जो न घटता है, न बढ़ता है, न उत्पन्न होता है, न मरता है, वह निरस्त, सर्वातिशय है, ज्ञानरूप है, आनन्दघन है, सर्वगत एवं स्वयंप्रकाश है, सर्वथा अद्वय तत्त्व है।[5] जीव ब्रह्मैक्य ज्ञान ही मोक्ष का एकमात्र उपाय है। क्योंकि तभी माया अपने समस्त कार्यों सहित विलुप्त हो जाती है। यही पुरुष का वास्तविक मोक्ष है। फिर कभी यह

---

1 आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं भवत्यभेदने मयात्मना तदा। 7/5/56

2 क्षयेसंकल्पजालस्य जीवोब्रह्मत्माप्नुयात् । - अ0 रा0 7/7/55

3 सर्वविधे ज्ञानमये सुखात्मके
कथं भवो दु:खमय: प्रतीयते
अज्ञानतो ध्यासवशात्प्रकाशते,
ज्ञाने विलीयेत विरोधत: क्षणात्।।
- अ0 रा0 7/5/36

4 असर्पभूते हिविभावनं यथा
रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत्। - अ0 रा0 7/5/37

5 अ0 रा0 7/5/40

माया उस जीव को प्रभावित नहीं करती। यह अनादि है, अनन्त नहीं। आत्म-ज्ञान या आत्म-बोध रूपी विद्या या ज्ञान ही स्वतंत्र रूप में मोक्ष मार्ग है - तस्मात् स्वतंत्रा न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभाति केवला[1] और ज्ञानं विमोक्षम न कर्म साधनम्[2] (कर्म क्रतु) इत्यादि रूप के मोक्ष नहीं दे सकते, इसलिये वे ज्ञान के समान नहीं है। इसलिये कर्म और ज्ञान का समुच्चय मानना सर्वथा अनुचित एवं अनुपपन्न है।[3] आत्मानुसंधानपरायण सदा निवृतसर्वे-न्द्रिय वृति गोचर: अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति श्रुतिप्रमाणगम्य तत्वं पदार्थ-शोनधम्[4] - के द्वारा उपपन्न होती है और इस ज्ञान साधना का चरमोत्कर्ष सो हं परब्रह्म, सदा विमुक्तिमत, विज्ञानदृइ0 , उपाधितो मल: रूप की भावना में होता है।

भक्ति, ज्ञान-मार्ग की विरोधिनी नहीं है प्रत्युत बुद्धिनैर्मल्यकारिणी होने के कारण उसकी सहायिका और ज्ञान-मार्ग की सीढ़ी है। इस भक्ति मार्ग में भी निर्गुण भक्ति श्रेष्ठ है। जो निर्गुण भक्ति न कर सके उनके लिये सगुण-भक्ति श्रेxxहैx का विधान है। इस निर्गुण भक्ति का भी पर्यवसान आत्म ब्रह्मैक्य में ही है। तावन्मामर्च्चयेदेवं प्रतिमादौ स्वकर्मभि: यावत्सर्वेषु, भूतेषु स्थितमचात्मनि न स्मरेत्। यस्तु भेद प्रकुरूते, स्वात्मनस्य परस्य च। भिन्न-दृष्टेंभयन्मृन्युर्तस्यकुर्यान्निसंशय: तस्मात् कदाचिन्नेक्षेत भेदमीश्वरजीवयो:, भक्ति-योगो ज्ञानयोगो मया मातरूदीरत: । इस प्रकार यह भक्तियोग, ज्ञानयोग में

---

1 अ0 रा0 7/5/20 2 अ0 रा0 7/5/21

3 तस्मात्यजेत्कार्यमशेषत: सुधी र्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत् ।
आत्मानुसन्धानपरायण: सदा, निवृतसर्वेन्द्रियवृति गोचर: ।।
- अ0 रा0 7/5/16

4 एवं सदा जातपरात्मभावन:
स्वानन्दतुष्ट: परिविस्मृताखिल: ।
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशक:
साक्षाद्विमुक्तो चलवारिसिन्धुवद् ।।
- अ0 रा0 7/5/52

ही पर्यवसित होता है। इसलिये अध्यात्मरामायण की निर्गुण भक्ति गड़्Oगा सर्वात्मिक ज्ञान-सिन्धु में आत्मसमर्पण करके ही कृत्कृत्य होती है। इस प्रकार यह ग्रन्थ दार्शनिक मतवाद की दृष्टि से शाड़्Oकर वेदान्त से बहुत अधिक प्रभावित मात्र है। यहकहना बहुत ठीक नहीं। वास्तविकता यह है जैसा कि इस समूचे आलोडन-विलोडन से सुस्पष्ट है कि यह ग्रन्थ शाड़्Oकर वेदान्त की रामगाथा के मन्दिर में अविकल प्रतिध्वनि है। रामगाथा के चौखटे में आबद्ध शाड़्Oकर वेदान्त की सच्ची प्रतिकृति है। ग्रन्थ कार अपने इस शाड़्Oकर वेदान्त प्रचाररूपी पवित्रतम उद्धदेश्य को बड़ी विनम्रता से उतर काण्ड के पांचवें सर्ग के 62 वें श्लोक में इस प्रकार प्रकट करते हैं -

विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं वेदान्तवेद्यचरणेनमयैवगीतम् ।
यः श्रद्धया परिपठेद्ध गुरूभक्तियुक्तो, मद्रूपमेति यदिमद्धवचनेषु भक्तिः।

ग्रन्थ में यत्रकुत्रचित् दृश्यमान् विष्णु-लक्ष्मी श्वेतद्वीप इत्यादि पदों के आधार पर अथवा निर्गुणतत्व के अवतार इत्यादि की कल्पना के कारण ग्रन्थ के दार्शनिक अभिप्राय पर विशिष्टाद्वैत इत्यादि दर्शनों का प्रभाव स्वीकार करना ठीक उतनी ही बड़ी भ्रान्ति है जैसे विशाल समुद्र को जहाज इत्यादि पर बैठे मनुष्यों से युक्त होने के कारण ग्राम, नगर इत्यादि की भूमि मानना या आम्रवनों के बीच में पड़ी हुई किसी वृक्षान्तर की पक्षियां देखकर उस आम्रवन को तदितर वृक्षों का वन समझ लेना। सच तो यह है कि शाड़्Oकर वेदान्त के ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि नामों या लक्ष्मी, सीता, श्वेतद्वीप ﴾बैकुण्ठ﴿ इत्यादि पदों का कोई बहिष्कार नहीं है। इन सब स्थलों और इन सब देवताओं की अमान्यता शाड़्Oकर वेदान्त का कहीं भी आशय नहीं। शाड़्Oकर वेदान्त तो केवल यह कहता है कि यह समस्त प्रतीयमान जगत् ब्रह्मा से लेकर तृणविशेष पर्यन्त केवल सापेक्ष सतावान है, प्रतीयमान है, अध्यस्तमात्र है, अन्तिम सत्य अद्वय आत्मा ही है जो जीवात्मा से सर्वथा अभिन्न है। इस बात का विरोध मुझे इस ग्रन्थ के अनेकशः अनुशीलन करने पर कहीं नहीं

दीख पड़ा। रही बात शाङ्0कर वेदान्त में ईश्वरतत्व के अवतार की तो जैसा कि मैंने पहले कई बार निर्देश किया है कि शाङ्0कर मतवाद में ईश्वर के अवतारों की मान्यता का न केवल खण्डन ही किया गया बल्कि उसकी संभावना भी शङ्0कराचार्य ने अपने गीताभाष्य और शारीरिक भाष्य में निर्भ्रान्त रूप से प्रकट की है।

अध्यात्मरामायण के दार्शनिक सिद्धान्तों का आकलन करते समय एक कमी अवश्य खटकती है कि सिद्धान्तों का प्रतिपादन सर्वत्र इस ग्रन्थ में बिना कोई उत्पत्ति या हेतु प्रस्तुत किये ही किया गया है। किन्तु जैसा कि मैंने पहले ही निवेदित कर दिया है कि इस ग्रन्थ का लक्ष्य दार्शनिक समस्याओं को सिद्ध करना या विरोधी मतवादों को असिद्ध करना नहीं है यह तो समान्य जनों में भक्ति के माध्यम से तथा कथा के द्वारा अद्वैतवेदान्त के निर्गलितार्थ का प्रतिपादन करना मात्र है। इसका रण ग्रन्थ की निस्तर्कता तथा उपपत्ति हीनता उसकी महता का अपहार नहीं करते। ग्रन्थ अपने लक्ष्य में सर्वथा सफल सशक्त एवं तेजोमय है।

पंचम परिच्छेद

अध्यात्मरामायण की साहित्यिक समीक्षा

नीरस काव्य उसी भाति रसिकों के लिए तुष्टिप्रदन हीं होता जैसे सुस्वादुपाक भी नमक से रहित भोजन।[1] इसीलिए रीति गुण तथा अलंकार प्रभृति सभी तत्व रस के अनुचर बतलाये गये हैं। यदि शरीर में आत्मा नहीं है तो स्वयं शरीर या उसके विविध भूषण भी कुछ महत्व नहीं रखते हैं। अलङ्0कार वादी या रसानुभतिवादी कवि के लिए काव्यानन्द का प्रधारूप भावानुभूति या रसानुभति है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में रस को काव्य की आत्मा कहा है।[2] आचार्यों ने रस के चार उपादान माने हैं। 1. स्थायीभाव, 2. विभाव. 3. अनुभाव. 4 संचारी भाव। मनुष्य में वासनारूप से वर्तमान रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, एवं निर्वेद नामक भाव रस-प्रकरण में स्थायी भाव कहे जाते हैं। इनमें से किसी भी भाव को चर्वणा या अस्वाद की दशा तक पहुंचाने के लिए तदनरूप विभावों, अनुभावों एवं संचारी भावों का कवि सन्निवेश करता है। नायक नायिका या प्रतिनायकादि पात्र आलम्बन-विभाव तथा रसानुकूल वातावरणादि उद्दीपन-विभाग कहे जाते हैं। भावोद्बोध का अनुभव कराने वाली वाणी या आङ्0गक चेष्टायें अनुभाव कहलाती हैं।

---

1 सुस्वादु पाकेयनास्वाद्यम् भाज्यंनिर्लवणंयथा।
तथैव नीरसं काव्यं स्यान्नौरसिकतुष्टै:।। रसप्रदीप, पृ0 17

2 तथा नीरसस्तु प्रबन्धोय: सो पशब्दोमहान् कवे:
एतेनाकविरेकस्यादन्येना स्मृति लक्षण: - ध्वन्यालोक, 3 उद्योत

3 काव्य मीमांसा पृ0 6

मनमें उठने वाले निर्वेद आवेग तथा दैन्य प्रभृति भाव स्थायीभावों के सहकारी होने से व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। इन सबके संयोग के साथ ही साथ अनिर्वचनीय रसचर्वणा होती है। आचार्यों ने काव्य-वृक्ष में रस को बीजस्थानीय तथा भावों को पल्लव-शाखादि स्थानीय माना है।[1] भावों की रमणीय वर्णना या अभिनय से रसनिष्पत्ति होती है।

देवादिविषयिणी रति के वर्णन को और मुख्यत: व्यंग्य व्यभिचारी भाव को भावध्वनि नाम दिया जाता है। अत: काव्य वृक्ष में अन्तर्नियामक रस की ही भाँति भावों का भी वैशिष्ट्य है। मानव जीवन में स्थायीभाव कहीजाने वाली यह सभी वासनायें सदा एक सी नहीं रहतीं। कभी हास-परिहास हैं तो कभी अपार शोकावेग, कभी वात्सल्य की सरसधार बहती है तो कभी क्रोध का प्रचंड-ताण्डव देखने को मिलता है। इस बहुरंगी रूप में ही जीवन का स्वारस्य है।

प्रश्न उठता है कि कितने ऐसे भाव है जो विभावादि से परिपुष्ट होकर रसकोटि तक पहुंचते हैं संयुक्त साहित्य शास्त्र में अनिर्वचनीय रसों की संख्या भी अनिर्वचनीय सी है। भोज आदि ने सभी उन्चास भावों को रस की कोटि का माना है। अभिनव ने तो एक स्थल पर लोचन में कहा है कि कुछ आचार्य विभाव, अनुभाव, स्थायीभाव, व्यभिचारी, उनके संयोगी, अनुकार्य या समग्र समुदाय को ही रस कहते हैं। फिर भी प्रचलित परम्परा में 9 प्रधान भावों को ही रसकोटि का माना है।

यह श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, तथा शान्त । रूद्रट प्रभृति आचार्यों ने वात्सल्य को भी रस माना है और

---

1 यथा बीजाद्भवेद्वृक्षो वृक्षात् पुष्पंफलं तथा।
तथा मूलं रसा: सर्वे तेभ्यो भावा: व्यवस्थिता:।

– नाट्यशास्त्र 6/38

उसे दशवाँ रस कहा है।[1]

अध्यात्मरामायण में इन रसों की व्यंजना किस रूप में और कहाँ-कहाँ हुयी यह देखना अभीष्ट है।

1. शृङ्गार रस :-

रतिभाव की व्यंजना में श्रृंगार-रस की निष्पत्ति होती है। कामात्मकान्त: करणवाले स्त्री-पुरूष की परस्पर रमण करने की इच्छा ही रति है।[2] यही रति भाव जब विभावादिकों से अभिव्यक्त होता है तो श्रृंगार रस कहा जाता है। श्रृंगार रस दो प्रकार का होता है। 1. संभोग श्रृंगार, 2. विप्रलंभ-श्रृंगार। लज्जादि के कारण निषिद्ध होने पर भी इष्ट दर्शन इत्यादि का जिस काव्यांश में नायक नायिका आनन्द उठाते हुए वर्णित किये जाते हैं वहाँ संभोग श्रृंगार और जहाँ नायक-नायिका के इस प्रकार के संभोग सुखास्वाद से प्रेरित रहने पर भी अभीष्ट लाभ नहीं करते वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार माना जाता है।[3] अध्यात्मरामायण में राम और सीता की पारस्परिक रति का अनेकश: वर्णन किया गया है। विवाह से लेकर, लंका के भयानक युद्ध तथा वन से अयोध्या प्रत्यावर्तन तक इनके प्रेम का चित्रण देखने को मिलताहै। राम-सीता का प्रेम, विवाह के पश्चात् अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रारम्भ होता है। यह अत्यन्त शुद्ध, अत्यन्तनिर्मल एवं सात्विक है। इस रति चित्रण में बड़ी सादगी है, विलास नहीं है। ग्रन्थ में सम्भोग श्रृंगार को उपस्थित करने वाले मुख्यतया ये स्थल हैं -

एकदा सुखमासीनं रामंस्वान्त: पुराजिरे।
सर्वाभरण सम्पन्नम् रत्नसिंहासनोस्थितम्।

1 अनुकूलौ निषेवेते यत्रान्योन्यौ विलासिनौ दर्शनस्पर्शनादान् सम्भाग उदाहृत।।
— काव्यप्रकाश

2 भावो यदा रतिर्नाम प्रकर्षमधिगच्छतिनाधिगच्छतिचाभीष्टम् विप्रलम्भस्तदोच्यते
— काव्यप्रकाश

नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकंधरम्
सीतया रत्नदण्डेन चामरेणाथवीजितम्।
विनोदयन्तम् ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात्

इसमें राम आलंबन, सीता आश्रय, रत्न दण्ड, चामर इत्यादि सेवीजित होना अनुभाव, आनंद संचारीभाव, इनसे परिपुष्ट रति स्थायीभाव यहां पर श्रृंगार रस में अभिव्यक्त हो रहा है।
तथा च -

राम: लक्ष्मणशत्रुघ्नभरतादेव सम्मिता:
स्वां स्वां भार्यमुपादाय रेमिरेस्व मन्दिरे।।
मातापितृभ्यांसंहृष्टो राम:सीतासमन्वित: ।
रेमे वैकुण्ठभवेन श्रिया सह यथा हरि: ।।

2. विप्रलम्भ श्रृंगार :-

विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन अध्यात्मरामायण में कई स्थलों पर हुआ है। अयोध्याकाण्ड के चतुर्थ सर्ग में सीता हरण के पश्चात् सीता विषयक, विरह जन्य दु:ख से दु:खी राम कहते हैं - हे प्रिये तुम कहां गई हो, पहले की भांति आश्रम में नहीं हो या केवल मुझे मोहित करने के लिये लीला से कहीं छिप रही हो।[1] यहां पर सीता आलम्बन, रामआश्रय, शून्य आश्रम उद्दीपन, राम का सीता के लिये साश्रु रोदन प्रलाप आदि अनुभाव तथा दैन्य आदि संचारी भाव हैं। यहां पर राम-विरह वर्णन में सहृदय हृदय की रति की विप्रलम्भ-श्रृंगार के रूप में अभिव्यंजना हो रही है।

समस्त वन में सीता को न प्राप्त करने पर राम के विरह जन्य दु:ख का चित्रण दर्शनीय है ≠ - वन देवियो । मेरी प्रिया सीता कहां हैं।[2]

---

1 हा प्रिये क्व गतासि त्वं नासि पूर्ववदाश्रमे।
अथवा मद्विमोहार्थं लीलया क्व विलीयसे ।। 3/8/16 ।

2 अ0 रा0 3/8/17

मृग और पक्षियों मेरी प्रिया सीता को दिखाओ इस प्रकार विलाप करते हुए राम ने सीता को कहीं नही देखा।[1]

यहां पर विरहोत्कण्ठित राम का सजीव वर्णन सहृदय हृदय को विप्रलम्भ श्रृंगार के आनन्दसन्दोह में डूबा देता है।

यहां आलम्बन सीता है, राम आश्रय हैं, वन देवियों पक्षियों आदि से सीता का पता पूछना और विलाप करना अनुभाव है। ग्लानि संचारी भाव है। अध्यात्परामायण के किष्किन्धा काण्ड में विप्रलम्भ श्रृंगार की सुरूचिपूर्ण अभिव्यंजना हुई है। सुग्रीव द्वारा सीता के आभूषण प्राप्त होने पर विरहाकुल राम का चित्रण इस प्रकारहुआ है -

विमुच्य रामस्तद्दृष्टवा का सीतेति मुहुमुहु:।
हृदि निक्षिप्य तत्सर्व रूरोद प्राकृतो यथा।।

इसमें राम आश्रय जानकी आलम्बन, आभूषणों का देखना उद्दीपन और आभूषणों को खोलना, हृदय से लगा लेना आदि अनुभाव तथा ग्लानि आदि संचारी भाव हैं।

इसी प्रकार किष्किन्धा काण्ड में [2] तथा सुन्दरकाण्ड में[3] भी विप्रलम्भ श्रृंगार की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

श्रृंगार-रसाभास :-

राम और सीता का पारस्परिक रति-भाव तो श्रृंगार रस की कोटि में आता है किन्तु रावण का सीता के प्रति प्रेम एक पक्षीय होने से

---

1 इत्याचिन्वन्नूंवनं सर्वं नापश्यज्जानकीं तदा।
वनदेव्य: कुल: सीतां ब्रवन्तु मम वल्लभाम।। 3/8/17

मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम् ।
इत्येवं विलपन्नेव राम: सीतां न कुत्रचित् ।। 3/8/18

2 अ० रा० 4/5/2 से 6 तक

3 अ० रा० 5/2/58

रसाभास की कोटि में गिना जायगा। रावण, हरण करके ले जायी गई राम की भार्या सीता से कहता है - हे भामिनि । अपने से उदासीन उस नराधम से तुझे क्या लेना देख मैं राक्षस श्रेष्ठ तुझसे अत्यन्त अधिक प्रेम करता हूं। अत: तू मुझे अङ्गीकार कर।[1] यहां पतिव्रता सीता के प्रति रावण का प्रेम-प्राबल्य अनुचित होने के कारण श्रृंगार रस के अन्तर्गत न होकर रसाभास हो जायगा।

काव्यात्मक आनन्द की दृष्टि से रसाभास कोई हेय या आनन्द-निष्पत्ति-विरोधी तत्व नहीं है। क्योंकि उसके प्रथम प्रभाव में रस-तुल्य ही आनन्द -चर्वणा होती है। अनौचित्य की प्रतीति तो बाद में होती है और तब रस कोटि से वह आनन्द नीचे आ जाता है। यही उसकी रसाभासता है।

वात्सल्य रस :-

आंग्ल भाषा के ( ) एवं ( ) शब्द संस्कृत के प्रणय रूप रति तथा वात्सल्य रूप रति के वाचक हैं। वात्सल्यरूप रति के आलम्बन बालक, शिष्य आदि होते हैं और इसके आश्रय माता-पिता गुरूजन आदि होते हैं।

वात्सल्य रस को यद्यपि संस्कृत के अनेक आचार्यों ने नहीं स्वीकार किया है किन्तु रूद्रट आदि आचार्यों ने स्पष्टत: वात्सल्य को भी रसरूप में स्वीकार किया है। वात्सल्य रस संयोग एवं वियोग की दृष्टि से द्विविध होता है।

अध्यात्मरामायण मे दशरथ एवं उनकी रानियों का रामादि के प्रति प्रेमप्रदर्शन, दर्शनस्पर्शनादि संयोग पक्ष में ही आता है। बालकाण्ड के तृतीय सर्ग में राम के सौन्दर्य एवं बालभाव को देखकर दशरथ और कौशल्या का आनन्दित होना वात्सल्य का ही चित्रण है। जैसे उस इन्द्र नीलमणि की सी आभा वाले

---

1 नराधमं त्वद्विमुखं किं करिष्यसि भामिनि।
त्वय्यतीव समासक्तं मां भजस्वासुरोत्तमम् ।। अ0 रा0 सुन्दर काण्ड 29/स02

तथा स्वल्प दाँतों से युक्त मुस्काते मुख वाले बालक को राजभवन के आँगन में बछड़े के पीछे-पीछे सब ओर बालगति से दौड़ते देखकर महाराज दशरथ और माता कौशल्या अति आनन्दित होते थे।[1] यहाँ आलम्बन हैं, राम, उनका बालगति से दौड़ना इत्यादि उद्दीपन है। दशरथ और कौशल्या का मुग्ध होना, आनन्दित होना अनुभाव है और उन दोनों का हर्षादि संचारी भाव हैं।

बालक-राम की बाल क्रीड़ाओं में वात्सल्यरस का सरस चित्रण हुआ है - राम ने ॥ माँ से भोजन माँगा किन्तु कार्यासक्त होने के कारण कौशल्या ने नहीं सुना तब उन्होंने क्रोध में डण्डे से दही का वर्तन तोड़ डाला और सींके पर रखा हुआ सब दही और मक्खन गिरा दिया। रसोइये के द्वारा सूचना पाकर कौशल्या उन्हें पकड़ने आती हैं - अन्त में उन्होंने राम को पकड़ लिया किन्तु कहा कुछ नहीं। उस समय राम बालभाव से धीरे धीरे रोने लगे। उन सबको भयभीत देखकर माता ने उन्हें बड़े प्रेम से हृदय से लगाकर प्यार किया।[2] इसमें राम आलम्बन हैं, कौशल्या आश्रय हैं, राम के द्वारा दही का वर्तन तोड़ना, पकड़े जाने पर भयभीत होना उद्दीपन विभाव और हर्ष संचारी भाव है।

उनके नटखट व्यवहार पर माँ कौशल्या द्वारा उनका पकड़ा जाना हृदय से लगाकर प्यार करना आदि अनुभाव हैं। इस वर्णन में कौशल्या का वात्सल्य तथा सन्तान के प्रति स्नेह प्रकट करना होता है।

---

1 स्मितवक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम्।
अङ्गणेरिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वतः ॥ अ० रा० 1/3/46
दृष्ट्वा दशरथो राजा कौशल्या मुमुदेतक्षा। 1/3/47 अ० रा०

2 भोजनं देहि मे मातर्न श्रुतं कार्यसक्तया
ततः क्रोधेन भाण्डानि लगुडेनाहनत्तदा ॥ 1/3/53
शिक्यस्थं पातयामास गव्यं च नवनीतकम्। 1/3/54
रघुनाथं करे धृत्वा किंचिन्नोवाच भामिनी। 1/3/57
ते सर्वे लालिता मात्रा गाढमालिङ्ग्ययत्नतः ॥
-अ० रा० 1/3/58

निम्न श्लोक में[1] विश्वामित्र के द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना के समय दशरथ का चिन्तित होना तथा वसिष्ठ से भयातुर होकर परामर्श करना इत्यादि में दशरथ का वात्सल्य अभिव्यक्त होता है।

वात्सल्य के वियोग पक्ष का चित्रण मिथिला में सीता की विदाई के समय देखने को मिलताहै। इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है[2] - माताओं ने रोती हुई सीता को गले लगाकर नेत्रों में जल भर कर कहा, वत्से तुम सास की सेवा करती हुई सदा रामचन्द्र की अनुगामिनी रहकर पतिव्रत धर्म का अव-लम्बन कर सुख से रहना।

इसमें सीता आलम्बन हैं, सीता की मातायें आश्रय हैं, सीता का रोना तथा विरह बेला का उपस्थित होना आदि उद्दीपन है, मां का मोहादि संचारी भाव हैं, माताओं के नेत्रों में जल भर आना तथा सीता को गले लगाना और उनको धर्म की शिक्षा देना आदि अनुभाव हैं। इन विभावादिकों के द्वारा पुष्ट हुआ सहृदय-हृदय का स्नेह वात्सल्य रस में उमड़ता है।

<u>करूण-रस</u> :-

यह शोकस्थायी भाव का व्यक्त रूप है। अध्यात्मरामायण में इस रस की व्यंजना राम के वनगमन के समय दशरथ के अपरिसीम दु:ख के वर्णन में हुई है - राम के वन जाने के लिए सुमन्त्र के द्वारा रथ लाये जाने पर दशरथ कहते हैं - सुमन्त्र तुम रथ ले आओ । वनवासियों के प्रिय राम आदि रथ पर चढ़कर वन को जाय। ऐसा कहकर वे, सीता और लक्ष्मण के सहित राम को देखकर दु:ख से

---

1 वसिष्ठेन सहामन्त्र्य दीयतां यदि रोचते।
पप्रच्छ गुरूमेकान्ते राजा चिन्तापरायण: ।।
- अ० रा० 1/4/8

2 सीतामालिङ्गय रूदतीं मातर: साश्रुलोचना: । अ० रा० 1/7/80
श्वश्रूशुश्रूणपरा नित्यं राममनुव्रता ।
पातिव्रत्यत्यमुपालम्व्य तिष्ठवत्से यथा सुखम् ।।
- अ० रा० 1/7/81

पृथिवी पर गिर पड़े और आंखों में आंसू भर कर रोने लगे।[1]

यहां रामादि आलम्बन हैं, दशरथ आश्रय, सीता औरलक्ष्मण के सहित राम को देखना उद्दीपन है, दु:ख से पृथिवी पर गिर पड़ना और आंसू भर कर रोना अनुभाव तथा मोहादि संचारी भाव हैं। इनकी सम्मिलित अभिव्यंजना शक्ति, सहृदय सामाजिकों के शोकभाव को उद्बुद्ध कर उसे करूण-रस के आस्वाद का विषय बना रही है।

यहां वनपरप्रिया: शब्द के द्वारा दशरथ के हृदय की गुरूगंभीर वेदना तथा उनकी विवशता की सुन्दर व्यंजना होती है। सुमन्त्र के द्वारा रथ हांकने पर दशरथ का इस प्रकार का वर्णन -

तिष्ठ-तिष्ठ सुमन्त्रेति राजा दशरथो ब्रवीत ।[2]

दशरथ के हृदय का शोक व्यक्त होकर करूण-रस की धार बहा देता है।

पुरवासियों के द्वारा - तिष्ठ तिष्ठेति रामेति क्रोशन्तो रथमन्वयु:[3] इस वर्णन में चिल्लाते हुए, रथ के पीछे जाते हुए अयोध्या वासियों के शोकभाव में करूण रस की अभिव्यक्ति होती है। राम के चले जाने पर दशरथ का करूण-क्रन्दन शोक भाव की कैसी अभिव्यक्ति है[4] - हा गुणनिधि राम। हा प्रियवादिनि सीते । तुम मुझे दु:ख सागर में निमग्न और म्रियमाण नहीं देखते। इस प्रकार बहुत देर तक विलाप करके राजा दु:ख समुद्र में डूब गये।

---

1 राजादशरथो प्याह सुमन्त्रं रथमानय । 2/5/41
रथमारूह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रिया: ।
इत्युक्त्वा राममालोक्य सीतां चैव सलक्ष्मणम् । 2/5/42
दु:खन्निपतितो भूमौ रूरोदाश्रु परिप्लुत: । 2/5/43

2 अ0 रा0 2/5/43

3 अ0 रा0 2/5/47

4 हे राम हा गुणनिधे हा सीते प्रियवादिनि ।
दु:खार्णवे नि मग्नं मां म्रियमाणं न पश्यसि ।। 2/7/5

यहाँ पर राम और सीता आलम्बन हैं, दशरथ आश्रय, रामादि का वन चले जाना, उनको छोड़कर आये हुए सुमन्त्र को देखना उद्दीपन है, राम-सीता का स्मरण कर विलाप करना अनुभाव है तथा चिन्ता, स्मृति आदि संचारी भाव हैं। यहाँ शोकरूप स्थायी भाव दशरथ-विलाप-वर्णन से करूणरस के रूप में प्रवाहित हो रहा है। निम्न श्लोक में [1] बन जाते समय राम को सीता तथा लक्ष्मण सहित देख कर दशरथ का शकावेग में भूमि पर गिर जाना और साश्रुविलाप करना करूण-रस के रूप में अभिव्यक्त होता है।

यहाँ आलम्बन हैं, राम, सीता तथा लक्ष्मण (राममालोक्य) दशरथ का रामादि को देखना उद्दीपन है, उनका वेषादि भी उद्दीपन है, दशरथ का भूमि पर गिर जाना, दु:ख में डूब जाना और साश्रु रोना अनुभाव है। दशरथ का राम के प्रतिमोह संचारी भाव है। दशरथ का विलाप ही यहाँ करूण रस का उद्भावक है। इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर करूण रस की अभिव्यक्ति हुई है। जैसे - दशरथ की मृत्यु[2] के समय दशरथ के द्वारा अन्धमुनि का शाप-स्मरण प्रसंग में करूण रस की अभिव्यक्ति हुई है।

वन में भरत के द्वारा दशरथ मृत्यु की सूचना प्राप्त करने पर राम के विलाप में करूण रस की अभिव्यक्ति हुई है।[3]

---

1 इत्युक्त्वा राममालोक्य सीतां चैव सलक्ष्मणम्
दु:खान्निपतितो भूमौ सरोदाश्रुपरिप्लुत: । 2/5/43

2 ततो नीतौ सुतौ यत्र माया तौ बृद्धदम्पती ।
स्पृष्ट्वा सुतं तौ हस्ताभ्यां बहुशो थविलेपतु: ।। 1/7/42
हाहेतिक्रन्दमानौ तौ पुत्र पुत्रेव्यवोच्यताम् ।
जलं देहीति पुत्रेति किमर्थं न दक्षास्यज्जलम् ।। 2/7/43

33 श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभं गुरोर्वचनम जसा ।
हा हतो स्मीति पतितो रूदन् राम: सह लक्ष्मण: ।।
- अ० रा० 2/9/14

सीता-हरण के बाद लङ्का में सीता की दशा के वर्णन में सीता के करूण-क्रन्दन में शोकस्थायी भाव की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।[1]

किष्किन्धा-काण्ड[2] में वाली की मृत्यु होने पर तारा के विलाप में करूण रस प्रवाहित हुआ है।

रौद्र-रस :-
=======

क्रोध भाव की व्यंजना रौद्र-रस में होती है। यह क्रोध-स्थायि-भावक रस प्राय: राक्षसादि की ओर से व्यंजित किया गया है। क्योंकि मुख्यत: उन्हीं काशरीर एवं कार्य एतदनुरूप होते हैं। उग्रता और अविवेक इस रस के प्रमुख लक्षण हैं।

अध्यात्मरामायण में, टूटे हुए धनुष को देखकर परशुराम के क्रोध में रौद्ररस की अभिव्यक्ति होती है।

राम की प्रार्थना पर परशुराम क्रोध से व्याकुल होकर कहते हैं - अरे क्षत्रियाधम । तू मेरे ही समान राम नाम से विख्यात होकर पृथिवी में विचरता है। यदि तू वास्तव में क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध कर, एक पुराने जीर्ण, शीर्ण धनुष को तोड़कर व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रहा है।[3]

---

1 कृशातिदीना परिकर्मवर्जिता,
दु:खेन शुष्यद्वदनातिविह्वला ।
हा राम रामेति विलप्यमाना
सीता स्थिता राक्षसवृन्दमध्ये ।। 3/7/66

2 अ० रा० - निहतं वालिमं श्रुत्वा तारा शोकविमूर्च्छिता ।
अताडयत्स्वपाणिभ्यां शिरो वक्ष भूरिश: ।। 4/3/4

3 उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रिय: ।
त्वं राम इति नाम्ना में चरसिक्षत्रियाधम । । 1/7/11
द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियो सिवै।
पुराणं जर्जरं चापं भङ्क्त्वा त्वं कत्थसे मुदा।। 1/7/12

यहां राम आलम्बन, परशुराम आश्रय, टूटा हुआ धनुष और राम की उपस्थिति उद्दीपन, परशुराम की क्रोधोक्तियां, राम को युद्ध के लिए ललकारना, क्रोध से व्याकुल होना आदि अनुभाव, गर्व आवेश आदि संचारी भाव तथा क्रोध स्थायीभाव रौद्र-रस में प्रवाहित हो रहा है।

इसी प्रकार वर्णन है कि राम के धनुष के शब्द को सुनकर घोर-रूपिणी क्रोध से पागल होकर मेघ के समान राम की ओर दौड़ी। यहां क्रोध रूप स्थायी भाव रौद्र रस के रूप में प्रवाहित हो रहा है।

भयानक रस :-

भय की व्यंजना में भयानक रस की अभिव्यक्ति होती है। अध्यात्म-रामायण में धनुष भङ्ग के पश्चात् परशुराम का आगमन होने पर उनको देखकर भय से [1] संत्रस्त राजा दशरथ अर्घ्यादि पूजा को भूलकर, त्राहि त्राहि इस प्रकार कहने लगे यहां आलम्बन परशुराम हैं, आश्रय दशरथ हैं, उद्दीपन है परशुराम का क्रोधित होना और उनका उग्रस्वभाव, राजा का भय से संत्रस्त हो जाना और अर्घ्यादि भूल कर त्राहि त्राहि चिल्लाना संचारी भाव है, तथा स्थायी भाव भय है।

यहां परशुराम को देखकर दशरथ के भय की अभिव्यक्ति का परिणाम है, भयानक रस का आस्वाद।

ग्रन्थ में भयानक रस का निम्नस्थलों पर भी चित्रण हुआ है। [2]

---

1 तं दृष्ट्वा भयसंत्रस्तो राजा दशरथस्तदा
अर्घ्यादि पूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् । 1/7/9
- अ0 रा0 1/7/9

2 अ0 रा0 4/2/24, 25, 30 , 31 ।

वीभत्स रस :-

जुगुप्सा स्थायीभाव की अभिव्यक्ति को वीभत्स रस कहते हैं। हास्य की भाँति इसमें भी प्राय: आलम्बन मात्र का वर्णन होता है। आश्रय का अनुमान अदृश्य पुरूष या सामाजिक के रूप में कर लिया जाता है। जैसे -

ददर्शतत्र पतितान्यैकानि शिरांसि ।
अस्थिभूतानि सर्वत्र रामोवचनमब्रवीत् ।

युद्धकाण्ड में वानर राक्षस युद्ध के समय वीभत्स रस का चित्रण हुआ है - विजयी वानर वीर भी राक्षसों को मारने लगे। उस समय वहाँ राक्षसों और वानरों का बड़ा विचित्र युद्ध छिड़ गया, जिससे रणभूमि में रक्त माँस का कीचड़ हो गया ।

यहाँ भी सहृदय सामाजिक का जुगुप्सा स्थायीभाव वीभत्सरस की अभिव्यक्ति करा रहा है। यहाँ पर जुगुप्सा स्थायीभाव वीभत्सरूप रस की व्यंजना कर रहा है।

अद्भुत-रस :-

अलौकिक पदार्थों के देखने या सुनने तथा ईप्सित वस्तु के महसा मिल जाने से अद्भुत रस की अभिव्यक्ति होती है जो कि विस्मय नामक स्थायी-भाव की व्यंजना है। अध्यात्मरामायण में अद्भुत रस का चित्रण कई स्थलों पर हुआ है। पंपासर की शोभा देखकर प्रिया-वियोग से दु:खी होते हुये भी, राम को विस्मय होता है[1] - तदनन्तर लक्ष्मण के सहित राम धीरे - धीरे

---

1 तत: स: लक्ष्मणो राम: शनै: पम्पासरस्तरम्
आगत्य सरसां श्रेष्ठं दृष्ट्वा विस्मयमाययौ ।।
क्रोशमात्रं सुविस्तीर्णमगाधामलशम्बरम् ।
उत्फुल्लाम्बुजकहारकुमुदोत्पलमण्डितम् ।।

- 4/1/2

पम्पासर के तटपर आये। उस सुन्दर सरोवर को देखकर उन्हें विस्मय हुआ। यहां पर राम आश्रय, पम्पासर की शोभा आलम्बन, उसका सौन्दर्य एवं विस्तार और उसमें खिले हुए कमल, कहार, कुमुद और उत्पल इत्यादि अनुभाव है राम का विस्मित हो जाना तथा संचारीभाव है। यहां पर विस्मय स्थायीभाव अद्भुत रस का व्यंजक है।

किष्किन्धा काण्ड के पंचम् सर्ग में वर्णन है - भगवान् राम ने आधे निमेष में ही एक अर्धचन्द्राकार वाण से उसके ‌‌॥रावण॥ हजारों श्वेतछत्र और दशो मुकुट काट डाले यह बड़ा आश्चर्य हो गया।[1]

यहां राम के अद्भुत कार्य से सहृदयहृदय का विस्मयस्थायीभाव अभिव्यक्त होकर अद्भुत रस की सृष्टि कर रहा है।

मारीच दमन प्रसङ्ग में अद्भुत रस का चित्रण हुआ है - उनमें से एक वाण ने मारीच को आकाश में घुमाते हुये सौ योजन की दूरी पर समुद्र में गिरा दिया। यह एक बड़ा आश्चर्य सा हो गया।[2]

इन दोनों उदाहरणों में तद्भुतमिवाभवत् शब्द का प्रयोग करने में स्वशब्दवाच्यत्व दोष आ गया है। किन्तु उससे विस्मय भाव में कमी नहीं आने पाती, वे स्ववाचक शब्द विस्मय भाव के केवल अनुवाद मात्र हैं।

अध्यात्मरामायण में तदभुतमिवाभवत् वाक्य बहुत स्थानों पर मिलता है किन्तु वहां भी अद्भुत रस की अथवा विस्मय स्थायी भाव की अभिव्यक्ति होती है।

अद्भुत रस का चित्रण बाल-काण्ड ॥सर्ग 3। श्लोक 13 सर्ग 5, श्लोक 1, सर्ग 6, श्लोक 26, 28 ॥ अयोध्याकाण्ड ॥ सर्ग 9 श्लोक 4॥, अरण्यकाण्ड सर्ग 1 श्लोक 32, सर्ग 9 श्लोक 2 ॥ किष्किन्धाकाण्ड सर्ग 2 श्लोक 18, सर्ग 9

---

1 श्वेतच्छत्रं सहस्त्राणि किरीटदशकं तथा।
विच्छेद निमिषार्धेन तद्भुतमिवाभवत् ।।। 6/5/44

2 तपोरेकस्तु मारीचं भ्रामयंशतयोजनम् ।
पातयामास जलधौ तदभुताभिवाभवत् ।। 1/5/7

श्लोक 28 ‖ सुन्दरकाण्ड ‖सर्ग 21 श्लोक 18 ‖ युद्धकाण्ड ‖सर्ग 5 श्लोक 60, 44 67 ‖ आदि स्थलों में हुआ है।

किष्किन्धाकाण्ड में वाली वध के प्रसङ्गों में वाली और सुग्रीव के एक रूप को देखकर राम को अति विस्मय होता है। यहाँ पर यह विस्मय स्थायी भाव अद्भुत रस का अभिव्यंजक हुआ है।[1]

अयुध्येतामे सौ दृष्ट्वारामे तिविस्मित:।
न मुमोच तदावाणं सुग्रीव वधशङ्कया ।

यहाँ राम आश्रय, वाली और सुग्रीव आलम्बन उन दोनों की अद्भुत एकरूपता उद्दीपन बाण न छोड़ना अनुभाव एवं वितर्क संचारी भाव है।

<u>शान्त रस</u> :-

निर्वेद स्थायीभाव, ‖आठों रसों के अतिरिक्त नवां‖ की अभि-व्यंजना शान्त रस में होती है।[2] धर्म, अर्थ और काम रूप अर्थत्रितय की प्राप्ति के सम्बन्ध से जैसे शृङ्गारादि आठ रस आने जाया करते हैं वैसे ही मोक्षरूप चरम पुरूषार्थ की प्राप्ति की दृष्टि से शान्तरूप नवमरस की भी मान्यता काव्य और नाट्य के लिए परमावश्यक है।[3]

राम-सुग्रीव मैत्री के पश्चात् राम के पराक्रम को देखकर, उनको ब्रह्म जानकर सुग्रीव का मन सांसारिक वैभव से विरक्त हो जाता है और वह कहता है - हे देवदेवेश्वर । ये स्त्री, पुत्र, धन, राज्य आदि सभी आपकी माया के कार्य है। अत: अब आपके अतिरिक्त और किसी पदार्थ की मुझे इच्छा नहीं है, आप मुझ पर प्रसन्न होइये ।[4]

---

1 अ0 रा0 4/2/9

2 निर्वेदस्थायिभावो स्ति शान्तो पि नवमो रस: । काव्यप्रकाश, 4/47

3 अभिनव भारती, शान्तरस प्रकरण, पृ0 324

4 दारा: पुत्रा धनं सब राज्य सर्वं त्वन्मायया कृतम् ।
अतो हं देवदेवेश नाकाङ्क्षेन्यत्प्रसीद मे।। 4/1/78

यहां पर सहृदय सामाजिकों के हृदय में उनका ही निर्वेदरूप स्थायी-भाव समुचित विभवादि वर्णना से उद्बुद्ध हो शान्तररस का आनन्द दे रहा है। अध्यात्मरामायण में, दार्शनिक विवेचनों में जहां मायामय संसार की असारता का वर्णन हुआ है, वहां शान्त रस की अभिव्यक्ति होती है।

वीर-रस :-

उत्साह स्थायीभाव की अभिव्यक्ति वीर-रस में होती है। राम-रावण के युद्ध के समय वीर रस का वर्णन हुआ है - अरे राक्षसाधम ।[1] जरा ठहर तो, मुझ सर्वत्रसमदर्शी का ऐसे अपराध करके तू कहां जा सकता है अरे । तू तनिक मेरे सामने खड़ा रह, जिस बाण से मैंने जनस्थान में तेरे राक्षसों को मारा था आज उसी से तुझे भी मार डालूंगा ।

यहां पर राम आश्रय हैं, रावण आलम्बन, उद्दीपन है रावण का युद्ध के लिए आना और अत्यन्त क्रोध से राम की ओर दौड़ना, अनुभाव है राम के द्वारा धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाया जाना और रावण को ललकारना। संचारी-भाव है गर्वधृति इत्यादि।

सहृदय सामाजिकों के हृदय का उत्साह यहां, इन्हीं विभावादिकों की समुचित वर्णना से अभिव्यक्त हो रहा है और वीर रस के आस्वाद में परिणत हो रहा है।

वीर रस भरत एवं दशरूपककार[2] प्रभृति आचार्यों के अनुसार युद्ध, दया धर्म एवं दान के विशिष्ट संयोग से चार प्रकार का माना गया है।[3]

---

1 राक्षसाधम तिष्ठाद्य क्व गमिष्यसि मे पुर: ।
कृत्वापराधमेवंमेसर्वत्र समदर्शिन: ।। अ0 6/6/31

2 स च दयारणदानयेमात्त्रिधा. दशरूपक, 4/72

3 स च दानधर्मयुद्धदंययासमन्वितश्चतुर्धास्यात् ।
- साहित्यदर्पण 3/234

1. युद्धवीर- अध्यात्मरामायण में युद्धवीर का परिपाक रावण तथा अन्य राक्षसादि के साथ युद्ध करते हुये, युद्धवीर राम के वर्णन में होता है। अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड तथा युद्धकाण्ड में युद्धवीर राम के दर्शन होते हैं। इन स्थलों पर युद्धवीर का चित्रण हुआ है।

2. धर्मवीर - वीर-रस धर्म-प्रधान होने के कारण ही अमर्ष प्रधान रौद्र-रस से अलग माना गया है।[1] अन्यथा युद्धादि के दोनो में रहने सेकोई भेद ही न रह जाता।[2] यहां सुख तथा स्वार्थ को छोड़कर भी मर्यादा पालन का उत्साह होता है। वन-गमन के अवसर पर राम की इस उक्ति में उनके स्वार्थ त्याग का चित्रण है।[3] भरतस्यैव राज्यं स्यादहंगच्छामि दण्डकान् - धर्मवीर राम का उदाहरण है। यहां आश्रय हैं राम, आलम्बन हैं माता पिता के प्रति उनकी निष्ठा, उद्दीपन है पिता के सत्यवाक्यों की रक्षा संचारी भाव धैर्य, क्षमादि है, राम की वाणी अनुभाव है।

यहां पर धर्म विषयक उत्साह विभावादिकों से परिपुष्ट होकर वीर रस की अभिव्यक्ति कराता है।

3. दयावीर - दयावीर में स्वार्थ तथा प्राण का भी मोहत्याग कर दु:खी जीवों की रक्षा का उत्साह व्यक्त होता है। आश्वासन की बातें कहना अनुभाव तथा धृति एवं मति प्रभृति व्यभिचारी भाव होते हैं।[4] सुग्रीव मैत्री के

---

1. रौद्ररस: चामर्षप्रधान: । तत: कामार्थयोधर्ममूलत्वाद्वीर: स हि धर्मप्रधान:
 - एकावलीकार -3 पृ0 99

2 वीर रसे च युद्धादि भावे पि न रौद्रत्वम् उत्साह न्यायप्रधानात् रौद्रे तु मोहाहङ्0कारापन्यास प्रधानमित्यनयो न सांकर्यम् । - नाट्यदर्पण, पृ0 168

3 अ0 रा0 2/3/67

4 दयावीरे धृतिमतिप्रमुखा व्यभिचारिण: ।
स्वार्थप्राणव्ययेनापि विपन्नत्राणशीलता
आश्वासनोक्तय: स्थैर्यमित्याद्यास्तत्रविक्रिया: -
 - रसार्णव सुधाकर 2/240/41

समय दु:खी सुग्रीव को आश्वासन देते हुये राम के चित्रण में दयावीर की अभि-व्यक्ति होती है। इसका वर्णन अध्यात्मरामायण में इस प्रकार हुआ है - तब कमलनयन श्रीरामचन्द्र जी ने सखा सुग्रीव के दु:ख से आतुर होकर उसके सामने प्रतिज्ञा की कि मैं बहुत ही शीघ्र तुम्हारी पत्नी को छीनने वाले तुम्हारे शत्रु का नाश कर दूंगा।[1]

यहां आश्रय हैं दीनदयालु राम, आलम्बन हैं दु:खी सुग्रीव, उद्दीपन हैं उसका अपना जीवन चरित सुनाना, अनुभाव हैं राम के द्वारा कहे गये - हनिश्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम् आदि वाक्य, संचारी भाव है।

4. <u>दानवीर</u> - दानवीर में प्रसन्न होकर उदार बातों के साथ बहुमात्रक दान किया जाता है। सस्मित भाषण एवं वीक्षण तथा गुणागुण का विचार आदि अनुभाव होते हैं। धृति, हर्ष एवं मति आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।[2] अध्यात्मरामायण में राम के द्वारा विभीषण को लङ्का का राज्य देना ~~य~~ दानवीर के उदाहरण स्वरूप हैं।[3]

<u>भक्ति रस</u> -

भक्ति रस को स्वीकार करने के सम्बन्ध में आचार्यों में बड़ा मतभेद रहा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि संस्कृत साहित्यशास्त्रियों ने नव प्रधान भावों को ही रस कोटि का माना है। भक्ति को रस की कोटि तक न मानकर उन्होंने उसे भाव संज्ञा ही प्रदान की है। जिस प्रकार नायिकादि-

---

1 मित्र दु:खेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचन: । 58 / सं0 1, कि0 का0
हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम् ।। 59 । सं0 । कि0 का0

2 रसार्णवसुधाकर 2/236/238

3 अ0 रा0 6/3/42 से 45 तक

विषयिणी रतिभाव श्रृंगार रस बन जाता है। उसी प्रकार भगवान के प्रति जो रति भाव है उस के परिपाक भक्तिरस के रूप में हुआ माना जाना चाहिए। किन्तु मम्मट आदि को भक्ति में भावत्व ही अभिप्रेत है रसत्व नहीं उन्होंने देवता विषयिणी रति को भावसंज्ञा दी है, रस नहीं।

मम्मट आदि की भांति पण्डितराज को भी भक्ति में भाव ही अभिष्ट है, रसत्व नहीं। रस की संख्या नौ ही है।[1] यह संख्या पूर्वाचार्यों ने निर्धारित की है अतः भक्ति दशम रस के रूप में नहीं माना जा सकता । इसके अतिरिक्त भक्ति को दशम रस मान लेने पर अनवस्था दोष आ जाएगा फिर तो सभी 49 भावों को रसकोटि में माना चाहिए। किन्तु रूद्रट प्रभृति आचार्यों ने वात्सल्यरस की मान्यता स्वीकार करते हुए इसे दसवां रस माना है। [2] भक्ति को रसत्व की कोटि तक ले जाने में ही क्या दोष है मुनि वचन नियन्त्रिता के आधार पर ही भक्ति को रस न मानना संभवतः न्यायसंगत नहीं। इस विषय में हम आचार्यों के विभिन्न विचारों पर किंचित दृष्टिपात करेंगे। मम्मट ने तो इसे भाव संज्ञा दी है। परम पुरूषार्थ मोक्ष का उपयोगी शान्त रस है। मोक्ष के तीन मार्ग हैं - कर्म, ज्ञान और भक्ति। अतः मोक्ष का साधन भक्ति भी शान्त के ही अन्तर्गत है।

किन्तु भक्ति मार्गियों को न तो ज्ञानियों का मोक्ष अभीष्ट है और न भक्ति का अङ्गत्व ही। वे भक्ति को स्वतंत्र अङ्गी रूप में मानना चाहते हैं।

पण्डितराज ने भक्ति को शान्त रूप नहीं माना है। आराध्य के प्रति परम अनुराग भक्ति है। शान्त में अनुराग का सर्वथा अभाव रहता है। अतः

---

1 भक्ते : देवादिविषय - रतित्वेन भावान्तर्गतया रसात्वानुपपतेः
रसानां नवत्वगणना चमुनिवचननियन्त्रिता
भुज्येत इति यथा शास्त्रमेव न्यायः ।
- रसगंगाधर, पृ0 76

अत: शान्त में अनुराग का अन्तर्भाव नहीं हो सकता।[1]

आचार्य मम्मट ने देवादिविषयिणी रति को भाव कह कर भक्ति के रसत्व का खण्डन किया है।

मधुसूदन सरस्वती ने कहा है - देव शब्द में इन्द्र आदि देव लेना चाहिए। उनमें जीवत्व होने के कारण परमानन्द प्रकाशित नहीं होता अत: वहाँ रसाभिव्यक्ति न होकर भावाभिव्यक्ति होती है। यह तर्क परमानन्द परमात्मा में लागू नहीं, वहाँ अर्थात् ब्रह्मविषयिणी भक्ति में रस की ही निष्पत्ति होती है।[2] यही वस्तुत: रस है जिसमें परमानन्द की प्राप्ति होती है। शृंगारादि रस तो, दिवाकर के सामने खद्योत के समान इस परमानन्दसन्दोह ब्रह्मविषयी भक्ति रस के समक्ष तुच्छ हैं ।[3] भक्ति रसानन्द का ही प्रभाव परिपूर्ण एवं चिरस्थायी है।

कर्णपूर ने अलङ्कार कौस्तुभ में नौ प्रसिद्ध रसों के अतिरिक्त वात्सल्य भक्ति और प्रेम रसों को माना है। प्रेम-रस रूपगोस्वामी का मधुर रस है।

---

1 न चासौ शान्तरसे न्तर्भवितुमर्हति । अनुरागस्य वैराग्यविरुद्धत्वात् ।
- रसगं0 , पृ0 75

2 रतिर्देवादिविषया व्यभिचारीतथार्जित: ।
भाव: प्रोक्तो रसो नेति रसकोविदे : ।।
देवान्तरेषु जीवत्वात् परानन्दप्रकाशनात् ।
तद्योज्यम् परमानन्दरूपे न परमात्मनि ।। 2/73/74

3 अथ प्रेम रस: .... अत्र चित्तद्रव: स्थायी । प्रेम रसे सर्वे रसाअन्तर्भवन्ती-त्यत्र महीयानेव प्रपंच:। केषाचिन्मते श्रीराधाकृष्णयो: शृंगार एव रस: तन्मते-तदुदाहरणं नासंगतम् । शृंगारो ड्0गी, प्रेम अड्0गम् अड्गस्थापि क्वचिन्द्रिक्तार वयं तु प्रेमाड्0गी, शृंड्0गारो ड्0गम् इति विशेष :
तथा च ...... उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रेमण्यखण्डरसत्वत:
सर्वे रसाश्च भावाश्च तरड्0गा इव वारिधौ।।
- अ0 को0 , पृ0 148

इसका स्थायी चित-द्रव माना गया है। इसमें सब रसों का अन्तर्भाव हो जाता है। इनके मत में श्री राधाकृष्णावलम्बनक प्रेम-रस श्रृङ्गार रूप नहीं। यदि कृष्ण विषयक श्रृङ्गारादि को ही रस मानते हैं तो वह श्रृङ्गारादि उनके मत में अङ्गी और प्रेम अङ्ग होगा। अङ्ग का भी कहीं पर उद्रेक होता ही है। वे प्रेम को अङ्गी और श्रृङ्गार को अङ्ग मानते हैं। महासागर में तरङ्गों के समान इस अखण्ड प्रेम-रस में सभी रस और भाव उन्मग्न और निमग्न होते हैं।[1]

रूप गोस्वामी तथा जीव गोस्वामी आदि वैष्णव भक्त आलंकारिकों ने उज्ज्वल नील-मणि नामक ग्रन्थ में उज्ज्वल श्रृङ्गार रूप भक्ति-रस को ही मुख्य रस तथा हास्य आदि सात रसों को गौण माना है।[2] भक्ति रस के सम्बन्ध में वैष्णवाचार्यों ने जो दार्शनिक एवं मार्मिक सिद्धान्त स्वीकृत किया है। उसको देखते हुए भक्ति को भाव की कोटि में रख देना केवल सत्य का अपलाप ही नहीं करना है अपितु सच्ची सहृदयता और रसिकता से अपने को वंचित करना है।

भक्त जब अपने भगवान् के स्मरण, गुणगान आदि से रोमांचित स्वर् साश्रुनयन होकर गद्गद हो जाते हैं और प्रेम-रस में सराबोर होकर परमानन्द को प्राप्त करते हैं उस स्थिति को देखते हुए भक्ति को रस की कोटि में न मानना असंभव सा है -

---

1 काव्यत्म मीमांसा, डा० जयमन्त मिश्र

2 मुख्यस्तु पंचधाशान्तः प्रीतिः प्रेमांश्च वत्सलः ।
मधुरश्चेत्यमी ज्ञेया यथा पूर्वमनुतमाः ।
हास्याद्भुतस्तथावीरः करूणो रौद्रइत्यपि ।।

आलम्बनविभावो भगवान्, उद्दीपनविभावः तुलसी चन्दनादिः, अनुभावो नेत्र विक्रियादिः, व्यभिचारिणोः निर्वेदादयः। भगवदाकारता रूप रसाख्यः व्यभिचारणो स्थायिभावः परमानन्द साक्षात्कारात्मकः प्रादुर्भवति, स एव भक्तियोग इति, तंपरमं निरतिशयं पुरूषार्थं वदन्ति रसज्ञाः । - ह० र० सि०, पृ० 3

भक्ति रसामृत सिन्धु के अनुसार विभाव, अनुभाव, सात्विक एवं व्यभिचारी भाव के द्वारा भक्त के हृदय में कृष्णरतिरूप स्थायीभाव का आस्वाद भक्ति रस है। इस रस में भगवान् आलम्बन विभाव, तुलसी चन्दन आदि उद्दीपन विभाव, अश्रुपात, नेत्र निमीलन आदि अनुभाव, तत्व-ज्ञान-जन्य निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव भगवदाकारता रूप भक्ति-रस में अभिव्यक्त होते हैं।

जो आलम्बन हैं वही भक्त के हृदय में निजाकार से प्रतिबिम्बित होकर भक्ति रस रूप में अभिव्यक्त हो जाते हैं।

देवता विषयक रतिभाव को भक्ति रस की कोटि तक पहुंचाने के लिए, हम विचार करेंगे कि अन्य रसों की भांति क्या इसका भी साधारणीकरण होता है यह भाव भी सहृदय जन संवेद्य है या नहीं तथा प्राचीन आचार्यों की बतायी रस प्रक्रिया से इसका भेद तो नहीं

भक्ति रस की निष्पत्ति -
================

आनन्द की स्थिति ही रस तत्व की चरम लक्ष्य तथा लक्षण है। भरतानुयायियों का यही मत है। भक्ति-सम्प्रदाय के आचार्य भी इस प्रक्रिया के विरोधी नहीं। रसो वै स: जीवन का परम पुरूषार्थ आनन्द ही है। दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति का समावेश भी आनन्द में हो जाता है। पुरूषार्थ के रूप में जिन धर्मादि का परिगणन किया जाता है उनका भी फल आनन्द है।

आनन्द का अधिष्ठान आत्मा है। जीव में आनन्दांश का प्रतिभास पाया जाता है। सच्चिदानन्द का अंग होने के कारण जीव में आनन्दानुभूति की उपलब्धि अस्वाभाविक नहीं है। लौकिक आनन्द एक तो विषय - जन्य होता है दूसरे क्षणमात्र रस-शास्त्रियों का लक्ष्य इसी जीवगत आनन्दांश का उद्बोधन कराना है। अत: विभावादि के माध्यम से रसास्वादन की प्रक्रिया पर विचार करना ही भरतादि का लक्ष्य है। यह वस्तुत: परमास्वाद की भूमिका

है। विषय-प्रवृत-जनों के लिए ‡ब्रह्मविषयी‡ पूर्ण आनन्दानुभूति दुष्कर है। इसलिये आचार्यों ने न तो परमानन्द प्राप्ति में समर्थ श्रवणादि साधनों पर विचार किया और न इसमें बाधक निखिल अज्ञान के उन्मूलन पर ही विशद रूप से विचार किया। भरत के जिस नाट्यपीयूष का आविर्भाव किया गया उसका लक्ष्य जीवगत आनन्दांश का आस्वादन कराना ही था। यह पूर्ण ब्रह्मानन्द की पूर्व भूमिका है। प्राकलन-आचार्यों और भक्ति रस के आचार्यों में एक अन्तर है- भक्तिशास्त्र के आचार्यों ने जीवगत अंशमात्र आनन्द को ही साध्य नहीं बनाया अपितु उनका लक्ष्य था आनन्दराशि भगवद्गत आनन्द का आस्वादन कराना। प्रचुर रसानुभूति तो तभी होती है जब परमानन्द स्वरूप भगवान् स्वयं मनोगत हो जाते हैं।

आचार्य मधुसूदन ने कहा है -

भगवान् परमानन्दस्वरूपं हि। मनोगतस्तदाकारोरसतामेतिपुष्कलम् ।

भक्ति-सम्प्रदाय का यह सिद्धान्त भरत का विरोधी नहीं। उसका विकास मात्र है। विषयों की ओर मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। उनसे रसास्वादन सरल होता है। इसी के द्वारा भरत ने परमास्वाद का मार्ग प्रशस्त किया। जब तक मानव मनोवृत्ति उस परमास्वाद के अंशमात्र लौकिक-रस में निष्णात नहीं हो जाती तब तक परम रसास्वाद की इच्छा कैसे जाग्रत हो सकती है।

अतः प्राकृत-रस परिचय को ही अपना लक्ष्य बनाकर भरतमुनि ने परमतत्व विषयक अप्राकृत रस की भी स्वीकृत दे दी। इसीलिए चतुर्वर्ग फलप्राप्ति को ही प्रयोजन रूप में स्वीकार किया है।

लक्ष्य अलग है, अतः आस्वाद में तथा निष्पत्ति में भी भेद होना चाहिए अतः निष्पत्ति के विषय में, जितनी भी पुरानी व्याख्याये हैं, वे भक्ति-रस विषयक निष्पत्ति से मेल नहीं खातीं।

यह भट्टलोल्लट के उत्पत्तिवाद या आरोपवाद से भिन्न है। शङ्कुक के अनुमितिवाद से भी भिन्न है। इन दोनों पक्षों में आचार्यों द्वारा प्रदर्शित विप्रतिपत्तियां हैं ही, साथ ही भक्ति रस में भक्त का अपना भाव ही आस्वाद-गोचर होकर रसरूपता को धारण करता है।

न तो इसकी उत्पत्ति अनुकार्य में होती है और न नट में हेतु (पक्षधर्मता) का ग्रहण सम्भव है। पक्षधर्मता का ग्रहण नाट्य में तो सम्भव है किन्तु भक्ति के क्षेत्र में जहां रसानुभूति में कर्तृत्व श्रवणादि पर आधारित है, यह प्रक्रिया कैसे सम्भव है

इसलिए इसमें भट्टनायक की भावकत्व और भोजकत्व रूप दो व्यापारों की नवीन कल्पना भी सफल नहीं होती - जिसमें एक के द्वारा विभावादि का साधारणीकरण किया जाता है और दूसरे के द्वारा सत्वोद्रेक से होने वाली संविद्विश्रान्ति सिद्ध की जाती है। भक्ति-रस में अभिनव के प्रमातृ गत सहजात मनोभाव के आस्वादन से भी रस निष्पत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि अन्य पात्रों के भावों का प्रधान पात्र के भाव में विलय और प्रधान पात्रगत भाव की सहृदयता भाव से एकतानता का सिद्धान्त भी लागू नहीं होता। भक्ति रस में भाव का आश्रय भक्त ही होता है। नाट्यगत पात्र नहीं, जैसा कि लौकिक रस में हुआ करता है। भक्ति रस में आश्रय और आलम्बन अलग-अलग होते हैं। कृष्ण राधा दोनों आलम्बन होते हैं, आश्रय तो भक्त हैं। अतः रसानुभूति की नवीन प्रक्रिया करनी पड़ी।

सर्वाधिक नवीनता स्थायीभाव की कल्पना में है न तो भक्ति रस के प्रतिष्ठापक जात एव हि जन्तुरियतीभिः संविद्भिः परीतो भवति कहते हैं और न ह्येच्चेतनाशून्यः प्राणी भवति। वे केवल एक स्थायीभाव स्वीकार करते हैं। भक्ति । आचार्य भक्ति को नित्य सिद्ध भाव ही मानते हैं। कुछ लोगों के अनुसार यह उपार्जित है और संवर्धित भाव है। उनके अनुसार रति आदि के समान भक्ति प्रकट नहीं हो जाती उसके लिए साधना करनी पड़ती है। कहा जा सकता है कि साधना के द्वारा किसी नवीन भाव की उपलब्धि नहीं की जाती प्रत्युत नित्य सिद्ध भाव को प्रकट करने के लिये ही साधना करनी पड़ती है - नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हि साध्यता

साधना के क्रम से भक्ति का उदय होता है - आदोश्रद्धा ततः साधु-सङ्गो य भजन क्रिया ।

जिनके हृदय भगवद्वासना से वासित होते हैं, श्रवणादि से उनके हृदय द्रवित हो उठते हैं और भक्ति का उदय हो जाता है।

स्थायीभाव से रस निष्पत्ति - स्थायीभाव से इस निष्पत्ति के विषय में भक्त आचार्यों का सामान्य आचार्यों से विशेष मतभेद नहीं है। भरत का अतिदेश किया गया है। रूप गोस्वामी ने परिभाषा भी साहित्य दर्पण से मिलती जुलती हुई दी है। मधुसूदन ने भी।

स्थायी भाव सामाजिकों में रहता है। जब उसका संयोग विभावादि से होता है तब सामाजिक तथा अभिनेय से उसके भेद का तिरोधान हो जाता है। भक्तिरसामृत सिन्धु में अभेद प्रतीति के साथ ~~म~~ भगवद्गत परमानन्द भक्त में आजाता है - यही रस कहलाता है।

1. स्थायीभाव सामाजिक गत होता है, सामाजिक की चित्तवृत्ति ही रस रूपता को धारण करती है। भक्तिरसामृत सिन्धु के तृतीय उल्लास में कहा गया है - आनन्द तो आत्मा का स्वरूप है। ब्रह्म अनंत है, अत: आनन्द का आधार कुछ है नहीं, किन्तु उसका अभिव्यक्त करने वाली सात्त्विक वृत्तियाँ तो सामाजिक के मन में रहती हैं। सामाजिक का मन आधार है।

2. रस सर्वदा सुखात्मक ही होता है। करुणादि में सुख रूपता विद्यमान रहती है। मधुसूदन ने भी रस की परिभाषा में सुख का समावेश किया हैं -

विभावेरनुभावैश्च सात्त्विके व्यभिचारिभि:
स्थायिभाव: सुखत्वेन त्यज्यमानोरसो भवेत्

स्थायी भाव ही रसरूपता को धारण करता है। इस विषय में मतभेद है। अभिनव के अनुसार - स्थायि विलक्षणों एव रस: कुछ लोगों के अनुसार ज्ञातस्ववर सम्बन्ध से भिन्न साधारणीकरण की प्रक्रिया से विभाव अनुभाव और संचारी भाव में अवगाहन करने वाली एक समूहावलम्बनात्मिका बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। वह शीघ्र ही उत्तम सुख को अभिव्यक्त करती है। यही रस है। उन लोगों के मत में स्थायीभाव को रस कहना एक औपचारिक

प्रयोग है किन्तु भक्त आचार्यों के मन में स्थायीभाव ही रस रूपता को धारण करता है। स्थायीभाव स्वयं सुखमय भाव है। रस की अभिव्यक्ति ही होती है - इस दिशा में व्यंजनावाद वालों के सभी सिद्धान्त इन आचार्यों को मान्य हैं। शब्द व्यंजक होता है। रीति और गुण का रस से वही सम्बन्ध है जो अभिव्यंजनावाद वालों ने माना है। रसों की असंलक्ष्यक्रमकार्यज्ञाप्यादिभिन्नता तथा निर्विकल्पक आस्वादरूपता इत्यादि भी मानी जाती है।[1]

रस में तादात्मय का सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है। यह सिद्धान्त रस की दिशा में ठीक है। रसाभास की दिशा में भी भक्ति सम्प्रदाय में कोई दोष नहीं। क्योंकि भक्ति सिद्धान्त में सभी भाव भगवद्गति के ही पोषक हैं। इसमें भगवान् आलम्बन भी हैं और स्थायीभाव के रूप में भी उनका प्रत्यायन होता है। अतः उनसे तादात्म्य स्थापित करना स्वाभाविक ही है। भक्त आचार्य सभी भावों को रतिमूलक ही मानते हैं। इसी आधार पर मुख्यतया अमुख्य रसों की व्यवस्था की है।

रस निष्पत्ति पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। एक विस्तार की दृष्टि से, दूसरा गहराई की दृष्टि से। भक्ति न तो सर्वजनीन भाव है न सर्वजनसंवेद्य और न मूल प्रवृति। प्राचीन आचार्यों के विवेचित स्थायीभाव मानव तथा पशु में एक से पाये जाते हैं।

इस प्रकार की सर्वजन संवेद्यता भक्ति में नहीं है। इसलिए पुराने आचार्यों ने भक्ति को पृथक रूप से रस नहीं माना है। भक्ति भक्त को आनन्द देती है। आचार्यों ने इसे भाव की कोटि में रखा है, रस की कोटि में नहीं।

भक्तिरसामृत सिन्धु के भाव प्रकरण में संचारीभाव और स्थायी भाव दोनों भाव संज्ञा से अभिहित हैं। भाव चित रूपी लाख को पिघलाने वाले होते हैं। पिघल कर चित जब भगवदाकरता हैं परिणत हो जाता है। उसे भक्ति कहते हैं। मनोवृति का अर्थ भगवदाकरता में मन की परिणति है।[2]

---

1 अभिनवगुप्त

2 तदाकारतैव हिं सर्वत्र वृतिशब्दार्था स्माकं दर्शने - मधुसूदन

इस स्थिति में संसार की सभी वस्तुएं भगवान् के रूप में दिखायी पड़ने लगती हैं। भगवन्मय विश्व को देखने वाला परम भागवत कहा जाता है। इस प्रकार का संस्कार अविनाशी होता है। अतः भगवदाकारता परिणति रूप भक्ति को स्थायी भाव की संज्ञा प्रदान की जाती है। जब मनोनिनिष्ट भगवत्स्वरूप, विभावादिकों के संयोग से अभिव्यक्त हो जाता है तब परमानन्द रूप रस की अनुभूति मानी जाती है। ‡ जब कामादि से चित्त द्रवित हो गया हो, उस समय यदि उसमें भगवत्प्रेम रूपी रंग मिला दिया जाय तो वह रंग स्थायी हो जाता है। इस प्रकार आलम्बन विभाव और स्थायीभाव दोनों एक हो जाते हैं किन्तु इनका भेद व्यवहार सिद्ध है।

भक्ति रस की स्थापना के पश्चात् अध्यात्मरामायण के भक्तिरस युक्त कुछ स्थलों का यहां वर्णन किया गया है।

पीछे हम देख चुके हैं कि भक्ति-रस में भगवान् आलम्बन विभाव तुलसी, चन्दन आदि उद्दीपन विभाव, अश्रुपात, नेत्र निमीलन अनुभाव, तत्व-ज्ञान जन्य निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव तथा भगवदाकरता रूप स्थायी भाव है, जिनसे भगवदाकारात्मक परमानन्द साक्षात्कार रूप भक्तिरस अभिव्यक्त होता है। अध्यात्म-रामायण में राम भरत मिलन के प्रसङ्ग में भरत का यह चित्र[1] भक्त के हृदय की भगवत्विषयिणी रति भक्ति-रस में प्रवाहित करता है- जिनका हृदय अद्भुत प्रेमरस से भरा हुआ है, मन रघुनाथ जी की भावना में डूबा है तथा वक्षस्थल आनन्दाश्रुओं से भीगा है, वे भरत जी धीरे धीरे श्रीहरि के आश्रम के निकट पहुंचे। यहां श्रीहरि आलम्बन हैं, भरत जी आश्रय हैं, आनन्दजाश्रुस्नापितस्तनान्तरः आदि अनुभाव है। भरत के हृदय का दुःख तथा निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव निर्वेद संचारी भाव, विगाढचेता रघुनाथ

---

1 इत्यद्भुत प्रेमरसाप्लुताशयो, विगाढचेता रघुनाथ भावने।
आनन्दजाश्रुस्नापितस्तनान्तरः शनैरवापाश्रमसन्निधिंहरे : ।।
- 2/9/4

भावने की भावना ही स्थायी भाव है। ये विभावादि भगवदाकारता रूप भक्तिरस में अभिव्यक्त हो रहे हैं।

शबरी-प्रसङ्ग में शबरी की अत्युत्कट भक्ति, भक्तों को भक्ति-रस में निमज्जित कर देती है। इसका चित्रण इस प्रकार हुआ है -

लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्र को समीप ही आते देखकर शबरी अत्यन्त हर्ष से तुरन्त उठ खड़ी हुई। उसके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर आये और वह भगवान् राम के चरणों में गिर पड़ी तथा उनका स्वागत कर कुशल प्रश्नादि के पश्चात् उन्हें सुन्दर आसन पर बैठाया। [1]

यहां पर लक्ष्मण सहित भगवान् राम आलम्बन है, शबरी आश्रय है, भगवान् का वेषादि उद्दीपन है, शबरी का हर्ष से उठ खड़ा होना, आनन्दाश्रु का भर आना, राम के चरणों में गिर पड़ना आदि अनुभाव है। यहां शबरी के हृदय का अनुराग ही भगवदाकारतारूप भक्तिरस के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है।

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी भक्ति-रस उपस्थित हुआ है।

---

1 शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम् ।
आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा।। 3/10/5
पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना ।
स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने संन्यवेशयत् ।। 3/10/6

अलङ्कार-योजना

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम् - भामह काव्यालङ्कार
1/13

'नायिका का मुख बहुत सुन्दर है' - यह कहने की अपेक्षा, 'नायिका का मुख चाँद सा है' - यह कहना चारुतर एवं आलंकारिक प्रयोग माना गया है।[1] संस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थों में इनअलङ्कारों का बहुत अधिक विवेचन हुआ है। अलङ्कार चमत्कारमयी उक्तियों के प्रामाणिक स्तर हैं। जहां शब्दों से चमत्कार हो वहां शब्दालङ्कार और जहां अर्थ में चमत्कार हो वहां अर्थालङ्कार होता है। चमत्कार कहीं शब्द में होता है, कहीं अर्थ में और कहीं दोनों में एक साथ।

अध्यात्मरामायण में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों ही प्रयुक्त हुए हैं। शब्दालङ्कार मेंशब्दों के चयन के द्वारा काव्य में मनोहरता आती है। इनमें शब्द का परिवर्तन कर देने से अलङ्कार का भी रूप नष्ट हो जाता है। प्रयुक्त शब्द के परिवर्तन की असहनशीलता ही शब्दालङ्कार की पहचान है।

अध्यात्मरामायण में शब्दालङ्कारों में केवल अनुप्रास का प्रयोग हुआ है।

<u>अनुप्रास</u> -

वर्णों की समता को अनुप्रास कहते हैं।[2] यहां वर्णसाम्य का अर्थ है स्वरों के असमान होने पर भी व्यंजनासादृश्य का होना। अनुप्रास कहते हैं ऐसी आवृत्ति को जिसमें बहुत व्यवधान न हो और जो रसभावादि के अनुकूल हो।

---

1 भामहकाव्यालङ्कार 1/13

2 वर्णसाम्यमनुप्रासः - काव्यप्रकाश नवमउल्लास

रसादिभिरनुगत: प्रकृष्ट आसो न्यास: अर्थात् इस प्रकार का शब्दचयन जिसमें सदृश व्यंजनों का रसभावादि के अनुकूल ऐसा अव्यवहित विन्यास हो जो मनोरंजक लगे।[1]

यह दो प्रकार का है [1] - 1. छेकानुप्रास, 2. वृत्यनुप्रास

1. एक से अधिक व्यंजन का एकबार जो साम्य है वह छेकानुप्रास है।[2]

जैसे - अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं

सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम्

उपरमपरमं परात्मभूतं

सततमहं प्रणतो ऽस्मि रामचन्द्रम् ।।[3]

यहाँ अगणितगुणम रचना ऐसी है जिसमें ग् और ण् ﴾जैसे कि अगणित गुण﴿ तथा त् ﴾जैसे कि सततमहं﴿ तथा प् र् ﴾जैसे कि उपरमपरमं परात्मभूतं﴿ । व्यंजनों का एक बार तथा अनेकाबार सादृश्य प्रतीत होता है। व्यंजनों की यह आवृत्ति रसाभावादि की प्रतीति में व्यवधान नहीं उपस्थित करती। अत: यहाँ छेक अथवा विदग्ध कवि किंवा सहृदय जन का अनुप्रास है।

<u>वृत्यनुप्रास</u> -

वह है जिसका रूप है एक अथवा एक से अधिक व्यंजन का एक से अधिक बार सादृश्य[4]।

जैसे - गिरिशगिरिसुतामनोनिवासं

गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ।।[5]

यहाँ पर ग् र् तथा म् व्यंजनों की एक से अधिक बार आवृत्ति हुई है।

---

1 छेकवृत्तिगतो द्विधा - काव्यप्रकाश, नवम उल्लास

2 सो नेकस्य सकृत्पूर्व: - काव्यप्रकाश 9, नवम उल्लास

3 अ0 रा0 3/8/44

4 एकस्याप्यसकृत्पर: - काव्यप्रकाश 9/79

5 अ0 रा0 3/8/49

उपर्युक्त वर्णानुप्रास के अतिरिक्त, एक शब्दानुप्रास भी है जिसे लाटानुप्रास कहते हैं जिसमें समानार्थक किन्तु भिन्न तात्पर्य वाले शब्दों का सादृश्य रहा करता है।[1] यह अनुप्रास ऐसे सार्थक वर्णों की आवृत्ति है जहां पर शब्द और अर्थ के अभिन्न होने पर तात्पर्य का भेद रहा करता है। इसे, लाट देश के कविजन का प्रिय अनुप्रास होने के कारण लाटानुप्रास कहा जाता है। कुछ आलङ्कारिक इसे पदानुप्रास भी कहा करते हैं।[2] इस प्रकार चमत्कारमयी उक्ति का प्रयोग ग्रन्थ में नहीं हुआ है।

लाटानुप्रास वहां भी होता है जहां किसी प्रातिपादिक पद की, एक समास में अथवा भिन्न समास में अथवा समास और असमास में आवृत्ति प्रतीत हो। यहां पर पद का नहीं अपितु नाम अथवा प्रातिपादिक का ही सारूप्य-सादृश्य-अपेक्षित है जो कि चाहे एक समास में हो, चाहे भिन्न समास में हो चाहे समास और असमास में हो।[3]

जैसे - नमस्तुभ्यं भगवते विशुद्धज्ञानमूर्तये ।
आत्मारामाय रामाय सीतारामाय वेधसे ।।[4]

यहां पर रामाय रामाय की जो आवृत्ति है वह भिन्न समास में नामपद की आवृत्ति का दृष्टान्त है। निम्न श्लोकों में भी भिन्न समास में नामपद की आवृत्ति हुई है।[5]

स्मितरुचिरविकासिताननाब्ज
मतिसुलभं सुरराजनीलनीलम् ।[6]

---

1 शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रत: - काव्यप्रकाश 9/8।

2 शब्दगतो नुप्रास: शब्दार्थयोरभेदे प्यन्वयमात्रभेदात्
लाटजनवल्लभत्वाच्च लाटानुप्रास: । एष पदानुप्रासइत्यन्ये

3 वृत्तावन्यत्र वा ।
नाम्न: स वृत्य वृत्योश्च - काव्यप्रकाश, नवम उल्लास

4 अ0 रा0 3/1/4 हरिकमलज शम्भुरूपभेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्त: ।

5 रविशिखि जल पूरितोदपात्रे
स्वरभरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे। । 3/8/52

6 अ0 रा0 3/8/5।

श्लोक की उपर्युक्त पंक्तियों में नील नील की आवृति एक समास में नाम-पद की आवृति है।

आत्मारामाय रामाय में समस्त और असमस्त राम पद की आवृति हुई है।

अन्य शब्दालङ्0कारों का प्रयोग ग्रन्थ में नहीं हुआ है। यमक का कहीं कहीं पर प्रयोग हुआ है। जैसे -

सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्0घ्रिं
सुखवरदं रघुनायकं प्रपद्ये।। [1]

यहां पर सुखवरदनुजेन्द्र ‡ देव औरअसुर पतिगण‡ जिनके चरणकमलों की सेवा किया करते हैं उन सुरवरदं ‡देवताओं के वरदायक‡ रघुनाथ की शरण में जाता हूँ। ‡ यहां द्वितीय पाद में सुरवरद रूप वर्णसमूह की आवृति पुन: होने से यमक है।‡

क्योंकि इसका लक्षण है - अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुन: श्रुति: यमकम्।[2]

यमक का प्रयोग भी अध्यात्म रामायण में न के बराबर ही हुआ है।

देवताओं, राक्षसों आदि के द्वारा किये गये भक्ति भाव से युक्त स्तोत्रों में अनुप्रास की रमणीय छटा है।

<u>अर्थालङ्0कार</u> -

शब्दालङ्0कारों की अपेक्षा अर्थालङ्0कारों में अधिक तथा अनिवार्य रूप से रस निर्भरता होनी चाहिये। जो उक्ति रसाक्षिप्य हृदय से निकले तथा समझी जाय वही ध्वनि-मार्ग के सफल अलङ्0कार रूप में मानी जाती है, अलग यत्न करके जोड़ी गयी उक्ति नहीं।[3]

---

1 अ0 रा0 3/8/49

2 काव्यप्रकाश नवम उल्लास

3 रसाक्षिप्ततया यस्य बन्ध: शक्य क्रियो भवेत्।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यं यो लङ्0कारो ध्वनौ मत: ।।

सभी अलङ्कारों में परिभाषा के अनुसार भी सूखी उक्तियों से अलङ्कारिता नहीं होती, अपितु इन्हें चमत्कार किंवा अतिशयोक्ति से अनुप्राणित तथा प्रतिभास्थ होना चाहिये। [1]

अध्यात्मरामायण में सर्वाधिक मात्रा में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का ही प्रयोग हुआ है।

उपमा -

अलङ्कार शिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।
उपमाकविवंशस्य मातेवेति मतिर्मम ।।

जीवनाथ रचित अलङ्कारशेखर के ग्यारहवें अध्याय (मरीचि) के इस श्लोक से उपमा अलङ्कार की यथार्थ ही प्रमुखता द्योतित होती है। उपमा वह अलङ्कार है, जिसे उपमान और उपमेय का, उनमें भेद होने पर भी, परस्पर साधारण धर्म से सम्बद्ध होना कहा जाता है।[2] उपमान और उपमेय में भेद न होने पर अनन्वय अलंकार का होना मम्मट ने माना है। रूद्रट तो उसे उपमा का ही एक भेद मानते हैं।

आचार्य रूद्रट ने समस्त अर्थालङ्कारों को चार वर्गों में विभक्त किया है। उनके अनुसार अर्थालङ्कारों के चार मूल आधार हैं।[3] 1. वास्तव, 2. औपम्य, 3. अतिशय, 4. श्लेष। शेष अलङ्कार इन्हीं के विशेष रूप हैं।

---

1 सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नो स्यांकविना कार्यः को लंकाररो नयाविना ।। भामह, काव्यालंकार 2/85

2 साधर्म्यमुपमा भेदे - काव्यप्रकाश 9/87

3 अर्थस्यालङ्कारावास्तवमौपम्यातिशयश्लेषाः ।
एषामेव विशेषा अन्ये तु भवन्ति निः शेषा ।। 7/9
- काव्यालङ्कार ।

किन्तु परवर्ती आचार्यों ने अधिकतर अलङ्कारों के मूल में उपमा की ही सत्ता मानी है। अप्पयदीक्षित ने तो अपनी चित्र-मीमांसा में उपमा का प्रस्ताव करते हुए यहां तक कह दिया है कि उपमेका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्। रजयति काव्याङ्गने नृत्यन्ती तद्विदाचेत: ।

काव्य-रूपी नाटकशाला में यह नटी-रूप अकेली उपमा ही विभिन्न [चित्र] अलङ्कारों के रूप को धारण कर अपना नृत्य दिखाती हुई सहृदयों के चित्त को आह्लादित करती है।[1] यदि देखा जाय तो अनन्वय, प्रतीप, स्मरण, रूपक, परिणाम, भ्रान्तिमान आदि सारे अलङ्कार उपमा के ही विवर्त हैं। अप्पय दीक्षित अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं -

जैसे ब्रह्म-ज्ञान हो जाने से सम्पूर्ण चित्र काव्य का ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार उपमा के ज्ञान से सम्पूर्ण चित्र काव्य का ज्ञान हो जाता है। अत: सर्वप्रथम उसी [उपमा] का भी सभी भेदों सहित निरूपण किया जाता है।[2]

राजशेखर ने कहा है - मैं अलङ्कारों में सर्वश्रेष्ठ तथा काव्य-वैभव की सब कुछ इस उपमा को कविवंश [कवियों] की माता के ही समान समझता हूँ।

दण्डी ने उपमेय और उपमान में जिस किसी प्रकार के सादृश्य की प्रतीति को उपमा कहा है।[3]

आर्थी उपमा का एक उदाहरण - राम के प्रफुल्ल मुख के वर्णन में मिलता है - राम । आज बड़े भाग्य से मैं तुम्हारा विकसित कमल के

---

1 अप्पय दीक्षित

2 तदिदं चित्र विश्वं ब्रह्मज्ञानादिवोपमाज्ञानात् ।
ज्ञातं भवतीत्यादौ निरूप्यते निखिल भेद सहिता सा।।

3 यथा कथंचित्सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते उपमा नाम सा ....
- काव्यादर्श 2/14

समान मुख देख रहा हूँ। मुनिवर के अनुग्रह से सब प्रकार मेरा कल्याण ही हुआ।

यहाँ पर एक ही वाक्य में मुख उपमेय है, अम्बुज उपमान है, वाचक शब्द उपमा है, सामान्य धर्म फुल्ल है।[1]

लुप्तोपमा का उदाहरण, इस श्लोक के वर्णन में दृष्टव्य है[2] -

' उस समय मैंने इसे देखा और इसमें मुझे पुत्रीवत् प्रीति हुई इसलिये मैंने इस चन्द्रमुखी को अपनी प्रिय पत्नी को सौंप दिया।' यहाँ शरच्चन्द्र निभानना में वाचक लुप्ता तथा धर्मलुप्ता उपमा है। इसी प्रकार पूर्णोपमा एवं लुप्तोपमा के अनेक उदाहरण ग्रन्थ में देखे जा सकते हैं।

राम के सौन्दर्य-वर्णन में आर्थी उपमा का प्रयोग बहुत हुआ है। बालकाण्ड के प्रथम अध्याय में इन्द्रनीलप्रतीकाशं ‡श्लोक । अ0_।‡ बालारुण-प्रतीकाश: ‡श्लोक 36, सं0 3‡ पूर्णेन्दु सदृशाननौ ‡श्लोक 39, सं0 5‡ रत्नकुण्डलाङ्गयम् ‡श्लोक 59, अ0 3‡ आदि में पूर्णोपमा के दर्शन होते हैं।

इसी प्रकार पद्यविशाललोचनम ‡श्लोक 45, सं0 5‡ नीलमेघनिभ: ‡श्लोक 7, अ0 7‡ आदि में वाचक लुप्तोपमा दृष्टव्य है।

दार्शनिक विवेचनों में प्रेम एवं संसार की असारता आदि के वर्णन में भी उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। एक स्थल पर लक्ष्मण को समझाते हुए राम कहते हैं - किन्तु ये भोग तो मेघरूपी वितान में चमकती हुई बिजली

---

1 दिष्ट्या पश्यामि ते राम मुखं फुल्लाम्बुजोपमम्
मुनेरनुग्रहात्सर्वं सम्पन्नं मम शोभनम ।
- अ0 रा0 1/6/42

2 अर्पिता प्रियभार्यायै शरच्चन्द्र निभानना ।।
- 1/6/60

के समान चंचल है और आयु अग्नि में तपाये हुये लोहे पर पड़ी हुई जल की बूंद के समान चंचल है।[1]

यहां पर इस वाक्य में - यहां भागा: उपमेय मेघवितानस्थ विद्युल्लेखा उपमान, वाचक शब्द इव तथा सामान्य धर्म चंचला: है। दूसरी उपमा का वर्णन इस प्रकार है - यहां आयु है उपमेय - अग्नि सन्तप्त लोहस्थ जलबिन्दु उपमान है, वाचक शब्द है व्रत तथा समान्य धर्म है सन्तप्तता।

भोगों की क्षणिकता का मेघस्थित विजली से उपमा करना तथा आयु की सन्तप्त लोहे पर पड़ी बिन्दु से उपमा करने से उसकी क्षणिकता की कैसी सटीक व्यंजना होती है।

<u>रूपक-</u>

जहां उपमान और उपमेय को एक दूसरे से नितान्त अभिन्न वर्णन किया जाय वहां रूपक अलङ्कार माना जाता है।[2]

ब्रह्मा की स्तुति में - आप भगवान् विष्णु हैं और जानकी, लक्ष्मी जी हैं। आप शिव हैं और जानकी पार्वती, आप ब्रह्मा है और जानकी सरस्वती आप सूर्य हैं और जानकी प्रभा हैं।

यहां अभेद के द्वारा राम को विष्णु जानकी को लक्ष्मी, पुन: राम को शिव, ब्रह्मा, सूर्य तथा जानकी पार्वती, सरस्वती और प्रभा कहा गया है।[3]

एक स्थान पर - संसारामयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव ते में अभेद के कारण संसार को आमय तथा भक्ति को भेषज कहा गया है। अन्यत्र भी रूपक

---

1 भोगामेघवितानस्थ विद्युल्लेखेव चंचला: ।
आयुरप्याग्नि सन्तप्त लोहस्थ जलबिन्दुवत ।। 2/4/20

2 तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो:/ का0 प्र0 10/139

3 त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मी: शिवस्त्वं जानकी शिवा।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ।।
- अ0 रा0 2/1/13

के प्रसङ्ग आये हैं।

उत्प्रेक्षा -

कवियों ने किसी नई सूझ या कल्पना का चमत्कार दिखाने के लिए उत्प्रेक्षा अलङ्कार का सबसे अधिक आश्रय लिया है। सादृश्य के आधार पर प्रस्तुत वस्तु में अनकों अप्रस्तुत वस्तुओं की योजना करना कल्पना कुशल कवियों का प्रधान उद्देश्य रहा है। इसीलिए बाद के आचार्यों ने उत्प्रेक्षा का विवेचन बड़े विस्तार के साथ किया। उसके अनेक भेद उपभेद गिनाये किन्तु भामह, दण्डी आदि पूर्वाचार्यों ने उत्प्रेक्षा का बड़े संक्षेप में विवेचन किया है। मम्मट ने (उपमेय) के समान उपमान के साथ ऐक्य की संभावना को उत्प्रेक्षा कहा है।

सम्पूर्ण अध्यात्मरामायण में उत्प्रेक्षा की सुषमा दृष्टिगत होती है। उत्प्रेक्षा के कुछ उदाहरण यहां उद्धृत किये जाते हैं। क्रोधयुक्ता कैकेयी के वर्णन में कवि की उत्प्रेक्षा है - इसी समय अपने सामने सिंहिनी के समान बैठी हुई रानी कैकेयी को देखकर कहने लगे। हे भद्रे मेरे प्राणों को हरण करने वाले तुम ये क्या वचन बोल रही हो।[2]

यहां पर व्याघ्रीमिवपुःरस्थिताम् में इव द्वारा वाच्योत्प्रेक्षा है।

स्वभावोक्ति -

जिसमें बच्चों आदि की आत्मगत क्रिया, रूप आदि का वर्णन होता है, उसे स्वभावोक्ति अलङ्कार कहते हैं।[3]

---

1 संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेनयत् - काव्यप्रकाश 10/137 ।

2 इत्यालोक्य पुरः पत्नीं व्याघ्रीमिव पुरःस्थिताम ।।
- अ० रा० 12/3/25

3 स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनाम । का० प्र० 10/186

भामह स्वभावोक्ति को अत्यन्त प्राचीन अलङ्कार मानते थे। उन्होंने लिखा है कि कुछ (आचार्यों) का कहना है कि वस्तु की अपनी अवस्था, स्वभाव का वर्णन अर्थात् स्वभावोक्ति भी अलङ्कार है।[1]

दण्डी ने स्वभावोक्ति और जाति को प्राय: एक ही मानते हुये उसका लक्षण इस प्रकार किया है जो पदार्थ के विभिन्न अवस्थागत रूपों का यथार्थ विवरण देता है, उसे स्वभावोक्ति या जाति अलङ्कार कहते हैं।[2]

रुद्रट ने स्वभावोक्ति का जाति नाम रक्खा है। जिस वस्तु की लोक में जैसी चिर प्रसिद्ध संस्थिति, अवस्थिति या अन्य क्रियादि हो उसको ठीक उसी प्रकार से कहना जाति अलङ्कार कहा जाता है।[3]

अरण्यकाण्ड के छठे सर्ग में मायामृग का चित्रण है - किसी क्षण तो वह चौकड़ी मारने लगता है और कभी पास आकर ठिठक जाता है फिर भय से (भागने लगता है) इस प्रकार वह वंचक मायामृगरूप धारण कर सीता को मोहित कर विचरने लगा।[4] यहाँ मृग के भागने के स्वाभाविक चित्रण में स्वभावोक्ति

---

1 स्वभावोक्तिरलङ्कार इति केचित्प्रचक्षते ।
अर्थस्य तदवस्थत्वं स्वभावो भिहित: ।। 2/93
- भामह। काव्यालङ्कार

2 नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती ।
स्वभावोक्तिश्चजातिश्चैत्माद्या सा अलङ्कृति: ।। 2/8 काव्यादर्श

3 संस्थानावस्था न् क्रियादि मद्यस्य मादृशं भवति
लोके चिरप्रसिद्धं तत्कथनमन्यथा जाति : ।।
- काव्यालङ्कार 7/30

4 क्षणं च धावत्यवतिष्ठते क्षणं, समीपमागत्य पुनर्भयावृत: ।
एवं स मायामृगवेषरूपधृक्, च चार सीतां परिमोहयन्खल: ।। 41 ।।
- स0 7 अर0 का0

अलङ्0कार है।

पुनः सुन्दरकाण्ड के 5 सर्ग में वानरों के स्वाभाविक चंचल स्वभाव का वर्णन इस प्रकार है - किसी ने उनकी पूंछ चूमी और कोई अति उत्साह से नाचने लगे। तदनन्तर हनुमान् जी के साथ वे सब प्रस्रवण पर्वत पर गये।[1] यहां प्रसन्नता के अवसर पर वानरों के स्वभाव वर्णन में स्वभावोक्ति है।

किष्किन्धाकाण्ड के प्रथम सर्ग में पम्पासर के वर्णन में स्वभावोक्ति अलङ्0कारदर्शनीय है। पम्पासर का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण है - उसका विस्तार एक कोस का था और उसमें अति निर्मल अगाध जल भरा हुआ था। सब और खिले हुए कमल, कहार, कुमुद, उत्पल आदि सुशोभित हो रहे थे।[2] उस सरोवर में जहां तहां हंस और कारण्डव आदि पक्षी विहार कर रहे थे, चक्रवाकादि उसकी शोभा बढ़ा रहे थे और जलकुक्कुट, कोयष्टि तथा क्रौंच आदि पक्षियों के कलरव से वह शब्दायमान हो रहा था।[3]

संसृष्टि -
======

संसृष्टि अलङ्0कार वह है जिसे पूर्वप्रतिपादित अलङ्0कारों को परस्पर निरपेक्षता में भी एकत्र अवस्थिति का चमत्कार कहा करते हैं। यहां संसृष्टि का अभिप्राय है एकार्थ समवाय का अर्थात् एक शब्द अथवा अर्थ अथवा

---

1 केचिच्चुचुम्बुर्लाङ्0गूलं ननृतुः केचिदुत्सुकाः।
हनूमता समेतास्ते जग्मुः प्रस्रवणं गिरिम ।। 17 / सं0 5 सु0 का0

2 क्रोशमात्रं सुविस्तीर्णमगाधमलशम्बरम ।
उत्फुल्लाम्बुजकहारमुदोत्पलमण्डितम्।। 2 / 1 सं0 कि0 का0

3 हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकादिशोभितम् ।
जलकुक्कुटयष्टिक्रौंचनादोपनादितम् ।।
- 3/ 1 सं0 कि0 का0

शब्दार्थ रूप काव्य वस्तु में एक से अधिक अलङ्0कारों के सम्बन्ध का । इस प्रकार सबसे अधिक अलङ्कारों की, परस्पर निरपेक्ष रहते हुये भी जो एकत्र अवस्थिति है, वही संसृष्टि अलङ्0कार है।

अध्यात्मरामायण [1] के सुन्दर काण्ड में प्रथमसर्ग के तीसरे श्लोक में एक से अधिक अर्थालङ्0कारों की संसृष्टि मिलती है —

शब्द सौन्दर्य

कर्तव्या चाथ सारे पि काव्ये शब्दविचित्रता ।
विना घण्टाटणत्कारं गजो गच्छत शोभते ।। [2]

काव्य के सौशब्दय से, उसकी वाह्यशोभावृद्धि के साथ आत्मभूत रस की भी निखरी हुई अभिव्यक्ति होती है। रीतियों एवं गुणों से सम्बन्ध रखती हुई, शब्दों की छोटी इकाइयां रमणीय वाक्यों का निर्माण करती हैं। इन्हें सूक्तियां कहा जाता है। इसके बाद पद समूह भाषा का रूप धारण कर लेता है। छन्दों का सम्बन्ध भी शब्दों से है। छन्द ही शब्दों के शरीर हैं।[3] प्रस्तुत स्थल पर क्रमशः अध्यात्मरामायण के 1. पदलालित्य, 2. भाषासौष्ठव और छन्दयोजना तथा 3 सूक्तियों का विवेचन किया जायगा।

पदलालित्य -

अध्यात्मरामायण का वर्णन संवादात्मक शैली में हुआ है । ग्रन्थ में

---

1 अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिला: ।
पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नी जनकनन्दिनीम ।।

2 xxxxx सूक्ति मुक्तावली 4/21 राजशेखर । कवीन्द्रवचन समुच्चय, इन्ट्रोडक्शन, पृ0 86

3 नानावृतविनिष्पन्नाशब्दस्यैषा अनु:स्मृता - नाट्यशास्त्र, 14/44
- काव्य प्रकाश, 66/71/81

दार्शनिक विवेचन अपेक्षाकृत अधिक हैं। वर्ण्यविषय का लघोपकथनों द्वारा पौराणिक शैली में वर्णन हुआ है। ग्रन्थ में वर्णन यद्यपि बहुत सरस एवं रमणीक नहीं है किन्तु ग्रन्थ में स्थान स्थान पर जो स्तुतियों की योजना हुई है, उनकी पदावली सरस एवं ललित है। अध्यात्मरामायण में शङ्कर कृत राम की स्तुति का एक श्लोक उदाहरण के रूप में दिया जा सकता है -

> नमो स्तु रामाय सशक्तिकाय
>
> नीलोत्पलश्यामलकोमलाय ।
>
> किरीटहाराङ्गदभूषणाय
>
> सिंहासनस्थाय महाप्रभाय। [1]

उक्त श्लोक में कोमल तथा साभिप्राय शब्दों का प्रयोग हुआ है। अनुप्रास के प्रयोग से और व्यंजनचारूत्व से पदों का लालित्य मनोहर बन गया है। इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर राम के नयनाभिराम रूप के वर्णन में पद लालित्य दर्शनीय है - दूर्वादलश्यामतनुंमहार्ह किरीटरत्नाभरणान्विताङ्गम् । आरक्तकंजायतलोचनान्तं दृष्ट्वा ययुर्मोदमतीव पुण्या: ।[2]

रीति और गुण -

साहित्यशास्त्र के ध्वनिसम्मत विकसित सिद्धान्त के अनुसार वैदर्भी, गौडी एवं पांचाली तीन रीतियां और माधुर्य ओज तथा प्रसाद नामक तीन गुण होते हैं। वचनों के विन्यास का क्रम ही रीति है।[3] मनुष्य की वाणी रीतित्रय के भेद से तीन प्रकार की होती है। वैदर्भी, गौडी, तथा पांचाली ये तीन रीतियां हैं।[4] वामन की परिभाषा में विशिष्ट पद रचना ही रीति है।[5]

---

1 अ0 रा0 6/15/51 2 अ0 रा0 6/15/24

3 वचनविन्यास क्रमो रीति: - काव्यमीमांसा, पृ0 9

4 वच: ..... त्वृच त्रिधा रीतित्रय भेदेन । तदाह: - वैदर्भीगौडीयापांचाली चैति रीतयस्तिस्र: । - काव्यमीमांसा, पृ0 31

5 विशिष्टा पद-रचना रीति - वामन काव्यालङ्कार 1/2/27

वैदर्भी रीति -

वैदर्भी में समास नहीं रहते, योगवृत्ति होती है।[1] तथा आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं अनुप्रास भी रहता है। श्रृङ्गार, करुण एवं शान्त रसों के स्थल पर माधुर्य-व्यंजक वर्णों से वैदर्भी रीति का पल्लवन हुआ है।

अध्यात्मरामायण में अयोध्याकाण्ड के अष्टम सर्ग में वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है।[2] किष्किन्धा काण्ड[3], सुन्दरकाण्ड,[4] तथा बालकाण्ड[5] में भी वैदर्भी रीति में पद की रचना हुई है।

गौडी रीति -

गौडी में समास एवम् अनुप्रास प्रचुर मात्रा में रहते हैं तथा योगवृत्ति की परम्परा सी आ जाती है।[6] अध्यात्मरामायण में , अरण्यकाण्ड[7] में, अयोध्याकाण्ड[8] में तथा किष्किन्धाकाण्ड[9] में गौडी रीति का प्रयोग किया गया है।

पांचाली -

पांचाली में समास और अनुप्रास अल्पमात्रा में रहते हैं। श्लिष्ट या लाक्षणिक उक्तियों की अधिकता होती है। कोमलता एवं सरलता पांचाली रीति

---

1 काव्यमीमांसा
2 अ0 रा0 अयोध्या काण्ड सर्ग 8, श्लोक 44 से 53
3 अ0 रा0 कि0 का0 सर्ग 8, श्लोक 55
4 अ0 रा0 सु0 का0 सर्ग 4, श्लोक 1 से 30 तक
5 बा0 का0 , स0 5, श्लोक 43 से 51 तक
6 काव्यमीमांसा
7 अ0 रा0 अर0 काण्ड, सर्ग 1 श्लोक 36 से 40 तक तथा सर्ग 2, श्लोक 27 28 से 34 तक तथा इसके अतिरक्त भी।
8 अ0 रा0 अयोध्या काण्ड, सर्ग 61 श्लोक 19 से 27 तक
9 अ0 रा0, कि0 का0, सर्ग 1/1, 3, 4 तथा कि0 का0, सर्ग 8/ श्लोक 55 तथा सर्ग 9/ श्लोक 29

के तत्त्व हैं। सरलता में भी कुछ ओजस्विता का मिश्रण रहता है।[1] अध्यात्म-रामायण में अरण्य काण्ड में पांचाली रीति का प्रयोग हुआ है।[2]

गुण-

रसधर्मभूत माधुर्य, ओज और प्रसाद तीन गुण होते हैं।

माधुर्य गुण -

यह एक ऐसा आह्लाद अथवा आनन्द है जिसमें सहृदय सामाजिक का मन पिघलता सा प्रतीत हुआ करता है - ऐसा लगता है जैसे उसमें कोई अलौकिक कोमलता व्याप्त हो गयी हो।[3] स्पर्श संज्ञक वर्ण ट ठ ड और ढ को छोड़कर। जो कि अपने वर्ग के अन्त्यवर्ण से संयुक्त होकर मधुर वर्ण ध्वनि के उत्पादक हुआ करते हैं। ह्रस्वस्वर से व्यवहित रेफ और णकार भी।[4]

कृशातिदीना परिकर्मवर्जिता, दु:खेन शुष्यद्वदनातिविह्वला।
हा राम रामेति विलप्यमाना सीतास्थिता राक्षसवृन्दमध्ये।।

माधुर्यव्यंजक वर्णादि वाली रचना है। यहां विप्रलम्भ श्रृड्0गार रस माधुर्य-स्रोत के रूप में विराजमान है।

ग्रन्थ में प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक माधुर्य एवं प्रसाद गुण के अन्तर्गत है।

प्रसाद गुण -

प्रसाद सभी रसों का एक ऐसा धर्म है जिससे सामाजिक हृदय इस

---

1 काव्य-मीमांसा

2 अ0 रा0, अर0 काण्ड, सर्ग 5 / श्लोक 58 से 61 तक

3 अह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृड्0गारेद्रुतिकारणम् । काव्यप्रकाश 8/68

4 काव्य प्रकाश 8/73

प्रकार भर उठता है जिस प्रकार अग्नि के द्वारा सूखा इन्धन अथवा जल के द्वारा साफ कपड़ा।[1] प्रसाद गुण के अभिव्यंजक वे सभी सुकुमार अथवा विकट शब्द है जिनके श्रवणमात्र से अर्थप्रतीति हो जाय।[2] सभी रसों के प्रसङ्ग में प्रसादगुण की स्थिति साधारण वर्णनों के लिए होती है। अध्यात्मरामायण की यह पंक्ति - एवमानन्दसन्दोह जगदानन्दकारक: [3] प्रसादगुणमयी रचना के अन्तर्गत है।

यहां माधुर्योचितवर्ण तथा अनुद्धतगुम्फ सभी प्रसाद का अभिव्यंजन कर रहे हैं। इसी प्रकार बालकाण्ड के इस श्लोक को भी प्रसादगुण के अन्तर्गत माना जा सकता है - शिञ्जानमणिमञ्जीर कटिसूत्राङ्गदैर्वृतम्[4] इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में प्रत्येक सर्ग के अन्त में प्रसाद गुण युक्त रचना हुई है।

ओजगुण -

आज यह गुण कहा गया है जिसमें सामाजिक हृदय का प्रज्ज्वलन-धधक उठना कहा जा सकता है। वीर रस के प्रसङ्ग में स्वभावत: औजगुण की स्थिति होती है। इसमें ऐसा लगता है कि जैसे चित की सारी शीतलता अकस्मात नष्ट हो गयी और बदले में चित उद्दीप्त हो उठा।[5] आचार्य आनन्द-

---

1 शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव य: ।। 70।।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादो सौ सर्वत्र विहितास्थिति ।।
- काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास

2 श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थं प्रत्ययो भवेत् ।
साधारण: समग्राणां स प्रसादो गुणो मत: ।। काव्य प्रकाश । 8/76

3 अ0 रा0 बालकाण्ड सर्ग 3, श्लोक 58

4 अ0 रा0 बालकाण्ड सर्ग 3, श्लोक 54

5 दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति ।
- काव्यप्रकाश, 8/69

वर्धन के अनुसार ओज का स्वरूप चित की उद्दीप्त का ही स्वरूप है। आचार्य अभिनव गुप्त ने भी ऐसा ही कहा है।[1] ओज के अभिव्यंजक वर्ण कवर्ग आदि वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों का उनके अपने अपने अन्त्य वर्णों का संयोग था नैरन्तर्य, रेफ का किसी वर्ण से संयोग, समान वर्णों का संयोग। इसमें दीर्घवृत्ति, और दीर्घ समासों का प्रयोग होता है। तथा उपर्युक्त वर्णादि उद्धत पदसंघटना में ओजोगुण की अभिव्यंजना होती है। अध्यात्मरामायण के कुछ प्रसङ्ग ओज गुण के उदाहरण स्वरूप में देखे जा सकते हैं -

हंसकारण्डवाकीर्णचक्रवादि शोभितम्
जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौंच नादोपनादितम्[2]

तथा -

गिरिशगिरिसुतामनो निवासं
गिरिवरधारिणमीहिभरामम् ।[3]
इत्यादि ।

दोष - निरूपण -

गच्छत: स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादत: ।।

अपनी रचना का ब्रह्मा[4] होते हुये भी कवि को कुछ नियत सीमाओं में रहना

---

1 दीप्ति: प्रतिपत्तुर्हृदये विकासविस्तारप्रज्वलनस्वभावा । सा च मुख्यतया ओज: शब्दवाच्या - ध्वन्यालोकलोचन 2,9

2 अ0 रा0 4/1/3

3 अ0 रा0 3/8/49

4 अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापति: ।
यथास्मै रोचते विश्वं तदं परिकल्पते ।।

पड़ता है। उनकी उपेक्षा करना उसका प्रमाद कहा जाता है। जिसके कारण काव्य सौन्दर्य में कमी आ जाती है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने थोड़ी भी त्रुटि को क्षम्य नहीं माना है। मम्मट के अनुसार तो दोष-रहित एवं गुण सहित शब्दार्थ को ही अलङ्कारों के अभाव में भी काव्य कहा जाएगा।[1] मम्मट एवं विश्वनाथ के अनुसार दोष वे हैं जो रस के अपकर्षक हों। रस एवं भावादि के आश्रयभूत वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्यार्थ और उनके उपयोगी शब्द, वर्ण एवं रचना आदि के दोष भी रसापकर्षक होने के कारण दोष में गिने जाते हैं।[2] मम्मट तथा विश्वनाथ ने 5 प्रकार के दोष माने हैं । ये 1. पद, 2. पदांश, 3. वाक्य के दोष, शब्द दोष हैं। 4. अर्थदोष, 5. रसदोष, अलङ्कारदोष भी इसके अन्तर्गत हैं।

यहाँ अध्यात्मरामायण के कुछ दोष-युक्त स्थलों का उल्लेख किया जा रहा है -

<u>रस दोष</u> -

मम्मट ने दस रस दोषों का परिगणन करके उनकी सीमा (इयत्ता) नहीं रखी।[3] तथा प्रसङ्गत: ध्वनिकार-सम्मत रसदोषों के मूलतत्वस्वरूप औचित्य को ही प्रमुख बतलाया है।[4] जो रसनिष्पति का प्रसङ्क अप्रासंगिक

---

1 तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुन: क्वापि ।

- काव्य प्रकाश 4

2 मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्चमुख्यस्तश्रयादवाच्य: ।
उभयोपयोगिन: स्यु: शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि स: ।। का0 प्र0 49
हतिरपिकर्ष: । शब्दाद्या: इत्याद्यदवर्णरचने ।
एवं - रसापकर्षकादोषा: । - साहित्यदर्पण 16/1

3 रसे दोषा:स्युरीदृशा: ।

- काव्य प्रकाश ।। 62

4 ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत

तथा व्याहत होने के कारण अनुचित प्रतीत हो उसे दोष कहा जायगा तथा जहाँ आचार्यों द्वारा गिनाये गये दोष आभासित होते हुये भी औचित्य पूर्ण हों, वहाँ दोष नहीं कहा जाएगा।

स्थायिभाव की स्वशब्द वाच्यता -
========================

व्यभिचारी भावों, रसों एवं स्थायीभावों का विभावानुभावभूतेन वर्णन करने से रस का पल्लवन होकर उसमें आघात उत्पन्न हो जाता है।[1] वस्तुतः स्थायिभावादि बीज हैं इन्हें अन्तर्हित ही रहने देना चाहिए। नहीं तो बीजत्व समाप्त हो जाता है। लोक ष्ट्र में प्रसिद्ध है - तर्जिता भर्जिता धान्या: बीजाय न । ग्रन्थ में सर्वत्र वर्णन द्वारा ही इन भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है जिनके उदाहरण रसनिष्पत्ति प्रकरण में दिये जा चुके हैं कहीं कहीं नामतः उपादान हुआ भी है वहाँ उसकी असाधारणता स्पष्ट करने के लिए होने से औचित्य की सीमा का अतिक्रमण नहीं होता । बालकाण्ड में मारीचदमन के प्रसङ्ग में अद्भुत रस की व्यंजना में -

तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयच्छतयोजनम ।

पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवत् ।। - अद्भुत का नामतः उपादान किया गया है। कि० का० में - श्वेतच्छत्र सहस्त्राणि किरीट शतकं तथा। चिच्छेद गिरिशार्धेन तद्भुतमिवाभवत् ।। में भी अद्भुत का नामतः उपादान हुआ है।

इसी प्रकार भक्ति-रस के प्रसंङ्ग में भी - भक्ति रस - स्वशब्द वाच्य हुआ है।[2] भरत के विलाप में वर्णन [3] -

---

1 काव्यप्रकाश, पृ० 60

2 द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड्राममालिङ्ग्य भक्तितः ।
तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्त्रवन्नेत्रजलाकुल ।। 3/3/14

3 अ० रा० 2/7/66

तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरत: शोकविह्वल:
हा तात क्व गतोसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे।।

यहाँ करूणरस के स्थायिभाव शोक को वाच्य रखा गया है। इसी प्रकार तारा विलाप वर्णन में भी शोक शब्द का ग्रहण किया गया है।[1] निहतं वालिनं दृष्ट्वा ताराशोक विमूर्च्छिता इसी प्रकार रौद्ररस के वर्णन में - तच्छ्रुत्वा सहमाना सा ताटका घोररूपिणी क्रोधसम्मूर्च्छिता रामभिदुद्राव-मेघवत[2] यहाँ क्रोध स्थायीभाव स्वशब्द वाच्य है।

भयानक रस के प्रसङ्ग में तं दृष्टवा भयसंत्रस्तो राजा दशरथस्तदा[3] यहाँ पर भयस्थायिभाव का नामत: उपादान हुआ है।

श्रुतिकटुदोष -

श्रुतिकटुदोष वह दोष है जिसे पद में परूषवर्णता का दोष कहते हैं।[4] उदाहरण के लिये -

निर्गुणस्त्वं निराकारो यदा मायागुणान्प्रभो।
लीलयाङ्गीकरोषि त्वं तदा वैराजनामवान् ।।[5]

यहाँ लीलयाङ्गीकरोषि पद श्रुतिकटु पद है।

अश्लीलत्व दोष - अश्लीलत्वदोष वह है जिसे किसी पद की (अपनी अर्थबोधकता के अतिरिक्त) व्रीडा, जुगुप्सा और अमङ्गल के भावों की व्यंजकता दोष कहते हैं।[6]

---

1 अ० रा० 4/3/4

2 अ० रा० 1/4/29

3 अ० रा० 1/7/9

4 श्रुतिकटु परूषवर्णं दुष्टं।। ।4। काव्यप्रकाश, पृ० 183

5 अ० रा० 6/3/74

6 त्रिधेति व्रीडा जुगुप्सा मङ्गलव्यंजकत्वाद यथा ।
- पृ० 187, काव्यप्रकाश ।

ब्रीडा व्यंजकता -

कदाचित्मुनिवेषेण गौतमे निर्गतेगृहात्
घर्षयित्वाथनिरगात्त्वरितं मुनिरव्ययात् ।। [1]

यहां घर्षयित्वा ब्रीडा-व्यंजक शब्द है। तथा शक्रस्तु तां घर्षयितुमन्तरं प्रेप्सुरयहम् में ब्रीडा-व्यंजक अश्लीलत्व दोष है।

अमङ्गल व्यंजकता -

एवमुक्तो थरामेण लक्ष्मणो गादविभीषणम्
उवाचमृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ।[2]

यहां मृतकोपमम् शब्द मृत्युरूप अमङ्गलास्पद अभिप्राय के व्यंजक होने से अश्लील दोष से दूषित हैं।

च्युतसंस्कृति दोष -

च्युतसंस्कृति वह दोष है जिसे किसी पद का व्याकरण के नियम के विरुद्ध रहना कहा जाता है।[3]

अलङ्कारदोष -

भामह से लेकर रूद्रट तक प्राय: सभी प्राचीन आलंकारिक अलंकार दोषों का भी विवेचन करने आये हैं। मम्मट के अलंकारों में विस्तृत दोषनिरूपण की आलोचना करके, कुछ को ही मानते हुए उनका शब्दार्थ दोषों में अन्तर्भाव कर दिया है।[4] अध्यात्म-रामायण के एक श्लोक में सीता रावण से

---

1 अ० रा० 1/5/22

2 अ० रा० 6/12/9

3 च्युतसंस्कृति व्याकरणलक्षणहीनं काव्य प्रकाश, पृ० 183

4 एषां दोषा: यथायोगं सम्भवन्तो पि केचन - काव्यप्रकाश, 142 (दशमोल्लास) उक्तेष्वन्तर्भवन्तीति न पृथक् प्रतिपादिता:।।

कहती हैं - रहिते रामवाम्यां त्वं शुनीव हरिरध्वरे ।[1] यहाँ उपमान में न्यूनता होने के कारण उपमा का हीनत्व नामक दोष प्राचीन आलंकारिकों के अनुसार उल्लेखनीय है।[2]

भाषा सौष्ठव -

कवि के भाव या भाषा की उद्भावनाये लोकोत्तरवर्णना-निपुण होती हैं। इनमें साधारण जनता की भाषा, वैज्ञानिक की भाषा या दार्शनिक ग्रन्थों की भाषा से ऊपरी स्तर से भाषा की सम्पत्ति समाहित होती है। ऐसी वाणी के गुम्फ को सर्वोत्कृष्ट बताया है जिसमें प्रसाद गुण हो, सूक्तियों का विशिष्ट स्थान हो, भाषा श्रोत्रसेचनक हो आदि।

अध्यात्मरामायण की भाषा सरल है। सम्पूर्ण कथा संवादात्मक शैली में वर्णित है। कथोपकथनों द्वारा, संक्षिप्त एवं पौराणिक शैली में आद्योपान्त ग्रन्थ में वर्णन होते हैं। दार्शनिक-विवेचन जहाँ पर हुये हैं वहाँ भाषा कुछ क्लिष्ट है। भाषा में वर्णध्वनि का सौन्दर्य है।

भक्तियुक्तस्तोत्र या स्तुतियां, अत्यन्त सरल, कोमल, कान्त एवं सार्थक व्यंजनों से आपूरित हैं। अनुप्रास की छटा वहाँ विशेष दर्शनीय है, जिससे भाषा श्रोत्रसेचनक लगती है। सभी गुणों एवं रीतियों का समुचित समावेश है। दार्शनिकता के प्राधान्य के ही कारण रीतियों गुणों का वैसा गुम्फन नहीं हो सका है जैसा कि उच्च साहित्य कोटि की रचना में होता है। भाषा प्रवाहमयी एवं वर्णनों के लिए तथा तात्त्विक विवेचन के लिये सशक्त है।

मुख्यत:, मुक्ति का प्रतिपादन तथा दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन ही कथाकार को अभिप्रेत रहा है। अत: शैली में वर्णन विस्तार नहीं प्रत्युत संक्षिप्तता है। ग्रन्थकार को जो कुछ कहना हुआ उसने संक्षिप्त में कह दिया।

---

1 अ0 रा0 5/2/32

2 जातिप्रमाणधर्मन्यूनतोपमानस्य हीनत्वं ।

- काव्यालङ्0कार सूत्रवृत्ति 2/9

अतः ग्रन्थ में न तो अधिक अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है और न शृङ्गारादि रसों की प्रचुर चर्वणा हुई है। चमत्कारजनक प्रयोग भी नगण्य हैं। नगर, शैल आदि का वर्णन जितने रोचक ढंग से होना चाहिये उतना नहीं हो पाया है। रस को कहीं कहीं वाच्य भी कर दिया गया है।

आलङ्कारिक चमत्कारों वक्रोक्ति, समासोक्ति, व्याजोक्ति आदि का वैचित्र्य, ग्रन्थ में नहीं मिलता है और न ऐसे शब्द और अर्थ जो सहित होकर अर्थान्तर को व्यंजित करते हों - ग्रन्थ में पाये जाते हैं किन्तु अध्यात्मरामायण को साहित्यिक कोटि से निकृष्ट समझना लेना कथमपि उचित नहीं।

ग्रन्थ में यथा सम्भव सभीरसों का परिपाक हुआ है। अलङ्कारों, रीतियों, गुणों आदि का भी समुचित प्रयोग हुआ है। भाषा सरस एवं प्रवाहमयी तथा बात को समझाने के लिए सर्वथा समर्थ है।

कुछ सार्वभौम सिद्धान्तों का भी वर्णन ग्रन्थ में हुआ है। एतादृश सूक्तियों से काव्य का लोकसामंजस्य सम्पादित होता है। संस्कृत साहित्य में इनके प्रयोग का अलग महत्व है। अध्यात्मरामायण में मानव समाज सम्बन्धी, नीतिविषयक एवं ज्ञान प्रशंसा सम्बन्धी सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त कर्म सम्बन्धी, दैव सम्बन्धी सूक्तियों का भी प्रयोग हुआ है।

ग्रन्थ में प्रयुक्त ये सूक्तियां यहां उदाहरणार्थ दी जाती हैं -

1. अतः सङ्ग परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैवहि - 2/2/83

   (सदा ही दुष्ट पुरुषों का सङ्ग छोड़ना चाहिये)

2. दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद् .... । 2/2/83

   (दुःसंग से पुरुष पुरुषार्थच्युत होता है।)

3. स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः । 2/6/6

   (संसार लोग अपने कर्मों के सूत्र में ग्रथित है)

4. विधिर्बलीयानिति मे मनीषा - 2/7/86

   (मेरा विचार है कि विधाता ही बलवान् है)

5. तत्सत्यमिति न ग्राह्यं भ्रान्तवाक्यं यथा सुधी: । 2/9/33
 ॥बुद्धिमान् लोग भ्रान्त पुरूषों के वाक्य का आदर नहीं करते।॥

6. असत्याद्भीतिरधिका महतां नरकादपि - 2/9/35
 ॥ महान् पुरूषों को असत्य से नरक की अपेक्षा भी अधिक भय हुआ करता है ॥

7. लोकं पुनाना: संचारैरतस्तान्नातिभाषयेत् । 4/2/63
 ॥ जो लोकों को पवित्र करते हुए विचरते हैं उन महापुरूषों से अतिभाषण नहीं करना चाहिए॥

8. दैवाधिनमिदं भद्रे जीवता किं न दृश्यते । 6/10/36
 ॥ ये सब सुखदु:खादि दैव के अधीन हैं, जीता हुआ प्राणी क्या नहीं देखता ॥

9. परित्यागो वधो वापि सतामेवोभ्यं समम् 7/8/66
 ॥सत्पुरूषों के लिए त्याग और वध दोनों समान ही हैं॥

अन्य अनेक सूक्तियों का प्रयोग ग्रन्थ में हुआ है। इन सूक्तियों के द्वारा भाषा का सौन्दर्य बढ़ गया है। वर्ण्य विषय के प्रतिपादन में भाषा अधिक सक्षम है।

भाषा में व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियां भी हैं। इनमें से कुछ व्याकर सम्बन्धी अशुद्धि को यहां पर उदाहरण रूप दिया जाता है।

चिन्त्य ॥1/6/69॥, जलपुत्सृजत् ॥17/51॥, वदस्व ॥212/57॥, निवारयित्वा ॥2/3/35॥, उगहीयन्ताम् ॥2/3/76॥, सजानिकिम् ॥2/5/1॥ गच्छतीम् ॥2/5/5॥, वदस्व ॥2/6/50॥, किं चलत्र ॥2/6/51॥, सम्प्रेषया-मास ॥1/7/75॥ समार ॥2/7/77॥, शीतलोदेन ॥3/1/16॥, किंचित्कालं ॥3/3/39॥, प्रतीक्षन् ॥3/3/18॥, वधिष्यामि ॥3/5/22॥, बहि: स्थाप्य ॥3/7/10॥, सन्तिष्ठ ॥3/7/11॥, बध्यमाना ॥3/7/3॥ , अनुशोचित्वा ॥3/8/37॥, भक्षन् ॥3/8/6॥, पुष्यके ॥4/3/41॥, सहन् ॥4/5/1॥, नित्यदा ॥4/5/24॥, गृह्य ॥4/5/39॥, आकार्षी ॥4/5/53॥, दशसाहस्त्रा ॥4/5/46॥

वधयिष्यति [4/5/47], एककाम् [4/6/40], वानरवृन्दान् [4/7/43], स प्रसादे [6/2/53], लोप्तुं [6/4/16], वधिष्यति [6/4/26], गमिष्यामहे [6/13/42] ।

<u>छन्द योजना</u> -

छन्दोहीनो न शब्दो स्ति नच्छन्दश्शब्द वर्जितम् - नाट्यशास्त्र 14/45 बिना छन्द के शब्द नहीं होते अर्थात् पद तो छन्दोबद्ध पद को ही कहते हैं। आह्लाद से ही छन्द निकलते हैं तथा चित को आह्लादित करना ही उनका काम है। अत: आचार्यों ने इसे एक प्रमुख वेदाङ्ग माना है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में छन्दों को काव्य पुरुष का रोम समूह बतलाया है। छन्द दो प्रकार के होते हैं वर्णिक एवं मात्रिक ।

अध्यात्मरामायण में वर्णिक एवं मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

अध्यात्मरामायण में कुल 4200 श्लोक हैं जिसमें इन्द्रवज्रा, उपेन्द्र-वज्रा, उपजाति, वसन्ततिलका, इन्द्रवंशा, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, स्वागता, मतमयूर, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा, अनुष्टुप, त्रिष्टुप, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिधृति, प्रकृति छन्द, स्रग्धरा, तथा रथोद्धता छन्दों का प्रयोग हुआ है। सबसे अधिक अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है।

अध्यात्मरामायण में चरित्र -चित्रण -

अध्यात्मरामायण के राम मानव नहीं वे सबसे परे परब्रह्म हैं। राम के इसी परब्रह्मत्व का वर्णन ग्रन्थकार ने किया है। अध्यात्मरामायण में प्रतिपादित राम, निर्गुण, अचिन्त्य ब्रह्म हैं। उनका स्वरूप सर्वमय, सर्व-कारणातीत तथा सच्चिदानन्दस्वरूप ही है। अध्यात्मरामायण के राम साक्षात् ब्रह्म हैं।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ग्रन्थकार ने जिन सीतापति को नमस्कार किया है वह सर्वकारणात्मक ब्रह्म, अचिन्त्यस्वरूप आनन्दघन स्वयंप्रकाश परात्मा राम हैं।

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषुहेतुमेकं
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम्।।
आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपं ।
सीतापतिं विदिततत्त्वमहं नमामि।। [1]

यह अध्यात्मरामायण में वर्णि राम का स्वरूप है। राम-तत्त्व की जिज्ञासु पार्वती को बताते हुये शङ्0कर ने भी राम का सर्वकारणात्मक ब्रह्म रूप में ही वर्णन किया है। उन्होंने कहा है -

राम : परात्मा प्रकृतेरनादि -
रानन्द एक: पुरूषोतमो हि ।। [2]

इसी ब्रह्म ने राम रूप में अवतार लिया। अप्रकट रूप से प्रकट रूप में प्रादुर्भाव ही अवतार है।

---

1 अध्यात्मरामायण 1/1/2

2 वही 1/1/17

निराकार-विग्रह सच्चिदानन्दघन परात्मा ब्रह्म समय-समय पर आवश्यकतानुसार दिव्य-जन्म तथा दिव्य कर्मों के साथ अवतार लेता है।[1] अध्यात्मरामायण में भी राम ने माया-मानव रूप में अवतार लिया है -

> एवं परात्मा मनुजावतारो, मनुष्यलोकाननुसृत्यकर्ता ।
> चक्रेऽविकारी परिणामहीनो, विचार्यमाणे न करोति किंचित।।[2]

विभिन्न ग्रन्थों में अपनी-अपनी भावना व विचार तर्कों द्वारा उन परात्मा के अवतार के अनेक कारण वर्णित किये गये हैं।[3] कुछ उपनिषद्वेत्ताओं का कथन है कि ब्रह्म अवतार नहीं लेता । उपनिषद् का कथन है -

> ईश्वरोनावतरति व्यापकत्वाद् आकाशवत्

किन्तु इसके सम्मुख ही कृष्णस्तु भगवान् स्वयं का कथन इस तर्क का खण्डन कर देता है।[4]

> अजो पि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरो पिसन् ।
> प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ।। [5]

अत: परात्पर ब्रह्म का अवतार साकार रूप में होता है। यह श्रुति, पुराण और गीता आदि प्रमाणित करते हैं। ऋग्वेद का यह मंत्र अवतार-वाद घोषित कर रहा है -

---

1 जन्म कर्म्म च दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वत: ।
तयक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सो र्जुन: ।। गीता 4/8

2 अध्या० रामा०, 1/4/66

3 राम-जन्म के हेतु अनेका । परम विचित्र एक तें एका ।
- मा०, 1/121/2

4 श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध का तृतीयोध्याय भगवान के अवतारवाद तथा उनके अवतारों का स्पष्ट दिग्दर्शन कराता है।

5 गीता 4/6

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव, तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।

इन्द्रोमायाभिः पुरूरूपईयते, युक्ताह्यस्यहरयः शतादश।।

इस अवतार के कारणों का वर्णन भी हुआ है। गीता में भगवान् ने स्वयं कहा है -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ।।[1]

भगवान् को धर्म-रक्षा के निमित, देवता-सुरक्षा हेतु, राक्षसगणों को उत्तमगति देने के निमित अवतार लेना पड़ता है।[2]

इन सबके अतिरिक्त, ब्रह्मानन्द में परिनिष्ठित, निराकारोपासक अमलात्मा पुरूषों को निज-रूप का साक्षात् दिव्य दर्शन देकर भक्ति की प्रवृत्ति कराना भी भगवान् के अवतार का कारण है।

ब्रह्मनिष्ठ, वेदज्ञ, तत्वज्ञ, महान-ऋषि उस अवतरित स्वरूप के दर्शन की अनुभूति में परमतत्व को भी विस्मृत कर उनके जन-सम्मोहनकारी स्वरूप को ही निर्निमेष देखते रहने के इच्छुक हैं। अध्यात्मरामायण में ऋषि सुतीक्ष्ण राम के माया-विलास से धारण किये मनोहर मनुष्य-वेष को देखकर[3] उनके दिव्य रूप का दर्शन करने में ही अपने को कृतकृत्य मानते हैं। राम के इस आनन्द-विग्रह के सम्मुख ब्रह्म कुछ नहीं - वे कहते हैं कि जो लोग राम को चिद्घन प्रकाश रूप जानते हों वे भले ही जानें किन्तु उन्हें (सुतीक्ष्ण) जो रूप आज प्रत्यक्ष

---

1 गीता 4/7/8

2 गीता, 4/7/8

3 पश्यामिरामतव रूपमरूपिणो पि मायाविडम्बनकृतंसुमनुष्यवेषम् ।
कन्दर्पकोटिसुभगं कमनीयचाप -, बाणं दयार्द्रहृदयंस्मितचारुवक्त्रम्।।
- अ० रा० 3/2/32

हो रहा है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी रूप की इच्छा नहीं।[1] इसी सुन्दर-स्वरूप को देखकर, उसी की प्रेरणावश भक्त अपनी भक्ति की ओर प्रवृत्त होकर साकार अवतार का सम्बल पाकर जीवन्मुक्त हो जाता है। अध्यात्मरामायण में उनके अवतार का हेतु -

भक्तानां भक्ति सिद्धये [2] कहा गया है।

अध्यात्मरामायण में भक्तानुग्रह, भूभारहरण[3] साधुरक्षा[4] तथा असाधु-दलन, रामावतार का हेतु है।

माया मानवदेहधारी राम को इन्हीं दो कर्तव्यों - साधुरक्षा व असाधु-दलन का पालन करते हुये आजीवन पाते हैं सज्जनों के हित के लिए[5] असज्जनों[6] को भी सद्गति देते हुये करुणामयराम के रूप के दर्शन होते हैं। अरण्य काण्ड में मुनियों की रक्षा तथा युद्धकाण्ड में निशाचरों की सद्गति इसके परिचायक हैं।

विविध रामायण व पुराणों में राम के इस अवतार -स्वरूप का वर्णन है। परात्पर ब्रह्म नारायण ने ही राम रूप में अवतार दिया। देवताओं

---

1 जानन्तु राम तव रूपमशेषदेश -

कालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम् ।।

प्रत्यक्षतो द्य मम गोचरमेतदेव

रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे ।। 3/2/34

2 देवकार्यार्थसिद्धमर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये ।

रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ।। 2/2/24, अ0 रा0 6/15/53

3 अ0 रा0 यः पृथिवीभरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः ।

संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्यो व्ययः ।। 1/1/1

4 राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च ।। 3/10/13

5 देवकार्यार्थसिद्धयर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये ।
रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ।। 2/2/24

6 अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो। अ0 रा0 1/2/24

की प्रार्थना पर अव्यय नारायण विष्णु ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया। भगवान् विष्णु अपने को चार भागों में विभक्त कर उत्पन्न हुये । [1]

अध्यात्मरामायण में राम को विष्णु का अवतार कहा गया है।[2] रामो हि विष्णुः पुरुषः पुराणः सीता चलक्ष्मीरभवत्पुरे व [3]

इस प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड नायक विष्णु का अवतरित रूप वर्णित हुआ है। अध्यात्मरामायण में यद्यपि राम के मानव रूप का भी वर्णन हुआ है, किन्तु उसका लक्ष्य राम के निर्गुण ब्रह्मरूप का बोध कराना है। अध्यात्मरामायण के राम में भक्त के प्रति कृपालु रूप का विशदता से चित्रण है। रामगीता आदि अनेक प्रसङ्गों में राम ने स्वभक्ति स्वरूप निरूपण स्पष्टता से किया है।[4] स्थान-स्थान पर कहीं नारद के द्वारा, कहीं वशिष्ठ के द्वारा, कहीं वामदेव के द्वारा उनकी भगवता का संकेत कर भावुक भक्तों को भक्ति के लिए प्रेरित करने का दृढावलम्ब रूप राम को चित्रित किया गया है। अनेकों स्तुतियां उनके अध्यात्मरूप का ही प्रकाशन कर साधक को भक्ति रसाप्लावित कर भक्ति साधना में निमज्जित कर देती है।[5]

मनुष्य रूप धारण करते हुए भी श्रीराम ने अध्यात्म-रामायण में

---

1 तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने ।
चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ।। 1/2/27

2 अ0 रा0 6/1/57

3 मद्भावनाभावितशुद्धमानसः ,
सुखी भवानन्दमयो निरामयः ।। - 7/6/60

4 प्रपन्नाखिलानन्ददोहंप्रपन्नं, प्रपन्नातिनिः शेषनाशाभिधानम् ।
तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं कपीशादिमित्रंभजे राममित्रम् ।।
- 6/13/26

अपने विष्णु रूप का चतुर्भुज-दर्शन भी अपने भक्तों को कराया है। सर्वप्रथम माता कौशल्या ही इस दिव्य रूप का साक्षात् दर्शन कर अपने नेत्रों को कृतकृत्य करती हैं।[1] विवेकशीला कौशल्या के अतिरिक्त, गौतमाभिशप्ता अहल्या ने भी इसी दिव्य रूप का दर्शन किया है।[2] उस रूप से मुग्ध हो कर ही अहल्या ने उस रूप का विश्लेषण मायातनुं लोकविमोहनीया कहकर किया और उस आकर्षण तत्वभूत राम को जाना।

अध्यात्मरामायण में राम के इस विष्णु रूप के अतिरिक्त उनका पुरूषोतम स्वरूप भी चित्रित हुआ है। प्रस्तुत आलोच्य विषय है - उनके माया मानव राम-रूप का वर्णन। मानव रूप में सभी मानवोतम गुणों का समन्वित रूप राम में हैं।

<u>बालरूप</u> -

अध्यात्मरामायण कार का मुख्य उद्देश्य है राम के परब्रह्मत्व का प्रतिपादन। अत: उनके परात्पर, सर्वातीत सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, निरंजन रूप का ही वर्णन होता है। उनका बाल रूप देखने के पहले माता ने उनके नारायण रूप का ही दर्शन किया है।[3]

राम के बालरूप का वर्णन यधपि सविस्तार नहीं हुआ है तथापि जो वर्णन हुआ है उसकी मनोहारिता अक्षुण्ण है। उनका बालरूप अतिसुन्दर, प्रभातकालीन बालसूर्य के समान अरूण ज्योतिर्मय है[4] —

> इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रूदह।
> बालत्वे पीन्द्रनीलाभो विशालाक्षो तिसुन्दर:

---

1 अ0 रा0 1/3/15 से 19 तक

2 अ0 रा0 1/5/37 से 39 तक

3 अ0 रा0 1/3/29 रूपमलौकिकम्

4 अ0 रा0 1/3/36

बालारुणप्रतीकाशो लालिताखिल लोकप: ।
अथराजा दशरथ: श्रुत्वा पुत्रोभवोत्सवम्।।[1]

राम के और भी मनोमुग्धकारी रूप का दर्शन हमें ग्रन्थ में होता है बालोचित् अलंकार तथा वस्त्रयुत राम के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार है -

भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम् ।
कण्ठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखांचितम्।।
स्मितवक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम्।
अङ्गणे रिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वत:।।[2]

इस रूप को देखकर महाराज दशरथ और माता कौशल्या अति आनन्दित होते थे।[3]

इस शिशु रूप के अतिरिक्त उनके क्रीड़ाशील रूप की भी झांकी अध्यात्मरामायण में अवलोकनार्थ है। जिसे देखकर हमें सूर के क्रीड़ाधिपति-कृष्ण की छवि का स्मरण होता है।

भागवत के कृष्ण के समान अध्यात्मरामायण के बालकराम गोरस और माखन को गिराकर उसे क्रमश: लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न को बांट देते हैं। मक्खन चोरी करने वाले कृष्ण की तरह ही राम का यह क्रीड़ा शील एवं बालचापल्य से युक्त रूप है। काम में लगी माता से जब वे खाने को मांगते हैं तो काम में लगी होने से उनके न सुनने पर, वे क्रोधित होकर सब बर्तन फोड़ डालते हैं और छींकें पर रखे हुए गोरस और माखन को गिरा लेते हैं। बाल रूप का कितना स्वाभाविक चित्रण है।[4]

---

1 अ0 रा0 1/3/36

2 अ0 रा0 1/3/44, 45, 46

3 अ0 रा0 1/3/47

4 अ0 रा0 1/3/53 से 57 तक

जगदानन्दकारक आनन्दघन भगवान राम ने मायामय बालरूप धारणकर दशरथ और कौशल्या को आनन्दित किया।[1]

अध्यात्मरामायण में राम की कौमारावस्था का तथा युवावस्था का विशद वर्णन नहीं है। वसिष्ठ जी द्वारा उपनयन संस्कार के अनन्तर वे (चारों भाई) समस्त शास्त्रों का मर्म जानने वाले तथा सम्पूर्ण विद्याओं में पारङ्गत हो गये। राम नित्यप्रति लक्ष्मण जी के सहित सिंह व्याघ्रादि के शिकार के लिये जाते थे और वहां से आकर अपने पिता को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते थे।[2] नगर निवासियों का समस्त कार्य करते थे।[3] और धर्मशास्त्रों का मर्म सुनते और स्वयं भी उनकी व्याख्या करते थे।[4]

अध्यात्मरामायण में राम के निखिल गुणसम्पन्न आदर्श पुरुषोत्तम रूप के साथ ही उनके भक्त वत्सल एवं जन मनोरंजनकारी अलौकिक रूप का चित्रण विशेष रूप से हुआ है।

अध्यात्मरामायण में राम के बाह्यसौन्दर्य का विशद चित्रण हुआ है। भक्ति की धारा पूरे ग्रन्थ में प्रवाहित है। सभी चरित्र यहां तक कि राक्षसादि भी प्रच्छन्न रूप में राम के भक्त हैं। अत: भक्तों के लिये राम के अलौकिक सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करना अनिवार्य था। अत: बाह्य सौन्दर्य का वर्णन आवश्यक था।

राम का सौन्दर्य -

शिशु एवं युवाराम के सौन्दर्य दर्शन के पश्चात् राम वन गमनान्तर उनके मुनि वेष का दर्शन होता है। इस कठिनतम बेला में भी उनके नयनरंजक रूप में कोई परिवर्तन नहीं। कंटकाकीर्ण पथ पर भी राम का सौन्दर्य अद्वितीय

---

1 1/3/60

2 1/3/63

3 1/3/64

4 बन्धुभि: सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम् ।
धर्मशास्त्ररहस्यानि श्रृणोति व्याकरोति च ।। 1/3/65

है। उसमें विषमता का कण भी नहीं, दुरूह परिस्थिति की झलक भी नहीं। उस मुनि वेष पर साधारण वन्य जन भी आकर्षित हैं। निषादराज का इसी रूप को देखकर, निषादकुल में जन्म लेना सफल हो गया।[1] ऋषि-वृन्द भी उस स्निग्ध-शीतल कान्ति से प्रभावित हैं। भक्तराज सुतीक्ष्ण ऋषि राम के आगमन को सुनते ही उनके दर्शन के लिए उतावले हो उठते हैं।[2] उनकी पूजा कर उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि मैं माया {राम की} विलास से धारण किये मनोहर व मनुष्य वेष को देख रहा हूँ। यह रूप करोड़ों कामदेवों के समान कान्ति मय है औरकमनीय धनुर्बाण धारण किये है।[3] इस रूप के लिये वे कहते हैं जो सीता से युक्त है, मृगचर्म धारण किये हैं। इस रूप के सामने वे उपाधि रहित चिद्घन प्रकाश को महत्त्व नहीं दे पाते और कहते हैं कि मेरे हृदय में तो आज जो प्रत्यक्ष रूप से दिखायी दे रहा है, यही रूप भासमान होता रहे। इसके अतिरिक्त मुझे किसी रूप की इच्छा नहीं ।[4]

महर्षि शरभङ्ग अग्निप्रवेश के पहले इसी चीराम्बरधारी, स्निग्ध जटाजूटधारी श्याम वर्ण रूप का ध्यान करते हैं।[5] उनकी यही अंतिम अभिलाषा है - मेरे हृदय में सर्वदा अयोध्यापति विराजमान रहें जिनके वामाङ्क में मेघ में बिजली के समान सीता विराजमान हैं।[6] दण्डकारण्य के निवासी, समस्त

---

1 अ० रा० 2/5/64 2 अ० रा० 3/2/26

3 पश्यामि राम तव रूपमरूपिणोऽपि, मायाविडम्बनकृतंसुमनुष्यवेषम्।
कन्दर्पकोटिसुभगं कमनीयचाप, बाणं दयार्द्रहृदयंस्मितचारुवक्त्रम्।।
- 3/2/32

4 जानन्तु राम तव रूपमशेषदेश, कालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम्।
प्रत्यक्षतो घ मम गोचरमेतदेव, रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे।
- 3/2/24

5 ध्यायेंश्चिरं राममशेष हृत्यं, दूर्वादलश्यामलमम्बुजाक्षम् ।
चीराम्बरं स्निग्धजटाकलापं, सीतासहायं सहलक्ष्मणं तम् ।। 3/2/27

6 अ० रा० 3/2/10

मुनिगण, राम के रूप दर्शन के लिये शरभङ्ग के आश्रम पर आते हैं।[1]

अध्यात्मरामायण में महर्षि वाल्मीकि ने भी उनकी शोभा का दर्शन किया है।[2] तथा त्रैलोक्य में राम में ही सर्वसुन्दरतत्व को पाया मुनिवर अगस्त्य तो इसी रूप-दर्शन की इच्छा से ही उनका ध्यान करते हुए निवास करते हैं।[3]

अध्यात्मरामायण के राक्षसगण भी इस रूप पर विमोहित हैं। रिपु भगिनी सूर्पणखा भी उसी रूप पर आसक्त हो उठी। केवल राम के पद चिह्नों के दिव्य लक्षणों[4] को ही देख कर वह मोह-पथ पर आगे बढ़ी और फिर राजीवलोचन राम के धनुर्बाणधर: जटावल्कलमण्डित: कन्दर्प सदृश रूप देखते ही[5] आत्मसमर्पण करने को प्रस्तुत होकर स्वनिवेदन करती है। मानस में तुम्ह सम पुरूष न की उपाधि दे डालती है। प्रतिहिंसा से प्रेरित होने पर भी वह रावण से कहती है -

तत्राश्रमे मयादृष्टो रामो राजीव लोचन: ।
धनुर्बाणधर: श्रीमान् जटावल्कलमण्डित: ।।

केवल यही नहीं असुरवर्ग में कालनेमि, मारीच, कुम्भकर्ण आदि ने भी उस रूप की सराहना की है।

कालनेमि इतना अधिक रूपासक्त हो गया है कि उस मंजुलछवि का ध्यान करने का ही उपदेश देने लगता है।[6] अभिशप्त विराध राम की स्तुति

---

1 अ0 रा0 3/2/12

2 दृष्ट्वा रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम्। अ0 रा0 2/6/45

3 अ0 रा0 अर0 का0 सं0, 3, श्लोक 10

4 पदमवज्रांकुशाङ्कानि पदानि जगतीपते: । 3/5/52
दृष्टवा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्य मोहिता ।।

5 कन्दर्प सदृश रामं दृष्टवा कामविमोहित । 3/2/4 (अ0 रा0)

6 अ0 रा0 6/6/58 से 60 तक

करता हुआ जिस रूप की सदा कामना करता है, वह है - धनुर्बाणधरं श्यामं जटावल्कभूषितं। अपीच्यवयसं सीतां विचिन्वन्तं सलक्ष्मणम्।। (49, सं0 10, अ0)

इतना ही नहीं, खग योनि के गृध्रराज जटायु राम को देखकर अपनी मर्मान्तक पीड़ा को विस्मृत कर देते हैं। अध्यात्मरामायण में जटायु राम के त्रिभुवनकमनीयत्व का प्रतिपादन करता है - इस प्रकार सभी उस रूप से रंजित हैं ही परन्तु एक और वर्ग भी उस सुषमा में अनुरक्त है जिसके लिये यह रूपराशि प्राण सम है। वह है उनका भक्त-वर्ग।

परमभक्त भरत उसी रूप दर्शन[2] के लिए अयोध्या का राज्य छोड़ माता का तिरस्कार कर वनवासी वेष में राम से मिलने आते हैं। उसी रूप दर्शन के लिये राम के वनवास की अवधि पर्यन्त दुष्कर तप करते हैं। अभिन्नहृदया जानकी रावण के गृह में उसी छवि का ध्यान करती हैं।[3] शरणागत भक्त विभीषण भी इसी रूप का दर्शन करता है।[4]

मानव वर्ग ही नहीं स्वयं देवगण भी इस रामरूप की स्तुति व दर्शन में ही अपने को कृतकृत्य मानते हैं। अध्यात्मरामायण में देवों ने रूप वर्णन सरस पदावलियों में किया है [5] —

---

1 त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यं, रविविशतभासुरमीहितप्रदानम् । अ0 रा0 3/8/51
स्मितरुचिरविकासिताननाब्जं, मतिसुलभंसुरराजनीलनीलम्
सितजलरुहचारुनेत्रशोभं, रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये ।। 3/8/51

2 स तत्र दृष्टवा रघुनाथमास्थितं
दूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम् ।
जटाकिरीटं नववल्कलाम्बरं
प्रसन्नवक्त्रं तरुणारुणद्युतिम् ।। अ0 रा0 2/9/5

3 अ0 रा0 5/2/9, 10

4 रामं श्यामं विशालाक्षं प्रसन्नमुखपंकजम् ।
धनुर्वाणधरं शान्तं लक्ष्मणेन समन्वितम् ।। 6/3/15

5 ब्रह्मा - वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् । अ0 रा0 6/13/15
इन्द्र - शरच्चन्द्रवक्त्रंलसत्पद्मनेत्रं । अ0 रा0 6/13/30

राम का रूप सबको वशीकृत्य विश्वविमोहक बन जाता है।

वीर-रूप -

सौन्दर्य-तत्व का यथा सम्भव निरूपण करने के बाद उनकी वीर-मुद्रा की तेजस्विनी झांकी का अवलोकन वांछनीय है। दुष्ट दल का संहार करने के लिए तथा साधु रक्षार्थ उनका वीर होना अपेक्षित है।

राम[1] के वीर रूप की झांकी उनके किशोर रूप में मिलती है, इसी वीर[2] रूप का दर्शन स्वयंबर भूमि में धनुष तोड़ते हुए होते हैं। वीर रस का साक्षात् प्रतीक शक्ति पुंज राम कादर्शन असुर-संहारक का रूप होता है।

सौन्दर्य सिन्धु राम शक्ति सिन्धु भी हैं। तभी तो सहस्त्रों राक्षसों का वध एवं त्रैलोक्य विजयी रावण का वध कर सके।

किशोरावस्था में ही राम ताटकादि का वध करते हैं। तत्पश्चात् वनवास के समय हजारों की संख्या में राक्षसों का संहार करते हैं। राम के शौर्य वीर्य तथा पराक्रम युक्त वीर वेष के दर्शन युद्ध स्थल में पूर्ण रूपेण होते हैं। वाह्य सौन्दर्य एवं शौर्य के अतिरिक्त अब उन गुणावलियों एवं उनके व्यक्तित्व के उन विशेषणों का उल्लेख करना है जो उनके मानव चरित एवं पुरूषोतममत्व को मूर्धाभिषिक्त करने में पूर्णत: समर्थ हैं।

अनन्त शक्ति के साथ गंभीरता धैर्य एवं व्यवहार कुशलता उनके जीवन में आद्योपान्त है। राम की गुरूभक्ति, पितृभक्ति एवं मातृभक्ति वस्तुत: अनुपम है।

---

1 अ0 रा0 1/3/62,63
मारीच, सुबाहु, ताटका आदि के संहारक रूप में -
1/5/7,8, 1/4/29,30 (अ0 रा0)

2 अ0 रा0 1/6/24,25

गुरु-भक्ति -

अध्यात्मरामायण में राम की गुरु-भक्ति, गुरु सेवा, गुरु-कृपा के अंश यद्यपि बहुत कम हैं किन्तु इन संक्षिप्त विवरणों में ही उनकी गुरुभक्ति के दर्शन होते हैं। विश्वामित्र के प्रसङ्ग में गुरु-कृपा के दर्शन होते है। राम से प्रसन्न हुए विश्वामित्र प्रसाद-स्वरूप उन्हें बला, अतिबला नामक दो विद्यायें देते हैं जिनके प्रभाव से क्षुधा, दुर्बलता आदि की बाधा नहीं होती।[1] इसके अनन्तर ताटका वध के उपरान्त गुरु प्रसन्नता का वर्णन है। राम के पराक्रम से प्रसन्न होकर वे उनका आलिङ्गन करते हैं और रहस्य एवं मन्त्रादि के सहित समस्त अस्त्र-शस्त्र राम को देते हैं।[2]

राज्याभिषेक का संवाद देने, जब गुरुवसिष्ठ राम के भवन में आते हैं। उस समय राम की विनम्रता, उनका आतिथ्य, उनकी गुरु के प्रति भक्ति का प्रतीक है। भक्ति पूर्वक उनका चरणोदक सिर पर रख वे कहते हैं - हे मुने । आपके चरणोदक को धारण कर आज मैं कृतकृत्य हो गया।[3] इस स्थल पर गुरुभक्ति की झलक मात्र है। सभी पात्रों की भांति गुरु वसिष्ठ स्वयं राम के आध्यात्मिक रूप से प्रभावित हैं।[4] उनके अनुसार राम तो गुरुओं के गुरु हैं।

पितृ भक्ति -

राम के चरित्र में पितृ भक्ति का महान् आदर्श पूर्णरूपेण चित्रित है।[5] पुत्रशब्देन चैतद्धि नरकात्त्रायते पिता पुत्र शब्द का अर्थ ही है जो

---

1 अ० रा० 1/4/24

2 अ० रा० 1/5/33

3 अ० रा० 2/2/20, 21

4 तथैवानुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम् ।
गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितृणां त्वं पितामहः । अ० रा० 2/2/26

5 अ० रा० 2/3/58

पिता की नरक से रक्षा करता है।

अध्यात्मरामायण में राम की मातृ-पितृ सेवापरायणता का प्रारम्भ से ही वर्णन है। बाल्यावस्था में ही वे शिशु लीला द्वारा पिता को तथा माता को आनन्द प्रदान करते हैं।[1] नित्य माता-पिता को नमस्कार करते हैं दशरथ को सदैवप्रसन्न करते हैं। मृगया आदि की बातों का भी वे पिता से निवेदन करते हैं।[2]

विश्वामित्र के द्वारा पुत्र - याचना के समय दशरथ राम के प्रति विशेष अनुराग प्रदर्शित करते हैं।[3] गुरु से परामर्श लेते हुए वे कहते हैं - किं करोमि गुरो रामं त्यक्तुं नोत्सहते मनः ।[4]

वन-गमन के पूर्व बिना पिता की इच्छा जाने ही कैकेयी से पिता के दुःख का कारण जानकर राम कहते हैं - पिता के लिए मैं जीवन दे सकता हूँ, भयइ0कर विष पी सकता हूँ।[5] पिता के सम्मुख सीता, कौशल्या तथा राज्य को भी छोड़ सकता हूँ।[6] पिता के सम्मुख पत्नी, माता और राज्य का भी कुछ महत्व नहीं। उतम मध्यम् और अधम पुत्रों की कोटियां बताकर पितृआज्ञापालन का महत्व प्रदर्शित किया है।[7]

---

1 मायाबालवपुर्धृत्वा रमयामास दम्पती । अ0 रा0 1/3/59
  दृष्ट्वा दशरथो राजा कौशल्या मुमुदेतदा । अ0 रा0 1/3/47
2 हत्वा दुष्टमृगान्सर्वान्पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ।। अ0 रा0 1/3/63
3 .... तेषां रामो तिबल्लभः ।
  रामस्त्वतो गच्छति चेतनूजीवामिकय चन ।। अ0 रा0 1/4/10
4 अ0 रा0 1/4/9
5 अ0 रा0 2/3/59
6 अ0 रा0 2/3/80
7 अ0 रा0 2/3/60, 61, 62

चित्रकूट में भरत से मिलन होने पर राम-भरत के असीम स्नेह प्रदर्शन करने पर भी पितराज्ञा की प्रतिष्ठा को सर्वोपरि स्थान देकर भरत के अनेक तर्कों का खण्डन करते हैं।[1] स्वयं भरत को भी पितुराज्ञा पालन का आदेश देते हैं।[2] भरत को भी पितुराज्ञा की मर्यादा के सन्मुख नत होना पड़ा।

भातृ-प्रेम -

सभी भाइयों के प्रति राम के हृदय में अपार स्नेह, करुणा, अनुराग कर्तव्य भावना आदि भाव हैं। बालक्रीड़ा से लेकर राजा-रूप में प्रतिष्ठा होने तक जीवनपर्यन्त यह भातृ-प्रेम की ज्योति, संघर्षों की झंझा में मन्द न हो सकी।

अध्यात्मरामायण में राम के शैशव में ही, साथ ही रहन सहन, खान एवं क्रीड़ा उनके स्नेह की परिचायक है।[3] राम में लक्ष्मण तथा भरत के प्रति विशेष कृपा है। लक्ष्मण तो बहि: प्राण राम ही हैं।

भाई में क्षोभ, आवेग, आवेशादि के लक्षण देखकर, राम संकेत मात्र से उस पर नियंत्रण कर उसे मर्यादोल्लंघन से बचाते हैं। उस समय वे उग्र रूप नहीं धारण करते वरन् कल्याण कामना से प्रेरित से ही कार्य सिद्ध करते हैं।[4]

वनगमन का समाचार सुनते ही जब लक्ष्मण क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो पिता को, मां कैकेयी को और भरत के प्रति उग्र भाव धारण करते हैं।[5]

---

1 अ० रा० 2/9/28 से 32 तक तथा 34, 35, 36

2 अत: पितुर्वच: कार्यमावाभ्यामतियत्नत: ।। अ० रा० 2/9/31

3 अ० रा० 1/3/43, 60, 61, 62, 63, 65

4 (वनगमन के अवसर पर पिता को कटूक्तियां कहते हुए)

5 उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम्
बद्ध्वा निहन्मि भरतं तद्बन्धून्मातुलानिपि।। अ० रा० 2/4/15

शान्त करते हैं।[1]

भाई के अनन्य प्रेम-प्राबल्य को देखकर करुणाद राम स्वयं उसमें निमज्जित हो जाते हैं। क्रोध प्रदर्शन से रुष्ट न होकर प्रशंसा ही करते हैं।[2] उसके विशेष आग्रह को मानकर वन में साथ चलने की आज्ञा दे देते हैं। राज्य का अधिकार पाने का समाचार सुनते ही राम की त्याग-भावना दर्शनीय है। वे उसका कर्ता भोक्ता लक्ष्मण को कहते हैं स्वयं तो निमित्त मात्र ही हैं।[3] उनका प्राप्य-राज्य व स्वयं उनका जीवन भी भाइयों के लिए है।

ऐसा ही, भावना और कर्तव्य का संघर्षमय प्रसंग राम के भ्रातृ-प्रेम का प्रामाण्य है। उत्तरकाण्ड में स्वयं काल जब ऋषि रूप में राम के पास पितामह ब्रह्मा का संदेश देने आता है उस समय राम द्वार पर लक्ष्मण को ही नियुक्त करते हैं जिससे कोई उनकी वार्ता न सुन सके अन्यथा उसे प्राण दण्ड दिया जायगा।

दैवयोग से दुर्वासा के कोप से भयभीत लक्ष्मण को ही राम के पास जाना पड़ा। उस समय राम पूर्व नियम (प्राण दण्ड) का चिन्तन कर महान दु:खी हो गये। एक ओर थी कालमुनि से की प्रतिज्ञा और दूसरी ओर प्रबल भ्रातृ-भावना। राम दोनों कसौटी पर खरे उतरे। धर्म की रक्षा के लिए लक्ष्मण का त्याग किया।[4] परन्तु उनके स्वर्गारोहण पर स्वयं भी न रुके। जीवनसंगी भ्राता के जाते ही महाप्रयाण का निश्चय कर लिया।[5]

---

1 अ० रा० 2/4/17 से 45 तक

2 शूरा सि रघुशार्दूल ममात्यन्तहितेरत: । जानामि सर्व ते सत्यम् किन्तु तत्समयो नहि। अ० रा० - 2/4/18

3 सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वो भिषेको भविष्यति ।
निमित्तमात्रमेवाहं कर्ता भोक्ता, त्वमेव हि ।।
ममत्वं हि बहि:प्राणो मात्रकार्यविचारणा । 2/2/37, 38

4 अ० रा० 7/8/64, 65, 66

5 अद्य चाहं गमिष्यामि लक्ष्मणस्य पदानुग: । 7/9/2

लक्ष्मण के ऐहिक सुख की नहीं पारलौकिक कल्याण की भी उन्हें चिन्ता थी। अत: सांसारिक मर्यादा-पालन तथा आध्यात्मिक दोनों का उपदेश उन्होंने लक्ष्मण को दिया।[1]

इसी दिव्य अलौकिक भ्रातृ-स्नेह के ही कारण तो लक्ष्मण ने आजीवन कैड़्0कर्य कर आत्मसमर्पण में ही अपना परम कल्याण माना। भरत-मिलाप तो वह मार्मिक स्थल है, जो भ्रात्रानुराग उत्कृष्टा के साथ भ्रातृ-वत्सलता का प्रदर्शन कर सहृदय को भावाभिभूत कर देता है। स्वयं आत्म संयमी राम भाव विभोर हो उठते हैं। अध्यात्मरामायण में राम की प्रेम-विह्वल दशा का चित्रण तथा भ्रातृवियोग के बाद मिलन का मार्मिक चित्रण हुआ है।[2]

राम के भ्रातृ-मिलन के अवसर पर अटूट अनुराग, अपरिमित स्नेह से पूर्ण है अवधि समाप्त होते ही बिना भरत से मिले उनके लिये एक दिवस भी दुर्वह हो जाता है। अयोध्या-यात्रा के पहले वे हनुमान से संदेश ही भेज देते हैं।[3] अयोध्या लौटने पर चित्रकूट का चित्र पुन: चित्रित हो उठता है।[4]

शत्रुघ्न के प्रति उनका व्यवहार लवणासुर वध प्रसड़्0ग में है। उसके वध के लिये उन्होंने शत्रुघ्न को नियुक्त कर, वहाँ के राज्याभिषेक का पुरस्कार देकर अपनी उदारता का परिचय दिया।[5]

---

1 अ0 रा0 अर0 का0 सं0 4/17 से - ज्ञान, माया नवधाभक्ति आदि का आध्यात्मिक विवेचन

अ0 रा0 कि0 का0, सं0 4 श्लोक 11 से 40 तक पूजा साधनक्रियायोग का वर्णन

अ0 रा0 कि0 का0, सं0 5 श्लोक 13 - क्रोध-शमन

अ0 रा0 उ0 का0, सं0 5 श्लोक 6 - वर्णाश्रम धर्म आदि पर

2 अत्थाप्य राघव: शीघ्रमारोप्याड़्0के तिभक्तित: ।

उवाच भरतं राम: स्नेहार्द्रनयन: शनै : ।। अ0 रा0 2/9/27

तावुभौ स समालिड़्0गुय रात्रौ प्यश्रूण्यवर्तयत् । वा0 रा0 2/100/40

3 अ0 रा0 6/14/38, 39, 40

4 अ0 रा0 6/15/84, 85

<u>सख्य प्रेम</u> -

राम के भ्रातृ-प्रेम के अति निकट उनका सख्य-प्रेम है। बाल्यावस्था में सिंहासनासीन होने तक यह सखा-प्रेम अवलोकनीय है। शृङ्गवेरपुराधीश गुह-मैत्री की प्रगाढ़ता उनके सत्य-प्रेम का प्रमाण है। राम ने उसे अपनाकर अनुगृहीत कर दिया। गुह को अपना अतिप्रिय सखामानकर उसके प्रति प्रेम प्रदर्शन किया[1] तथा पुनर्मिलन का आश्वासन देकर व्याकुल सखा को धैर्य बंधाया[2]।

मानव ही नहीं अपितु कपीश्वर व राक्षसेश्वर तक उनकी मैत्री के उच्चाधिकारी बन जाते हैं।

ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंच कर वे वानर सुग्रीव के साथ मैत्री करते हैं। सुग्रीव की कथा सुनकर उसके दु:ख से आतुर होकर वे प्रतिज्ञा कर डालते हैं। बालि-वध के बाद वे सुग्रीव को किष्किन्धा का शासक बनाते हैं। सुग्रीव को कर्तव्यच्युत देखकर वे क्रोधित हो लक्ष्मण को वहाँ भेजते हैं। किन्तु लक्ष्मण के क्रोध और सुग्रीव के वध के लिए उद्यत देखकर लक्ष्मण से कहते हैं कि तुम उसे भयभीत करना, मारना नहीं, सुग्रीव मेरा प्रिय सखा है[3]। इससे राम का असीम मित्र स्नेह प्रकट होता है। सुग्रीव के आने पर सखा को देखते ही सभी मनोविकास लुप्त हो जाते हैं।[4] राम ने अपने परम सुहृद सुग्रीव के प्रति समय-

---

1 गुहमुत्थायक वं तूर्ण राघव: परिषस्वजे अ0 रा0 2/5/63
दतमन्येन नो भुञ्जे फलमूलादि कि चन ।
राज्यं ममैततं सर्वं त्वं सखा मे तिवल्लभ: ।। अ0 रा0 2/5/69

2 चतुर्दशसमा: स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम् ।। अ0 रा0 2/6/25
आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं रामभाषितम् । अ0 रा0 2/6/26

3 न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रावो मे प्रिय: सखा । अ0 रा0 4/5/13

4 ।1। राम का क्षोभ कि0 का0 सं0 5 श्लोक0 8, 10
।2। सुग्रीव आगमन पर 5/6/4

पर कृतज्ञता अर्पित की। अध्यात्मरामायण का उदात्त भावार्पण उल्लेखनीय है।[1] मैत्री व अनुराग के दृढ़ सूत्र में आबद्धराम मित्रों को अपनी जन्म-भूमि बिना लाये न रह सके।

वहाँ सुग्रीव का आतिथ्य कर राज्याभिषेक के महोत्सव पर बहुमूल्य मणि जटित हार उपहारस्वरूप सखा को भेंट किया।[2]

राम के स्वर्गारोहण के समय तवानुगामने राम विद्धि मां कृत निश्चयम् को सुनकर राम ने मौन स्वीकृति दे दी।[3] तत्पश्चात् —

सर्वेगता: क्षत्रमुखा: प्रहृष्टा वैश्याश्चशूद्राश्च तथापरे च ।
सुग्रीवमुख्या हरिपुंगवाश्च स्नाता विशुद्धा:शुभ शब्दयुक्ता:।। 44।।
- स0 9, उ0 का0

कपियोनि से भी निकृष्ट राक्षसयोनि के अपवाद स्वरूप शरणागत विभीषण से मैत्री का वर्णन है। प्रिय सखा सुग्रीव के आशंका व्यक्त करने पर भी -

सकृदेव प्रपन्नायलवास्मीति याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

इसको पूर्ण चरितार्थ कर सुग्रीव से कहते हैं कि तुम विभीषण को मेरे पास ले आओ। क्योंकि उनकी शरण में आया हुआ उनका प्रिया है, फिर चाहे वह रावण ही क्यों न हो[4]

इस दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ ही विभीषण का आलिङ्गन कर मित्रता स्थापित कर, समुद्र से जल मंगा कर राज्याभिषेक तुरन्त कर दिया।[5] मानो

---

1 अ0 रा0 6/12/49, 50

2 सूर्यकान्तिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीसृजम् ।
सुग्रीव ददौप्रीत्या राघवोभक्तवत्सल: ।। अ0 रा0 6/16/4

3 अ0 रा0 6/16/4

4 अ0 रा0 6/3/12, वा0 रा0 में भी समान है।
अ0 रा0 6/12/33 से 35

5 अ0 रा0 6/3/42 से 45 तक

लंका का राज्य बहुत छोटी चीज है। मानस में तो जो संपत शिव रावनहि दीन्हि दिये दस माथ, सोई संपदा विभीषनहि सकुचि देत रघुनाथ।

सुग्रीव की ही भांति विभीषण को भी सम्मानित किया और उससे यथा समय परामर्श लेते हैं।

अपने सुहृदय के प्रति अटलराज्य, दीर्घ आयु, भक्ति-दानुसालोक्य मुक्ति आदि देकर अपने निःस्वार्थ सख्य प्रेम को प्रमाणित किया। अपने महाप्रयाण के समय विभीषण को लङ्का का शासन धर्म पूर्वक व सदाचार पूर्वक पालन करने का आदेश दिया।[1]

राम के विविध रूपों में यह स्पष्ट हुआ है कि अध्यात्मरामायण में राम मानवोत्तम गुणों से युक्त हैं।

अध्यात्मरामायण के कथानक की भांति राम का चरित्र भी इन गुणों से वाल्मीकि रामायण से साम्य रखता है। किन्तु अध्यात्म-रामायण के राम मानव नहीं थे। वे ब्रह्म, सच्चिदानन्द घन हैं। उन्होंने मानव रूप में अवतार लिया है। भक्तों की रक्षा के लिए और लोगों को अपनी भक्ति का सुयोग देने के लिए।

अतः उनका भक्त-वात्सल्य रूप ग्रन्थकार को अधिक स्पृहणीय है। उनका भगवान् रूप सर्वोपरि है।

शक्ति, शील, सौन्दर्य के समन्वित रूप राम की भक्ति-वत्सलता, दीनबन्धुत्व, शरण्यता भक्तों का सर्वस्व है।

<u>शरणागतवत्सल राम</u>

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति चयाचते उसके लिये अभयं सर्वं भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम् में राम-शरण्यत्व सर्वत्र वर्णित है। उनके परिजन और पुरजन

---

1 अ० रा० 7/9/32 से 34

ही नहीं जहां कहीं भी राम जाते हैं वहां के समस्त जीव प्रभु के शरणापन्न हो जाते हैं। उनके शरणागत सभी वर्गों के लोग हैं।[1] केवल मनुष्य ही नहीं राक्षस एवं पक्षीगण भी तथा जंगल में रहने वाले किरातादि भी।

सुग्रीव निज स्वार्थवश प्रभु की शरण में आया और प्रभु ने आजीवन के लिए अपना रक्षकरूप हाथ उसके मस्तक पर रख दिया। सुग्रीव का सब संताप उस शीतल स्नेह की छाया में मिट गया।[2]

निज भ्राता से तिरस्कृत विभीषण जब दीनानाथ प्रभु का चिन्तन करता हुआ आता है और दूर से ही उनकी स्तुति करता है[3] तो शरणागत-वत्सलराम शत्रु के भाई को भी तुरन्त शरण्यभाव से प्रेरित होकर विभीषण से मिले और मधुरवाणी द्वारा उसे आश्वस्त कर देते हैं।[4]

पतितोद्धारक राम -

राम का यह सर्वकल्याणकारी, पतितोद्धारक रूप ग्रन्थ में सहज ही देखा जा सकता है। भगवान् राम ने अवतार ही लिया है इसी उद्देश्य से। लोक रक्षा, असुर-विनाश एवं शापित तापित के उद्धार के लिए ही दशरथ के आगंन में शैशव एवं कौमारावस्था व्यतीत कर, वे भीषण वन में आये। घोर अपराध करने वाली गौतमवधू को सहज ही पवित्र करने वाले और उसे शापमुक्त करने वाले[5] राम अरण्य में घूम घूम कर शापित राक्षसादिकों को निदेर्शन से पवित्र कर परम दुलर्भ स्वधाम देते हैं।[6] और कुंभकर्ण, मेघनाद तथा रावणादि

---

1 स्त्री जाति की शबरी, राक्षस राज विभीषण, वानरराज सुग्रीव, निषाद-राज गुह इत्यादि।

2 वसाम्यद्य भवत्पादसंस्पर्शात्सुखितो स्म्यहम् । अ0 रा0 5/1/58

3 कृता जलिपुटोभूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे । 6/3/16

4 अ0 रा0 6/3/33

5 अ0 रा0 6/10/44 से 54

6 अ0 रा0 1/5/35, 36

जैसे भीषण राक्षसों को मुक्ति प्रदान करते हैं। उनका पतित पावनत्व कल्याण भावना से युक्त है।

राम की करूण एवं भक्त वत्सलता -

राम अपने भक्तों के प्रति अकारण ही कृपालु हैं। भक्तों को भक्ति का सुयोग देने के लिये ही राम ने अवतार लिया।[1] उनकी कृपा भक्ति को भक्तों के लिए मोक्ष से भी बढ़कर सर्वोत्कृष्ट है।[2] कृपा सिन्धु राम की कृपा अपने भक्तों के प्रति असीम है। अकारण-करूण-प्रभु की करूण भक्तों के लिए विशेष है। उनकी करूणा विपक्षी वर्ग के प्रति भी है। अत: राक्षसादि भी इसके लिये लालायित है। उनकी कृपा मात्र ही उनके भक्तों की कार्यसाधिका है।[3] अत: उनके भक्त प्रभुकृपा के ही याचक हैं। जो उनकी शरण में चला गया कितना ही दुराचारी, कितना ही पापी वह क्यों न हो उसको मुक्ति मिली। वनचर निषादराज, अरण्यवासी दिव्यदृष्टा महर्षि भीषणाति-भीषण राक्षसवृन्द तथा उनके अनन्यप्रेमी और भक्त, सभी भक्त वत्सलराम की अहैतुकी करूणा के अधिकारी एवम् भक्ति से ओतप्रोत हैं। प्रभु की भक्त वत्सलता ही भक्ति उत्पादिनी है।

राम का भक्त भावन तथा पतित पावन रूप ही अध्यात्म रामायण में अधिक चित्रित हुआ है।

भरत -

वाल्मीकि ने भरत का कर्तव्यनिष्ठ रूप चित्रित किया है। अध्यात्म-रामायण में इनका रूप कर्तव्य निष्ठ के साथ-साथ राम प्रेम की प्रतिमूर्ति बनाकर

---

1 वनवास की अवधि शापित राक्षसों विराध तथा खरदूषणादि

2 अ० रा० 2/2/24 भक्तानां भक्ति सिद्धये

3 सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा।
ददात्यपि न गृह्णान्ति भक्तामत्सेवनं विना ।। अ० रा० 7/7/66

उसे राम के प्रति अनन्य निष्ठा एवं सेवा भावना से ओतप्रोत किया है। विशुद्ध भक्ति के प्रतीक एवं राम के प्रेम में रंगे भरत का चरित्र परमोज्ज्वल है। संघर्षों की उर्मियों के आवर्त में उनका धैर्य, भक्ति एवं राम के प्रति उनकी निष्ठा अडिग एवं अविचल है।

अध्यात्मरामायण में सर्वप्रथम भरत का परिचय उनके नामकरण के अवसर पर होता है।

भरणाद्भरतो[1]। गुरू ने उनका नाम भरत संसार का पोषण करने वाला होने से रखा। निष्ठा एवं सेवा भावना से प्राणान्वित भरत का रूप है।

भरत-चरित्र के चित्रांकन के प्रमुख स्थल हैं - रामवनगमन के अनन्तर कैकय देश से प्रत्यावर्तन पर भरत की दशा चित्रकूट प्रसङ्ग, अवध में निवास तथा राम के अयोध्या लौटने के प्रसङ्ग वर्णन। उनका रूप उक्त सभी स्थलों में संघर्षमयी परिस्थितियों की कसौटी पर खरा उतरता है। दशरथ मरण, राम बनवास, माता के कार्यों पर आत्म ग्लानि जन साधारण की आशंकित दृष्टि इत्यादि विकट परिस्थितियों में सर्वत्र भरत का निःस्पृह त्याग, संयम एवं धैर्य सराहनीय है।

दशरथ मरण के पश्चात् वसिष्ठ ने भरत को बुलाने के लिए दूत भेजे। दूतों के द्वारा वसिष्ठ के संदेश - शीघ्रमागच्छतु पुरीमयोध्यामविचारयन्[2] को सुनते ही वे अनिष्ट की आशङ्का से आशङ्कित एवं आतंकित हो उठे। उन्होंने सोचा कि अवश्य ही महाराज दशरथ या रघुनाथ पर कोई संकट उपस्थित हुआ है।[3] मार्ग में नाना प्रकार की चिन्ता करते हुये नगर में पहुंचना उनकी

---

1 अ० रा० 1/3/42

2 अ० रा० 1/7/54

3 आपयौ गुरूणादिष्टः सह दूतैस्तु सानुजः ।
राज्ञो वा राघवस्यापि दुःखं किं चदुपस्थितम् ।।
- अ० रा० 2/7/55

निष्कपटता के प्रमाण हैं।

मातुल गृह से लौटकर उन्हें जनसमूह से रहित उत्सवहीन नगर के दर्शन होते हैं।[1] तत्पश्चात् राजलक्ष्मी से शून्य भवन में एकाकिनी बैठी हुई कैकेयी के दर्शन होते हैं। माता को भक्ति पूर्वक प्रणाम कर सर्वप्रथम वे अपने पिता की कुशल पूछते हैं।[2] किन्तु कैकेयी के भवन में पितृ-मरण एवं राम-वनवास के दु:संवाद के वज्राघात ने भरत को मर्माहत कर डाला।[3] उस दारुण वेदना से वे गम्भीर न रह सके विक्षुब्ध हृदय भरत ने कैकेयी पर अत्यन्त कटूक्तियों में मर्यादा के विरुद्ध प्रहार किया। अध्यात्मरामायण में भरत की उक्तियों में मार्यादा एवं विवेकशील नहीं है। वे अपनी माँ से कहते हैं कि 'भर्तृघातिनी दुष्टे तू कुम्भीपाक नरक मे पड़ोगी' वे कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ही अपने को महापापी कहते हैं।[4]

माता का तिरस्कार कर भरत कौशल्या के घर जाते हैं। वहाँ पर दु:खिनी कौशल्या उन्हें गले से लगाकर कैकेयी के कुकृत्य को बताती हैं। अपने हृदय की निष्कपटता एवं सहृदयता प्रकट करने के लिए भरत नाना प्रकार की शपथ ग्रहण करते हैं।[5] यद्यपि कौशल्या के हृदय में किसी प्रकार की कोई

---

1 अ0 रा0 2/7/55

2 अ0 रा0 2/7/63

3 इति मातुर्वच: श्रुत्वा वज्राहतइवद्रुम: ।। अ0 रा0 2/7/77

4 भर्तृघातिनि दुष्टे त्वं कुम्भीपाकं गमिष्यसि । अ0 रा0 2/7/81
पापे तवद्गर्भजातो हं पापवानास्मि साम्प्रतम् । अ0 रा0 2/7/80

5 कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने ।
अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि।। अ0 रा0 2/7/88
पापमे स्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ।
हत्वावसिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ।। अ0 रा0 2/7/89

आशङ्का नहीं है और भरत के शपथ लेने पर उनका आलिङ्गन कर वे कहती हैं - कौशल्या तमथालिङ्गय पुत्रजानामि मा शुच: [1] किन्तु भरत के निश्छल हृदय की झांकी प्रस्तुत करने के लिये ही इस प्रकार का वर्णन हुआ है। कौशल्या के वात्सल्य के पूर्णाधिकारी भरत हैं। शोकसन्तप्ता देखकर ही इस प्रकार की अनेक शपथ लेते हैं। उदारशीला कौशल्या के मन में भरत के प्रति कभी आशङ्का ही नहीं उठती ।

दुख-जलधि में निमग्न भरत कर्तव्य नौका पर सुदृढ़ रूपेण आरूढ़ होकर गुरू के द्वारा आदिष्ट पिता का अंत येष्टि संस्कारादि करते हैं।

राजसभा में वसिष्ठ के द्वारा राज्य-प्रस्ताव को सुनकर भरत अपना विनम्र ग्लानियुक्त एवं रामचरणानुरागी दीन-भक्त का रूप प्रस्तुत करते हैं।[2] वे कहते हैं कि राज्य से उनका क्या प्रयोजन। महाराज राम ही राजाधिराज हैं, वे तो उन्हीं के दास हैं - रामो राजाधिराजश्च वयम् तस्यैव किंकरा: एकमात्र प्रभुदर्शन ही उनका प्राप्तव्य है। अध्यात्म-रामायण में भरत का भावग्राही भक्त का चित्र चित्रित है। नगर निवासियों से वे कहते हैं कि आप लोग चलें या न चलें मैं तो शत्रुघ्न सहित पैदल ही दण्डकारण्य को जाऊंगा। अनन्तवैभव सम्पन्न दशरथ का पुत्र अपने राम से मिलने पैदल ही जायगा। इतना ही नहीं जब तक राम नहीं लौटेंगे तब तक वल्कल वस्त्र और जटाजुट धारण कर कन्दमूल फल आदि का भोजन कर पृथिवी पर शयन करेंगे।[3] यह है भरत का भक्त रूप। उन्हें राज्यादि से क्या सम्बन्ध। वहां तो केवल एक इच्छा है, अशान्त हृदय की शान्ति के लिये एक मात्र उपाय है -

---

1 अ0 रा0 2/7/91

2 अ0 रा0 2/8/6 से 10 तक

3 शत्रुघ्न सहितस्तूर्णं यमायात वा नवा।
रामो यथा वने यातस्तथाई वल्कलाम्बर: ।। अ0 रा0 2/8/9
फलमूलकृताहार: शत्रुघ्नसहितो मुने ।
भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते । अ0 रा0 2/8/10

तच्छुवोभूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान्[1] यहां पर ज्येष्ठ भ्राता का भाव नहीं अपितु सेवक सेव्य भाव जो ठहरा। अपने आराध्य से मिलने के लिए राज्य सभायें गुरू परिजन एवं पुरजन भला कब अवरोध कर सकते हैं। भरत के निश्चल पर समस्त लोगों ने प्रसन्न हो उन्हें साधुवाद दिया।[2]

अयोध्या के पश्चात् भरत का चरित्र विशेष अवलोकनीय है। भरत को अपने चरित्रकुन्दन के निखार के लिये कई बार परीक्षाएं देनी पड़ीं।

अब उनकी परीक्षाओं के चित्रों का दर्शन कर हम भरत का निष्कलुष पावन चरित्र का अवलोकर करेंगे।

राम से मिलने के लिए भरत सैन्य कौसल्यादि माताओं एवं पुरजनों सहित वन मार्ग की ओर अग्रसर हुये। गङ्0गातीर पर भरत को ससैन्य आया हुआ देखकर निषादराज के मन में दु:शङ्0कायें होने लगीं। उसने सोचा कि भरत राम का कोई अनिष्ट करने के लिए आये हैं।[3] उनका मार्म जानने के लिये वह बहुत ही भेंट सामग्री लेकर भरत के समीप आया।[4]

वहां दीन हीन एवं राम नाम का जप करने वाले भरत के रूप को देखकर, भरत के पीड़ित एवं विशुद्ध हृदय की वास्तविकता का ज्ञान होने पर वह उनकी भावमयता से अभिभूत होकर भक्ति पूर्वक प्रणाम करता है।[5]

भरत-गुह मिलन आध्यात्मिक स्तर का है। अध्यात्मरामायणकार ने यहां पर भरत का वह उत्कृष्ट भक्त रूप चित्रित किया है, जिसे अपने आराध्यराम के समान ही उनके प्रिय एवं उनके भक्तप्रिय हैं। राम के प्रियतम सखा एवं भक्त से वे सखा भाव से मिले।[6] मात्र सखा सम्बोधन ही नहीं

---

1 अ0 रा0 2/8/8

2 साधुसाध्विति तं सर्वे प्रशशंसुर्मुदान्विता: ।। अ0 रा0 2/8/11

3 अ0 रा0 2/8/14, 15, 16

4 अ0 रा0 2/8/17, 18

5 ननाम शिरसा भूमौ गुहो हमिति चाब्रवीत् । 2/8/21

6 सखायमिदमब्रवीत अ0 रा0 2/8/22

भक्ति के सरस भावों से ओतप्रोत भरत ने उसे आदरपूर्वक गाढ़ालिङ्गन कर उसकी कुशल पूछी।[1] विरह व्याकुल भरत अपने सखा के साथ राम के निवास स्थलों को देखते हैं। राम-सीता के कुशमय आसनों को देखकर उत्पीड़ित भरत बारम्बार स्वयं ही ममाहित होकर अपने को धिक्कारते हैं।[1] वे सोचते हैं कि लक्ष्मण का जन्म सफल है जो प्रसन्न मन से राम की सेवा कर उसके साथ रहते हैं।

यहां पर उनके दृढ़ संकल्पात्मक रूप के अतिरिक्त अध्यात्मरामायण कार ने दैन्य प्रतिमूर्ति रूप चित्रित किया है। यहां भ्रातृपक्ष एवं स्नेहभाव के अतिरिक्त दास्यभाव विशेष है। वे कहते हैं कि जो लोग राम के दास हैं उनके दासों का दास भी यदि मैं हो जाऊं तो मेरा जन्म सफल हो जाय, इसमें संदेह नहीं।[2]

आर्त भक्त भरत सखा गुह से राम के निवास स्थलों को दिखाने की आतुर प्रार्थना करते हैं और उससे ही मार्ग निर्देश की कामना करते हैं।[3] भरत के भाव को देखकर गुह उनकी राम में विशुद्ध भक्ति जानकर उन्हें धन्य समझता है।[4]

भरत के अपूर्व चरित्र के दर्शन भरत-भारद्वाज मिलन के अवसर पर होते हैं। प्रथम तो मुनिवर्य प्रीतिपूर्वक उनकी पूजा करते हैं तत्पश्चात् उनसे पूछते हैं कि राज्य शासन करते हुए भरत ने क्यों वल्कलादि धारण किया है।[5]

---

1 शीघ्रमुत्थाय भरतो गाढमालिङ्ग्य सादरम् ।। अ0 रा0 2/8/22

2 अहं रामस्य दासाये तेषां दासस्य किङ्कर: ।
यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान्न संशय: ।। अ0 रा0 2/8/33

3 भ्रातर्जानासि यदि तत्कथयस्व ममाखिलम् ।
यत्रतिष्ठति तत्राहिं गच्छाम्यानेतुम जसा । अ0 रा0 2/8/34

4 देव त्वमेव धन्योऽसि यस्य ते भक्तिरीदृशी। अ0 रा0 2/8/35

5 राज्यंप्रशासतस्ते च किमेतद्वल्कलादिकम् ।
आगतोऽसि किमर्थं त्वं विपिनं मुनिसेवितम् ।। 2/8/44

ऋषि के इस प्रश्न के उत्तर में -

वनवासादिकं वापि न हि जानामि किं चन् ।
भवत्पादयुगं मे च प्रमाणं मुनिसत्तम ।।[1]

राम के चरणों को साक्षी करके अपने हृदय की निष्कपटता का प्रमाण देते हैं। सर्वज्ञ ऋषि से वे कहते हैं कि आप स्वयं जान सकते हैं कि मैं निर्दोष हूं या दोषी। राम के रहते उन्हें राज्य से क्या प्रयोजन वे तो सदा से ही राम के श्री चरणों के दास हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ ऋषि द्वारा पवित्र हृदय भरत की परीक्षा होती है उसकी अग्नि में तपकर उनका चरित्र तब आलोकित हो उठता है जबकि भरद्वाज उनको साधुवाद देते हैं। और कहते हैं कि उन्होंने अपने ज्ञान चक्षुओं से पहले ही सब कुछ जान लिया था। भरद्वाज उन्हें लक्ष्मण की अपेक्षा भी राम का परम भक्त कहते हैं।[2] भरद्वाज जैसे ब्रह्म-निष्ठ तपोनिष्ठ महर्षि भी अपनी कृतज्ञता के भाव भरत के प्रति अर्पण करते हैं और सेना के सहित उनका आतिथ्य करने की कामना करते हैं।[3] अध्यात्म-रामायण के भरत में उच्च भावों का ही प्रदर्शन हुआ है यधपि रूप के साथ ही। भरद्वाज के सर्वज्ञ होने पर भी भरत से उक्त प्रकार के प्रश्न पूछना मानों उनकी नैतिक उच्चता का प्रमाण देना है।

अध्यात्मरामायण में भरत का चरित्र चित्रण मौलिक संघर्ष एवं राज-नीतिक पृष्ठभूमि पर महत्वपूर्ण न होकर, कर्तव्यपरायण भ्रातृ-प्रेमी और न सबसे बढ़कर प्रेम-विह्वल भक्त के रूप में होता है। भक्तों के भावुक हृदयों पर उच्च स्थान प्राप्त करने वाले भरत का रूप अध्यात्म-रामायण में मिलता है।

---

1 अ० रा० 2/8/47

2 वत्सज्ञातं पुरैवैतद्भविष्यं ज्ञानचक्षुषा।
मा शुचस्त्वं परो भक्त: श्रीरामे लक्ष्मणादपि । अ० रा० 2/8/53

3 आतिथ्यं कर्तुमिच्छामिससैन्यस्य तवानघ।। 2/8/54

4 वही, 2/9/54

भरत की भक्ति के अगाध सिन्धु का दर्शन हमें चित्रकूट सभा में होता है। साक्षात् प्रेम एवं दैन्य भरत के रूप में प्रकट हुआ है। चित्रकूट की सभा में भगवान् राम के चरण चिह्नों को देखते ही वे उस रज में लौटने लगते हैं।[1] भरत का रूप अध्यात्मरामायण में उस समय इस प्रकार का है -

इत्यद्भुतप्रेमरसाप्लुताशयो, विगाढचेतारघुनाथ भावने।[2]
आनन्दजाश्रुस्नपितस्तनान्तर:, शनैरवापाश्रमसन्निधं हरे: ।।4।।

अध्यात्मरामायण में राम भरत मिलन आध्यात्मिक स्तर की उच्च भावभूमि पर है। इस प्रसंग में भक्ति भावना प्रधान है। अध्यात्म-रामायण में भरत का आर्त-भक्त रूप मिलता है। इसमें भाव पक्ष की प्रधानता है।

चित्रकूट की सभा में भरत, तार्किक रूप में भी उपस्थित होते हैं। वे राम को अयोध्या ले जाने के लिए इस प्रकार तर्क देते हैं[3]- इक्ष्वाकुवंश की परम्परा के अनुसार राज्य के अधिकारी राम हैं। इसके लिये वे कहते हैं कि प्रजा का पालन करना क्षत्रियों का मुख्य धर्म है। भरत एक और तर्क उपस्थित करते हैं कि वंशवृद्धि के लिये पुत्र उत्पन्न करके उसे राज्यसिंहासन पर बैठाकर तब क्षत्रिय वन को जायें।[4] अपनी माता के अपराध को भी भूल जाने की प्रार्थना वे राम से करते हैं ।[5]

राम उन्हें पिता के वचनों कीरक्षा, करने का आदेश दे उनके तर्कों का खण्डन करते हैं।[6]

---

1 अ0 रा0 2/9/2   2 अ0 रा0 2/9/4

3 अ0 रा0 2/9/23 से 25 तक

4 इष्ट्वायज्ञैर्बहुविधै: पुत्रानुत्पाद्य तन्त वै। राज्ये पुत्रंसमारोप्यगमिष्यामि ततो वनम्, अ0 रा0 2/9/24

5 वही, 2/9/24

6 अ0 रा0 2/9/30 से 32 तक

नैतिकता धर्मशीलता, विवेक का विचार करते हुये भरत अपने पिता में भी दोष दर्शन करते हैं।[1] धर्मशीलता की दृष्टि से वे राम को भी क्षात्र धर्म का पालन करने का आग्रह करते हैं। राम के अकाट्य तर्कों से पराजित भरत की हठधर्मिता दृष्टिगत होती है। वे शपथपूर्वक कहते हैं -

अहमप्यागमिष्यामि सेवे त्वां लक्ष्मणो यथा।
नोचेत्प्रायोपवेशेन त्याजाम्येतत्कलेशवरम् ।।[2]

और ऐसा निश्चय कर वे धूप में कुशा बिछाकर पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाते हैं।

अध्यात्मरामायण में सर्वत्र वातावरण आध्यात्मिक सा है। राम साधारण पुरूष नहीं बल्कि परब्रह्म परात्मा ही है - इस बात को कोई विस्मरण न कर दे इसके लिये लेखक ने स्थान स्थान पर ऐसे चरित्रों की सृष्टि की है जो राम के अवतार विषयक रहस्य को बताते हैं। इससे पात्रों का यथार्थ रूप कम ही उभरा है। सभी पात्र उनके ब्रह्मरूप को जानकर उनकी लीला से समस्त कार्य सम्पादित किये जानेकर आश्वस्त हो जाते हैं।

यहाँ पर भी वामदेव के द्वारा इस रहस्य को जानकर भरत आश्चर्य चकित हो जाते हैं। हठ त्याग कर वे राम की पादुकाओं को राज्यशासन के लिए माँग लेते हैं।[3]

राम भरत के भक्ति-भाव को देखकर उन्हें पादुकायें दे देते हैं।[4]

भरत की निरभिमानिता एवं राम की शक्तिमता काप्रदर्शन पादुका ग्रहण द्वारा हुआ है। अपने कार्यों का उत्तरदायित्व भाई को ही,

---

1 अ० रा० 2/9/33

2 अ० रा० 2/9/39

3 अ० रा० 2/9/48, 49

4 अ० रा० 2/9/50

चरण पादुकाओं के माध्यम से देकर स्वयं निमित्त-मात्र बन कर भरत आज्ञाकारी रूप में चित्रित हुये। यह है भरत का सेवक एवं भक्त का रूप जिसमें हार में भी जीत और जीत में भी हार दिखाई पड़ती है।

दुखों से संतप्त भरत का राम के प्रति चिरप्रेम ही स्वर्ण है और भ्रातृस्नेह उस स्वर्ण की सुगंधि है। सर्वत्र भरत का विनयशील एवं भक्तरूप ही दर्शनीय है। प्रेम की वेदी पर इन्होंने अपना तन, मन-धन सर्वस्व अर्पण किया परन्तु बदले में किसी वस्तु की कामना तक नहीं की। यह है भरत की निष्काम भक्ति।

भरत का चरित्र पवित्र प्रेम और निर्मल भक्ति से पूरित है। उनके व्यक्तित्व में सरलता, पवित्रता और निर्मलता के साथ पवित्र प्रेम और विशुद्ध भक्ति का समन्वय है।

वनवास की अवधि समाप्त होने पर तथा राक्षसादि का वध करने के अनन्तर जब राम हनुमान् को भरत को अपने आगमन का समाचार देने के लिये भेजते हैं तो वहां प्रतीक्षारत आतुर भरत का रूप मिलता है। नन्दिग्राम पहुंचने पर हनुमान् भरत को आतुर एवं अति दैन्यावस्था में स्थित राम-भक्त के रूप में देखते हैं।[1] उनके मन्त्री तथा मुख्य मुख्य पुरवासी भी काषाय वस्त्रधारी हैं।[2] भरत के रूप में भक्त की आन्तरिक वेदना का सजीव रूप ग्रन्थकार ने चित्रित किया है। राम के आगमन का समाचार सुनकर हर्ष से मूर्छित हो सुधबुध भुला कर वे पृथिवी पर गिर पड़े।[3] प्रभु-विरह से व्याकुल भरत हनुमान् को हृदय से लगाकर आनन्दाश्रु से सींचने लगे।[4] यह राम के दूत

---

1 अ० रा० 6/14/51 से 54 तक

2 मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च काषायाम्बरधारिभिः ।। 6/14/53

3 एवमुक्तो महातेजा भरतोहर्षमूर्च्छितः ।
पपात भुवि चास्वस्थः कैकेयीप्रियनन्दनः ।। - अ० रा० 1/14/58

4 अ० रा० 6/14/59

का भरत से मिलन न था, बल्कि भरत तो राम के प्रिय एवं भक्त से मिल रहे थे। भरत तो राम के सेवकों के भी सेवक बनने में अपने को धन्य समझते हैं। हनुमान् से वे राम के सम्पूर्ण वृतान्त को सुनते हैं।

अयोध्यागमन-प्रसङ्ग पर भरत अपनी थाती का निक्षेप करते हैं। धरोहर रूप में सौंपे राज्य को वे राम को सौंप देते हैं।[1]

लक्ष्मण -

अध्यात्मरामायण में सेवापरायण भाई एवं राम के परम भक्त के रूप में लक्ष्मण का चित्र उपस्थित हुआ है। अध्यात्मरामायण के अध्ययन से जैसा कि स्पष्ट होता है कि प्रत्येक पात्र ज्ञान, भक्ति, कर्म आदि तत्वों के लिये ही आध्यात्मिक रंगमंच पर कठपुतली की भांति चित्रित हुये हैं। प्राय: सभी चरित्र इसी की पूर्ति के लिये आते हैं। अत: पात्रों के चरित्र चित्रण की विशेष सामग्री ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होती। वाल्मीकिरामायण तथा रामचरितमानस की भांति कुशल नीतिज्ञ के रूप में अथवा भरत सम भाई पर शङ्का प्रकट करने वाले एवं क्षण क्षण पर उग्र रूप धारण करने वाले लक्ष्मण के दर्शन हमें इस ग्रन्थ में नहीं होते। अपितु शान्त, सरल भ्रातृ-सेवी एवं तत्व जिज्ञासु लक्ष्मण का रूप दृष्टिगोचर होता है।

सुलक्षण[2] सम्पन्न लक्ष्मण का चरित्र राम में ही समाहित है। पायशांस के अनुसार लक्ष्मण राम के साथ तथा भरत शत्रुघ्न के साथ रहते थे।[3]

---

1 राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्यातितं तव ।
अद्य मे सफलं जन्म फलितो मे मनोरथ:।। अ0 रा0 6/14/94

2 लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् । 1/3/41

3 लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च ।
द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारत: ।। अ0 रा0 1/3/42

अभिन्न संगी लक्ष्मण सेव्य सेवक भाव से आदर पूर्वक राम का अनुगमन करते थे। मृगया के समय भी वे लक्ष्मण से अनुगत देखे जाते हैं।[1] भगवान् विष्णु के राम-रूप में अवतीर्ण होने पर मात्र उनकी सेवा के लिये शेष, लक्ष्मण के रूप में अवतरित होते हैं। ऋषि-विश्वामित्र, राम की याचना के समय लक्ष्मण के सहित राम की याचना करते हैं।

अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण राम के अभिन्न संगी के रूप में चित्रित हैं। वाल्यकाल में पायसांशानुसारत:[2] राम, लक्ष्मण के साथ ही क्रीड़ा करते हैं। वन-गमन के अवसर पर, विपत्ति के साथी लक्ष्मण हठ करके उनके साथ वन को जाते हैं।[3] वन-गमन का समाचार सुनकर पहले अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते हैं और अपना क्षोभ प्रदर्शित करते हुये अपने पिता के चरित्र की कटु आलोचना करते हैं।[4] क्रोध की पराकाष्ठा पर पहुँचकर कटूक्तियाँ एवं पिता के लिये अनुचित उक्तियां करते हैं। यहां पर इन सबके मूल में छिपा है- उनका राम के प्रति प्रेम। भ्रातृ-वत्सल लक्ष्मण, भाई के मार्ग[5] में विघ्नस्वरूप आये हुये पिता को बांध सकते हैं। कैकेयी तथा भरतादि का वध कर सकते है। विघ्न उपस्थित करने वाले समस्त लोगों को वे अपने धनुष से मार सकते हैं।

---

1 अस्वारूढो वनंयाति मृगयायै सलक्ष्मण:।
अ0 रा0 2/4/7 - अ0 रा0 1/3/63

2 रामस्तु लक्ष्मणेनाथ विचरन्वाललीलया ।। अ0 रा0 1/3/43

3 अ0 रा0 2/4/ श्लोक 51, 52
यास्यामि पृष्ठतो राम सेवां कर्तुं तदादिश ।

4 अ0 रा0 2/4 श्लोक 15, 16, 17

5 वही श्लोक 17

अपना हितकारी कह कर राम भाई के शौर्य की सराहना कर सौमित्र को शान्त करने की चेष्टा करते हैं।[1] दार्शनिक उपदेशों एवं कर्मयोग का उपदेश देकर वे खिन्नमना लक्ष्मण को आश्वस्त करते हैं। राम भरत से जगत् की असारता प्रारब्धादि का भोग, विद्या अवि द्यादि तत्वों का विवेचन करते हैं।

लक्ष्मण के ओजस्वी रूप का चित्रण अध्यात्मरामायण में कम हुआ है। जैसा वाल्मीकिरामायण में धनुर्भङ्ग के प्रसङ्ग में परशुरामसंवाद के समय तथा वन-गमन के पश्चात्, राम से मिलने आये हुए भरत के प्रति शङ्कालु लक्ष्मण का जैसा ओजस्वी रूप मिलता है, अध्यात्म-रामायण में वैसा नहीं मिलता। अध्यात्मरामायण में वन-गमन प्रसङ्ग ही एक ऐसा स्थल है जहाँ लक्ष्मण का ओजस्वी रूप में चित्रण हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में सेवक का विनय-शील रूप में ही लक्ष्मण का चित्रण हुआ है। भक्ति, ज्ञान एवं कर्म का समन्व-यात्मक रूप लक्ष्मण के चरित्र में है। उनके दृढ़, त्यागशील जीवन का दर्शन आद्यन्त होता है।

अरण्य निवास में उनकी प्रतिक्षण की सेवा-परायणता स्तुत्य है। अरण्य-वास की प्रथम रात्रि में कर्मशील तथा राम के अनन्य सेवक लक्ष्मण का राम के प्रति अनुराग का चित्रण इस प्रकार हुआ है - राम और सीता के सो जाने पर वे धनुष लेकर उनकी रक्षा करते हैं।[2] सम्पूर्ण रात्रि वे निषाद के साथ, सम्भाषण करते हुये व्यतीत करते हैं।[3] इस समय ज्ञानी-लक्ष्मण का भी चित्र मिलता है। निषाद के द्वारा कैकेयी की निन्दा की जाने पर लक्ष्मण उसे सुख-दु:खादि कर्मों का विवेचन कर कहते हैं कि मनुष्य का पूर्व कर्म ही सुख दु:खादि का देने वाला है।[4]

---

1 शूरो सि रघुशार्दूल ममात्यन्तहिते रत:।
जानामि सर्वं ते सत्यम् किन्तु तत्समयो न हि ।। 2/4/18

2 अ0 रा0 2/4/19 से 46 तक

3 अ0 रा0 2/5/52

4 अ0 रा0 2/6/16

तत्व के जिज्ञासु के रूप में अनेक स्थलों पर लक्ष्मण का चित्रण हुआ है।[1] पंचवटी निवास के समय वे राम से मोक्ष का साधन जानने की इच्छा व्यक्त करते हैं। मोक्ष ही नहीं वे भक्ति और वैराग्य से युक्त ज्ञान का स्वरूप भी जानना चाहते हैं।[2] इसी प्रकार प्रवर्षण पर्वत पर (सीता-हरण के पश्चात्) निवास करते हुये वे राम से क्रिया मार्ग को जानना चाहते हैं, जिसके द्वारा योगीजन भगवान् की आराधना करते हैं।[3] यह क्रियामार्ग प्रत्येक वर्ण और आश्रम में मोक्ष देने वाला है।[4] राम से वे प्रेम और भक्तिपूर्वक इस विषय में प्रश्न करते हैं। भक्त्या प्रणयाद्विनयान्वित: यह है तत्व जिज्ञासु एवं परम विज्ञानी लक्ष्मण का चित्रण।

तमसा तट[5] पर पहुंचने पर वे राम के लिए कुश पत्तों की शय्या बनाकर अरण्य-निवास के प्रसङ्ग में स्वयं धनुष-वाण लेकर उनकी रक्षा करते हैं। इस प्रसङ्ग में लक्ष्मण की सेवा परायणता दर्शनीय है। वहां वे राम के निवास के लिए पर्णशाला का निर्माण करते हैं। उनका यह सेवा परायण रूप वनवास की सम्पूर्ण अवधि में परिलक्षित होता है। राम के परम-सहायक लक्ष्मण के अनन्त क्रिया सहयोग द्वारा ही तो राम अपने कर्म-क्षेत्र में कृतकार्य हो सके। सर्वत्र प्रभु रक्षा के अविचल ध्यान में ही वे संलग्न रहे। सेवा धर्म ही उनका परमाधार है। अनुचर रूप में ही तो वन जाने की उन्होंने कामना की थी - यास्यामि पृष्ठतो राम सेवां कुर्वं सदादिश।

---

1 अ० रा० - भगवन् श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकींगतिम्। 3/4/17

2 अ० रा० 3/4/18

3 अ० रा० 3/4/8

4 अ० रा० 3/4/10

5 अ० रा० 3/6/71,73

सीता -

अध्यात्मरामायण में राम-ब्रह्म हैं और सीता साक्षात् प्रकृति एवं ब्रह्म की शक्ति माया हैं।[1] उन्हें मूल प्रकृति भी कहा गया है।[2] ब्रह्म राम के कार्यों को करने के लिये ही उन्होंने अवतार लिया है। राम विष्णु हैं, और सीता लक्ष्मी जी हैं।[3] इस प्रकार साधारण मानवी के रूप में उनका चित्रण नहीं हुआ है। राम के कार्यों को सम्पन्न कराने के लिये ही उन्होंने अवतार लिया है। राम के स्वरूप के साथ उनकी अखण्ड अभिन्नता का प्रतिपादन इस प्रकार हुआ है -

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ।।

माया सदैव ब्रह्म के आश्रित है, उनकी अभिन्न रूपा एवं आश्रिता मायास्वरूपा सीता हैं। राम के समस्त कार्य इसी माया-शक्ति के द्वारा ही सम्पन्न हैं।[4]

धनुर्भङ्ग - प्रसङ्ग में विश्वामित्र से जनक कहते हैं - नान्येभ्यः पूर्वभार्येषा रामस्य परमात्मनः ।[5] राम की भार्या सीता ही, विष्णु की लक्ष्मी हैं।[6] उन्हीं को राम को देने के लिये जनक ने धनुष को पण बनाया था। सीता के विषय में रहस्य उनसे नारद ने बताया था कि योगमाया ने सीता के रूप में जन्म लिया।

---

1 एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। अ० रा० 2/5/23

2 अ० रा० 1/1/34

3 अ० रा० 1/1/34

4 एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि ।। - अ० रा० 1/1/42

5 अ० रा० 1/6/66

6 तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते ।। अ० रा० 1/6/67

7 अ० रा० 1/6/64, 65

अध्यात्मरामायण में कहा गया है - संसार में जो कुछ पुरुष-वाचक है वह सब राम हैं, और स्त्रीवाचक सब जानकी हैं।

सीता, अध्यात्मरामायण में राम की परमसहायका, कर्तव्य परायणा एवं त्यागमयी रमणी के रूप में चित्रित हैं।

विशिष्ट नैतिक गुणों का समावेश उनके चरित्र में है। वे सच्चरित्र और दृढ़ संकल्प से युक्त हैं।

परम-विवेकशीला एवं तत्व-ज्ञान का उपदेश करने वाली जानकी का दर्शन सीतारममरुत्सूनुसंवाद में होता है। स्वयं राम उनसे हनुमान् को अपने तत्व का उपदेश करने के लिए कहते हैं।[2] उस समय वे प्रपन्न हनुमान् से आत्मा, अनात्मा, परात्मा आदि दार्शनिक विषयों का विवेचन करती हैं -

सुचरित्रवती, पतिव्रता सीता राम के वनगमन विषयक समाचार को सुनकर राम के साथ वन को जाने के लिये आग्रह करती हैं। अरण्य के तमाम दु:खों का राम के द्वारा वर्णन करने पर वे क्रोधपूर्वक एवं दु:खातुर होकर ~~कह~~ कहती हैं - कथं मामिच्छसे त्युक्तुं धर्मपत्नीं पतिव्रताम् [3] इतना ही नहीं वे कहती हैं - अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात् त्वमेष्यसि । इस अवसर पर सीता के तार्किक रूप का भी दर्शन होता है।[4] उनके तर्क, कुतर्क नहीं हैं। तर्क करते समय वे भक्ति एवं विनम्रता से युक्त हैं - वे राम से कहती हैं - मैं आपको किसी प्रकार का कष्ट न दूंगी, बल्कि आपके कार्य में सहायका होऊंगी।[5] सीता राम की अनन्य भक्ता हैं।[6] वे राम से अभिन्न हैं। कल्प-कल्प में राम के साथ

---

1 लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी शुभा
पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ।। अ0 रा0 2/1/28

2 ब्रूहि तत्त्वं हनूमते अ0 रा0 1/1/30

3 अ0 रा0 2/4/70

4 अ0 रा0 2/4/70 से 78 तक

5 अहं त्वा क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी । अ0 रा0 2/4/75

6 अ0 रा0 2/4/72

धन की गई हैं - दृढ़-संकल्पवती सीता को यदि राम नहीं ले जायेंगे तो वे उनके सम्मुख ही अपने प्राण त्याग कर देंगी।[1]

वे अपने पति पर गर्वान्विता हैं। पति ही उनके वास्तविक प्राण हैं। वे अपने पति के सुख-दुःख की समभागिनी हैं। प्रत्येक स्थिति में राम का सहयोग उन्हें वांछित है। भले ही वह वनवास हो, अथवा अयोध्या-वास। राम के साथ रहते हुये कंटकादि भी फूलों के बिछौनों के समान होंगे।[2] राम के भुक्तावशिष्ट फलमूलादिक अमृत-तुल्य होंगे। [3] यह है उनका राम के प्रति अनन्यप्रेम और पतिभक्ति।

सीता पतिव्रत की अखण्ड ज्योति हैं। उनकी राम के प्रति अनन्य निष्ठा का प्रमाण उनकी अग्नि परीक्षा के प्रसङ्ग में मिलता है। उन्हें अपने शुद्धाचरण एवं राम के प्रति अनन्य भावना का गौरव है। अटल आत्म विश्वास है, जिसके दृढ़ अवलम्ब से ही वे अग्नि को साक्षी बनाकर उससे दाहक के स्थान पर रक्षक बनने की प्रार्थना करती है - यदि मेरा हृदय रघुनाथ को छोड़कर कभी अन्यत्र नहीं जाता तो समस्त लोकों के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें।[4]

स्वयं महर्षि वाल्मीकि उनकी विशुद्धता का परिचय इस विश्वास के साथ देते हैं - मैंने अनेक वर्षों तक खूब तपस्या की है। यदि इस मिथिलेश-कुमारी में कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्या का कोई फल न मिले ।[5]

---

1 अ0 रा0 2/4/79

2 अ0 रा0 2/4/74

3 अ0 रा0 2/4/73

4 यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् । अ0 रा0 6/12/81
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः । अ0 रा0 6/12/82

5 नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ।
- अ0 रा0 7/7/33

स्वयं राम अपने प्रति सीता की अनन्यता एवं शुद्धता को स्वीकार करते हैं।[1] वे कहते हैं - शुद्धायां जगतीमध्ये सीतायां प्रीतिरस्तु मे।[2]

यहीं तक नहीं इसके बाद सीता का वह मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्र भी प्रस्तुत हैं जहां वे अपनी अनन्यता एवं पातिव्रत धर्म की कसौटी पर खरी उतरती हुई अपने को बलिदान कर देती हैं - अन्तिम क्षण तक उनके मुख से यही वचनावली निःसृत होती है -

रामादन्यं यथाहं वै मनसापि न चिन्तये।
तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति।। 40 ।।

सीता के चरित्र चित्रण में दोष-दर्शन का प्रसङ्ग मारीच वध के समय का है। तुलसी ने इस अवसर पर दोष दर्शन के भय से मर्यादित वर्णन कर उसको हरिप्रेरणा के आवरण से आवृत कर दिया है।[4]

अध्यात्मरामायण में यहां पर सीता अत्यन्त उग्र एवं कटुभाषिणी रूप में चित्रित हैं।[5] वे लक्ष्मण को अनेक न कहे जाने वाले कटु शब्द भी कहती हैं - यहां तक शङ्का कर बैठती हैं कि उन्हें राम का नाश चाहने वाले भरत ने भेजा है। वे और भी कहती है - तू राम के नष्ट हो जाने पर मुझे ले जाने के लिये ही आया है।[6]

---

1 अ0 रा0 7/7/34, 35, 36

2 अ0 रा0 7/7/37

3 अ0 रा0 7/7/40

4 मानस 3/27/5

5 अ0 रा0 3/7/32, 33, 34

6 प्रेषितो भरतेनैव रामनाशाभिकाङ्क्षणा।। अ0 रा0 3/7/32

मां नेतुमागतो सि त्वं रामनाशउपस्थिते ।

- अ0 रा0 3/7/33

सीता का साहसी एवं निर्भीक रूप रावण का तिरस्कार करते समय मिलता है। रावण के प्रति उनका क्रोधोद्गार उनकी क्रोधी प्रवृत्ति नहीं अपितु समयानुकूल साहसी एवं निर्भीक रूप को प्रमाणित करता है।[1]

अध्यात्मरामायण में वाल्मीकि रामायण की भाँति अधिक व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं हुआ है। क्योंकि वे तो प्रभु की अनन्त माया का अवतार साक्षात् लक्ष्मी हैं।

अध्यात्मरामायण में सभी पात्र राम के अनन्य भक्त हैं। सीता भी उनकी भक्ता के रूप में चित्रित हैं - राम की भक्ति एवं चिन्तन ही उनके जीवन का मूलाधार है। उनका यह भक्त व्यक्तित्व अध्यात्मरामायण में आद्योपान्त मिलता है। प्रतिपल वे विषम-परिस्थितियों में राम-गुण-जप एवं स्मरण द्वारा आत्मरक्षा करती हैं - रावण के द्वारा अपहृता, दीना, अशोक वाटिका में भयंकर राक्षसियों से घिरी सीता का एकमात्र सहायक राम नाम है।[2] वाग्बाणों से दुःखी करने के लिये, सम्मुख आये हुये रावण को देखकर भयभीत होती हैं। उस समय भी मात्र राम का ध्यान उनका सहायक है - अधोमुखयश्रुनयना स्थिता रामार्पितान्तरा।[3]

उनका परमधन राम की चरणकमल-रज ही है। इसी के सानिध्य के लिये वे अवध के वैभव-विलास को त्याग देती हैं। परम त्यागमयी सीता का चित्रण अयात्मरामायण में है।

इस प्रकार ग्रन्थ में सीता का चित्रण अतिभव्य है। उनमें असाधारण पातिव्रत धर्म, त्याग, शील, अभय, सेवा सेवातत्परता एवं राम के प्रति अनन्य निष्ठा एवं भक्ति है।

---

1 अ० रा० 3/7/47, 48, 49

2 अ० रा० 5/2/10

3 अ० रा० 5/2/21

उनके आन्तरिक आदर्श चरित्र के साथ ही उनका बाह्य रूप भी अलौकिक, अनुपमेय, दिव्य एवं सर्वोपरि है - उसकी एक झलक के दर्शन करना यहाँ असंगत न होगा। उनके सौन्दर्य का वर्णन कई स्थलों पर आया है । अध्यात्मरामायण में सीता स्वर्णवर्णा[1], कमलपत्राक्षी,[2] शुभलक्षणा[3] सुमध्यमा एवं सौन्दर्यमयी एवं मनोहारिणी हैं।

कौशल्या -

अध्यात्मरामायण में कौशल्या का चित्रांकन आदर्श रूप में है। वे देवमाता अदिति की अवतार हैं। तप:फलस्वरूप वे राम को पुत्र रूप में प्राप्त करती हैं।

कौशल्या का जीवन आद्यन्त भक्ति एवं विवेक से युक्त है। सर्व प्रथम राम-जन्म के अवसर पर उनका परिचय मिलता है। इसी अवसर पर कौशल्या का महत्व स्पष्ट हो उठता है ।

राम के अवतार स्वरूप के दर्शन का आनन्दानुभव केवल उन्हें ही होता है। राम के चतुर्भुज रूप का दर्शन कर वे भक्ति एवं ज्ञान से पूर्ण शब्दों में उनकी स्तुति करती हैं ।[4]

देव देव नमस्ते स्तु शङ्खचक्रगदाधर । परमात्माच्युतो नन्तः पूर्णस्त्वंपुरुषोत्तम। वदन्त्यगोचरं वाच्यां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् । त्वांवेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैक-
विग्रहम् ।। इत्यादि।

अपनी स्तुति में वे माया का विनाश तथा राम के प्रति अनुराग

---

1 अ0 रा0 1/6/29

2 अ0 रा0 1/6/53

3 अ0 रा0 1/6/67

4 अ0 रा0 1/3/20 से 29 तक

की कामना करती हैं।[1]

राम का यह दिव्य-रूप उन्होंने अपनी पूर्व तपस्या के फल से ही देखा। जो मोक्ष प्रदायी एवं पुण्यहीन जनों के लिये अति दुर्लभ है।[2] इस प्रकार के अनुपम ज्ञान एवं भक्ति से युक्त उनका व्यक्तित्व है।

कौशल्या में स्वाभाविक मातृत्व एवं उनका परम-धार्मिक रूप भी मिलता है। राम के अलौकिक रूप दर्शन के बाद वे उनसे आनन्ददायक सुकोमल बालरूप धारण करने के लिये कहती हैं।[3]

राम की ~~क्रि~~ बाल-क्रीड़ाओं आदि के प्रसङ्ग में उनके ममतामय मातृत्व का दर्शन होता है।[4] राम के वन-गमन के समाचार को सुनकर वे दु:ख से अचेत हो जाती हैं। वे मर्माहत हो उठती हैं। धैर्य उनका साथ त्याग देता है। उनकी हृदय-विदारक दशा अत्यन्त हृदयस्पर्शी है।[5] राम की विमाता के प्रति उनके हृदय में कोई क्षोभ नहीं, कोई आवेश नहीं। वे राम से कहती है - कैकेयी को वर देकर चाहे महाराज अपना सर्वस्व दे डालें, किन्तु तुमने राजा अथवा कैकेयी का क्या बिगाड़ा है।[6] राम के वन गमन के अवसर पर वे उनसे न जाने का हठ करती हैं।[7] पति को भी कटुवचन कहती हैं।

---

1 अ0 रा0 1/3/28

2 अ0 रा0 1/3/33

3 अ0 रा0 1/3/299

4 अ0 रा0 1/3/44, 59

5 अ0 रा0 2/4/7/13

6 अ0 रा0 2/4/11

7 अ0 रा0 2/4/11, 12

राम के द्वारा ज्ञानोपदेश से आश्वस्त होती है और परमधार्मिक के रूप में उन्हें आशीष देती हैं।[1] वे राम की प्रशंसा भी करती हैं। वाल्मीकि रामायण की भाँति अध्यात्मरामायण में कौशल्या के हृदय की संकीर्णता नहीं चित्रित की गई है।

भरत के अयोध्या आगमन के समय संयमशीला एवं वात्सल्य रस से विभोर, ममतामयी माँ का रूप ही कौशल्या के रूप में मिलता है -भरत को गले लगाकर यशस्विनी राम-माता कहती हैं - बेटा तुम्हारे चले जाने से जो अनर्थ हुये, अपनी माता की वे सम्पूर्ण चेष्टायें तुमने उनके मुख से ही[2] सुन ली होंगी यहां पर वे भाग्यवादिनी होकर कहती हैं - परम पुरुष ने मेरे गर्भ से जन्म लिया तथापि दुख ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा, अतः विधाता ही बलवान् है।[4] भरत के द्वारा अपनी निर्दोषिता बताने पर, कौशल्या के शब्दों में उनका भरत के प्रति सहज वात्सल्य ही प्रकट होता है। वे कहती हैं-

कौशल्यातमथालिङ्गय पुत्र जनामि मा शुच: [5]

कौशल्या का परम धार्मिक रूप वनगमन के अवसर पर मिलता है। राम के अभिषेक का समाचार सुनकर राम की इष्ट सिद्धि के लिये वे लक्ष्मी का पूजन करती हैं।[6] इसी समय वे दुर्गा का भी पूजन करती हैं।[7]

जिस समय राम अपने वन-गमन का समाचार सुनाने आते हैं उस समय भी वे ब्राह्मणों को धन देकर होम एवं विष्णु की पूजा कर रही थीं।[8] वे

---

1 सर्वेदेवा: सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुशिवादय: ।
रक्षन्तु त्वां सदा यान्तं तिष्ठन्तं निद्रया युतम् ।। अ0 रा0 2/4/49

2 अ0 रा0 2/4/48 3 2/7/84 4 2/7/86

5 अ0 रा0 1/7/91

6 लक्ष्मीं पर्यचरदेवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये ।। अ0 रा0 2/2/42

7 इति व्याकुलचिता सा दुर्गा देवीमपूजयत् । 2/2/43

8 होमं च कारयामास ब्राह्मणेभ्यो ददौधनम् ।
ध्यायते विष्णुमेकाग्रमनसा मौनमास्थिता ।। अ0 रा0 2/3/79

अन्तर्यामी चिद्घनस्वरूप तेजोमय भगवान् विष्णु का ध्यान करने के कारण राम को नहीं देख पातीं।[1]

अध्यात्मरामायण में कौशल्या धर्मशीला, धार्मिक, यज्ञादि अनुष्ठानों को करने वाली, दानशीला एवं देवपूजा करने वाली तथा वात्सल्य-रसाप्लुत, ममतामयी माँ के रूप में चित्रित हैं।

अध्यात्मरामायण में राम की भक्त के रूप में भी उनका चित्रण हुआ है। राम उन्हें समय समय पर ज्ञान का उपदेश देते हैं। वे राम को साक्षात् नारायण के रूप में जानती हैं। राम के राज्याभिषिक्त होने के पश्चात् वे राम से अत्यन्त भक्ति-भाव एवं विनय पूर्वक कहती है हे विभो मुझे संक्षेप में ऐसा उपदेश दीजिये जिससे मुझे भव बन्धन काटने वाला ज्ञान हो जाय।[2] राम उस समय उनसे मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन - कर्म, ज्ञान, तथा भक्ति का वर्णन करते हैं।

कैकेयी -

कैकेयी का चरित्र अध्यात्म रामायण में वाल्मीकिरामायण से भिन्न रूप में है। उसका चरित्र चित्रण करते समय ग्रन्थकार ने दो दृष्टिकोण अपनाये हैं। यहाँ पर कैकेयी के दुर्गुणों से युक्त सदोष एवं साथ ही निर्दोष रूप भी अंकित हुआ है।

राज-कन्या, कैकेयी, दशरथ की सबसे छोटी रानी हैं। वह अप्रतिम सुन्दरी एवं वीराङ्गना है। अपनी बुद्धिमता, पातिव्रत, निर्भयता एवं वीरता का परिचय उसने देवासुर संग्राम के समय दिया था। वह उस समय दशरथ के साथ रण-प्राङ्गण में गई थी। वहाँ रथ की धुरी की कील टूटकर गिर जाने पर उसने उसमें अपना हाथ लगा दिया था और पति की प्राण- रक्षा

---

1 अन्तःस्थमेकं घनचित्प्रकाशं निरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् ।
विष्णुं सदानन्दमयं हृदब्जे सा भावयन्ती न ददर्श रामम् ।। अ० रा० 2/3/8

2 अ० रा० 7/7/57

के लिये बहुत देर तक इसी स्थिति में बैठी रही।[1] शत्रु दमन के पश्चात् ऐसी स्थिति में उसे देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर दशरथ ने दो वर देना चाहा।[2] किन्तु उस समय कोई प्रतिदान न लेकर धरोहर के रूप में रख दिया।[3] उसका हृदय पहले सपत्नी पुत्र राम के प्रति स्नेह एवं वात्सल्य से पूरित दिखाया गया है। राम के राज्याभिषेक को सुनकर प्रसन्न होकर मन्थरा को दिव्य-रत्न जटित नूपुर देती है।[4] राम के लिये उसकी प्रशंसा इन शब्दों में है - राम तो भरत की अपेक्षा मेरा अधिक प्रिय करने वाला और मधुरभाषी है, वह तो कौशल्या तथा मुझे समान भाव से देखता हुआ सदा ही मेरी सेवा करता है।[5] मन्थरा से वह कहती है - हर्षस्थाने किमितम:कथयसे असमागतेषु।[6]

इसके पश्चात् मन्थरा से प्रोत्साहित एवं प्रेरित होने पर कैकेयी की प्रकृति में नितान्त परिवर्तन हो जाता है। राम की प्रियकारिणी राम को वन भेजती है।

अध्यात्मरामायण में प्रत्येक घटना जगन्नियन्ता की प्रेरणावश घटित होती है। अत: कैकेयी के दुर्गुणों की प्रेरणा सरस्वती हैं, जिन्होंने देवताओं के कहने पर पहले मन्थरा और फिर कैकेयी के शरीर में प्रवेश किया।[7] इसी कारण ग्रन्थ में कैकेयी की निर्दोषिता भी कई स्थलों पर प्रमाणित की गई है।

---

1 अ0 रा0 1/2/66 से 69 तक

2 अ0 रा0 1/2/70,71

3 1/2/72 .

4 2/2/55

5 भरतादधिको राम: प्रियकृन्मे प्रियंवद: ।
कौसल्यां मां समं पश्यन् सशुश्रूषते हि माम् ।।
- अ0 रा0 2/2/56

6 2/2/55

7 2/2/46

कहीं पर कैकेयी के दोष का कारण दु:सङ्गवंश, बुद्धिभ्रष्ट हो जाना ही बताया गया है।[1] तथ्यमेवाखिलं मेने दु:सङ्गहितविभ्रमा ग्रन्थ में कहा गया है कि कोई पुरुष विवेक सम्पन्न भी क्यों न हो, पापबुद्धि दुष्ट का सङ्ग करने से उन्हीं के समान हो जायगा।[2] अत: कैकेयी का पतन आवश्यक था - दु:सङ्गीच्यवते स्वार्थाद्यथेयं राजकन्यका[3] स्वयं वसिष्ठ भी (भरत से) कैकेयी को निर्दोष ही प्रमाणित करते हैं।

> कैकेय्या वरदानादि यधन्निष्ठुरभाषणम्
> सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत्कथम् ।[4]

स्वयं राम भी कैकेयी की निर्दोषिता प्रमाणित करते हैं - राम स्पष्ट करते हैं - ममैवप्रेरिता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता।[5] तथा देवकामर्थि सिद्ध्यर्थमत्र दोष: कुतस्तव ।[6]

उक्त अलौकिक रहस्यों के आधार पर कैकेयी का चरित्र निर्दोष प्रमाणित हो जाता है। उसने देववश ही ऐसा किया था।

कैकेयी राम की भक्त भी है। अध्यात्मरामायण में उसकी ग्लानि भी व्यक्त की गई है। चित्रकूट में उसका ग्लानिमय रूप स्पष्टत: अङ्कित है। कैकेयी का क्षोभ इन शब्दों में व्यक्त हुआ है -

> प्राञ्जलि: प्राह मे राम तव राज्य विघातनम् ।[7]
> कृतं मया दुष्टधिया मायामोहितचेतसा ।[8]
> क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधव:।[9]

अव्यक्त परमात्मा, सनातन पुरुष के रूप में वह राम की स्तुति करती है।

---

1 अ0 रा0 1/2/46
2 अ0 रा0 2/2/82
3 अ0 रा0 2/2/83
4 अ0 रा0 2/9/45
5 अ0 रा0 2/9/63
6 अ0 रा0 2/9/64
7 अ0 रा0 2/9/55
8 अ0 रा0 2/9/56
9 अ0 रा0 2/9/57

यहां पर कैकेयी का शरणागत राम की भक्त के रूप में कैकेयी का दर्शन होता है।[1] इस स्थल पर कैकेयी में भक्ति प्रवणता के दर्शन होते हैं।

यदि रामवनवास रूप वरयाचना सम्बन्धी अलौकिक प्रेरणा न होती तो कैकेयी का चरित्र उदात्त-भावों का पुंज था।

इसी कारण पति-प्रिया एवं पतिपरायणा कैकेयी अपनी संकल्पपूर्ति के लिए पति से विद्रोह करती है।[2] कटु व्यंग्यबाणों की वर्षा करती है।[3] देवासुर संग्राम में जीवनदायिनी, राम को वनवास देकर पति की जीवन-घातिका हो उठती है। पुरजन, परिजन सभी की निन्दा की पात्र बनती है।[4] एवं तिरस्कृत जीवन व्यतीत करती है। सबसे अधिक तिरस्कार को प्राप्त होती है आत्मज भरत द्वारा। उस पुत्र द्वारा परित्याग एवं अवमानना प्राप्त होती है जिसके सुख के लिये सम्पूर्ण जीवन के लिये कलङ्किता हुई थी।

उदार हृदया, परोपकारिणी, राम भक्त, रानी, प्रतारणा से युक्त एवं ग्लानिमय जीवन व्यतीत करती है।

<u>सुमित्रा -</u>

सुमित्रा के विषय में अध्यात्मरामायण में कहीं कुछ नहीं कहा गया है। केवल दो स्थानों पर उसके दर्शन होते हैं। प्रथमवार राम-वन-गमन का समाचार देने जब राम आते हैं, उस समय और दूसरी बार जब दशरथ की मृत्यु होती है।

<u>सुग्रीव -</u>

वाल्मीकिरामायण में सुग्रीव का महत्व राजनैतिक है। राम-सुग्रीव मिलन का वातावरण भी राजनैतिक ही है। किन्तु अध्यात्मरामायण में

---

1 2/9/56 से 62 तक

2 अ० रा० 2/3/15 से 22 तक

3 अ० रा० 2/3/29 से 32 तक

4 मिथ्याप्रतिज्ञो नरकं प्रयाहि। अ० रा० 2/3/32

उसका रूप, राम के प्रिय सखा एवं भक्त का है। प्रारम्भ में उनकी मैत्री का वातावरण भी आध्यात्मिक है।

भाई से पराजित, किष्किन्धा से निष्कासित सुग्रीव ऋष्यमूक पर निवास करता है। परम बुद्धिमान हनुमान् उसके सहायक हैं। सीता हरण के पश्चात् रामलक्ष्मण जब ऋष्यमूक के निकट आते हैं उस समय भयभीत होकर वह हनुमान को उनके पास भेजता है। हनुमान् राम की वार्ता के पश्चात् उन्हीं की मध्यस्थता से वह राम के साथ अग्नि को साक्षी कर मैत्री करता है। मैत्री के बाद दोनों मित्र एक दूसरे को अपनी कहानी सुनाते हैं। उस समय सुग्रीव कहताहैं - वसाम्यद्य भवत्पादसंस्पर्शात्सुखितोऽस्म्यहम् ।[1]

उनकी मैत्री अति दृढ़ है। सच्चे मित्र के रूप में राम सुग्रीव के दु:ख से आतुर हो उठते हैं - मित्र दु:खेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचन: [2] और वे तुरन्त भीष्मप्रतिज्ञा करते है हनिष्यामि तव प्रेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम [3]।

तत्पश्चात् बाली के भीषण पराक्रम से त्रसित सुग्रीव राम के बल के प्रति आशंकित है। दुन्दुभि-अस्थि[4] एवं सप्त ताल[5] वेध के अलौकिक दृश्य को देखकर वह राम को सम्पूर्ण जगत का स्वामी परात्मा ब्रह्म समझता है - देवत्वं जगतां नाथ: परमात्मा न संशय:।[6] सांसारिक पदार्थों से उसकी विरक्ति हो जाती है। वह राम से कहता है - मोक्षदायक प्रभु को पाकर मैं सांसारिक पदार्थों की कामना कैसे करूं।[7] सुग्रीव यहां पर राम- भक्त

---

1 अ0 रा0 5/1/50

2 अ0 रा0 5/1/59

3 अ0 रा0 5/1/59

4 अ0 रा0 5/1/70

5 अ0 रा0 5/1/74, 75

6 अ0 रा0 5/1/76

7 अ0 रा0 5/1/77

के रूप में चित्रित हैं। उसके मन में निरन्तर यही कामना है कि उसका मन राम को छोड़कर अन्यत्र कहीं न जाय।[1] राम से वह भक्ति की याचना करता है।[2] राम की भक्ति तथा उनके कैङ्कर्य की ही उसे सतत् अभिलाषा है।[3] सुग्रीव की दास्य भक्ति यहां पर वर्णित है।

किन्तु फिर भी प्रभु की माया की प्रेरणा[4] से सुग्रीव कर्म-क्षेत्र में आता है।

बाली के वध के उपरान्त वह राम से कहता है - आप वानरों के समृद्धिसम्पन्न राज्य का शासन करिये। क्योंकि वह तो xxxx लक्ष्मण के समान, राम के चरण कमलों की सेवा में दास की भांति रहना चाहता है।[5]

सुग्रीव के चरित्र की मानवीय दुर्बलता का भी चित्रण हुआ है। किष्किन्धा में राज्य करते हुये विलासी, कामुक एवं पापी के रूप में भी उसकी एक झलक मिलती है।[6] कर्तव्य को भूला हुआ सुग्रीव, राम के क्रोध का भाजन होता है।[7] कर्तव्यनिष्ठ हनुमान् द्वारा वह कर्तव्यमार्ग के प्रति सचेष्ट कराया जाता है।[8]

इसके बाद सुग्रीव के जीवन में गम्भीरता का आभास मिलता है। उसकी राजाज्ञा, उसकी दृढ़ता का परिचय देती है। वह वानरों को आदेश

---

1 अ० रा० 5/1/83

2 त्वन्मायाकृतसंसारस्त्वदंशो हं रघूत्तम् ।
स्वपादभक्तिआदिश्यग्राहि मां भवसङ्कटात् ।। अ० रा० 5/1/86

3 त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नाम सङ्गीत कथासुवाणी।
त्वभक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गमतांमदङ्गम्।। अ० रा० 5/1/91

4 मायां मोहकरीं तस्मिन्वितन्वन् कार्यसिद्धये । अ० रा० 5/2/2

5 अ० रा० 5/2/44, 45

6 अ० रा० 5/4/47 तथा 5/5/50

7 अ० रा० 5/5/9, 10

8 अ० रा० 5/4/43 से 48 तक

देता है और कार्य न कर सकने पर दण्ड भी निर्धारित करता है।

वाल्मीकिरामायण की भाँति अध्यात्मरामायण में सुग्रीव के चरित्र में उदात्त-भावनाओं का परिचय नहीं मिलता।[1] विभीषण की शरणागति के समय वह विभीषण के चरित्र के प्रति शङ्काकालु है। वह विभीषण को अविश्वसनीय, सीता का हरण करने वाले, रावण के छोटे भाई के रूप में देखता है।[2] वह राम से कहता है - मुझे आज्ञा दीजिये, मैं इसे वानरों से मरवा डालूं।[3]

सुग्रीव की कार्य कुशलता, रावण द्वारा शुक नामक दैत्य को सुग्रीव के पास भेजने में स्पष्ट होती है। उसकी शक्ति का अनुमान लगाकर ही रावण शुक को उसके पास भेजता है और भेद नीति का अवलम्ब लेकर उसे राम-पक्ष से हटाने का प्रयास करता है।[4] इसके प्रत्युत्तर में सुग्रीव की स्थिरता एवं दर्पपूर्ण ललकार अंकित है -

> यथा वाली मम भ्राता तथा त्वं राक्षसाधमा
> हन्तकस्त्वं मया यत्नात्सपुत्रबलवाहनः ।

तथा

> ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हत्वा क्व यास्यसि[5]

तथापि सुग्रीव का चित्रण अध्यात्मरामायण में कुशल राजनीतिज्ञ एवं विवेकी सहायक के रूप में कम किन्तु शरणापन्न भक्त एवं सेवक धर्म का निर्वाह करने वाले सखा के रूप में विशेष हुआ है।

सुग्रीव की वीरता का वर्णन भी ना के बराबर है। ग्रन्थकार ने राम के अलौकिक प्रताप को ही मूलप्रेरक तत्त्व माना है। अन्य पात्र तो निमित्त मात्र हैं।

---

1 अ० रा० 5/5/9,10 वा० रा० 6/18/37,38
2 अ० रा० 5/4/43 से 48 अ० रा० 6/3/67
3 वा० रा० 6/18/37-38 अ० रा० 6/38
4 अ० रा० 6/3/49 से 51 तक
5 अ० रा० 6/3/57,58

अङ्गद -

अन्य पात्रों की भाँति अङ्गद का राम-भक्त के रूप का चित्रण ही प्रधान रूप से चित्रित हुआ है। अङ्गद का पिता वाली मृत्यु से पूर्व ही उसे राम को सौंप देता है, उनकी करुणादृष्टि की में।[1] राम के सेवक एवं भक्त रूप में वह रहता है।

अङ्गद को बुद्धि कौशल एवं शौर्य का भी चित्रण हुआ है। वह वाली के समान ही वीर है। इसकी पुष्टि स्वयं वाली करता है।[1] वह एक कुशल सेनानायक है।[2] समुद्रोल्लंघन के समय समुद्र की भीषणता को देखकर सब भयभीत हैं। उस समय अङ्गद उनका नेतृत्व सा करते हुए उनसे पूछते हैं कि कौन ऐसा है जो समुद्र को लांघ कर समस्त वानरों को प्राणदान करेगा। निःसन्देह वह व्यक्ति समस्त वानरों, सुग्रीव एवं राम की रक्षा करेगा।[3] यहां अङ्गद की वाक्चातुरी का प्रमाण मिलता है। वानरों के किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाने पर अङ्गद की बुद्धि कौशल के दर्शन होते हैं। वे कहते हैं कि सब लोग अपनी शक्ति का वर्णन करो इससे पता लग जायेगा कि इस कार्य को कौन कर सकेगा।[4]

विषम परिस्थिति में उनकी विवेकशीला वाक्चातुरी का परिचय भी मिलता है। जब सम्पाती वानरों का आहार करने का संकल्प करता है तब जटायु का वृतान्त सुनाकर वे उसकी सहानुभूति प्राप्त करते हैं।[5]

---

1 .... अङ्गदे त्वं दयां कुरु । अ0 रा0 5/3/69

.... मम तुल्यबले बाले ...।। अ0 रा0 5/3/69

2 तमाह जाम्बवानन्वरिस्त्वं राजा नो नियामकः । 5/9/13

3 अ0 रा0 5/9/34

4 उच्यता वैबलं सर्वैः प्रत्येकं व्यर्थसिद्धये
केन वा साध्यते कार्यं जानीमस्तदनन्तरम् । अ0 रा0 5/9/8

5 अ0 रा0 5/7/37 से 47 तक

युद्ध कौशल का विस्तृत विवेचन तो हुआ नहीं है। अ०रा० में अंगद अत्यन्त निपुण सेवानायक, स्वामिभक्त, कर्तव्यनिष्ठ, वीर एवं राम-भक्त के रूप में चित्रित हैं।

रावण -

वाल्मीकिरामायण में रावण का चित्रण परम ऐश्वर्ययुक्त शोभा सम्पन्न एवं शौर्य पराक्रम समन्वित किया गया है। किन्तु अध्यात्मरामायण में कुशल राजनीतिज्ञ, महान पराक्रमी रावण को प्रच्छन्न रामभक्त रूप में भी चित्रित किया गया है।

अपनी बहन सूर्पणखा से राम के ऐश्वर्य एवं सीता के सौन्दर्य का वर्णन सुनने के बाद वह संकल्प करता है -

इत्यं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो
रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम्।
विरोधबुद्धयैव हरिं प्रयामि
द्रुतं न भक्त्या भगवान् प्रसीदेत् ।।[1]

रावण के इस राम-भक्त रूप का दर्शन एक स्थल पर और होता है। युद्ध के लिए प्रयाण करते समय अपनी पट्टमहिषी को शोकाकुल देखकर वह उससे कहता है कि समस्त कुल के विनाश के पश्चात् वह राम की शरण में जाकर भला वन-वासी जीवन कैसे व्यतीत कर सकता है।[2] राम के वाणों से विद्ध होकर तो वह विष्णु के परमधाम का अधिकारी होगा। रावण स्पष्ट शब्दों में कहता है -

---

1 अ० रा० 3/5/61

2 जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम्।
ज्ञात्वैव जानकी सीता मयानीता वनाद्बलात् ।।
- अ० रा० 6/10/57

मैं राम को साक्षात् विष्णु और जानकी को भगवती लक्ष्मी जानता हूं, और यह जानकर ही कि राम के हाथ से मरने पर उनका परमपद प्राप्त करूंगा, मैं सीता को तपोवन से लाया हूं। कामासक्ति से नहीं अपितु आत्म-कल्याण के लिये रावण ने सीता का हरण किया क्योंकि राम की शरण में जाना या उनकी भक्ति करना उसके स्वाभिमानी व्यक्तित्व एवम् तामस प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध था। यही कारण था कि उसने पंचवटी में अपहृता सीता को मातृ बुद्धि से रखा।[1]

मंदोदरी से वह कहता है कि अपने समस्त पाप पुंज का प्रक्षालन कर वह दुलर्भ मोक्ष पद का अधिकारी होगा।[2] इस कामनामय एवं असंख्य क्लेशों से युक्त संसार को पार कर मैं श्रीहरि के निकट जाऊंगा। इस प्रकार की कामना लेकर युद्धरत होने वाले रावण में निश्चत ही भक्त रूप ही परि-लक्षित होता है।[3]

राम के हाथों मरकर वह उस गति का अधिकारी होने की कामना करता है, जिस विशुद्ध एवं परमानन्दमयी गति का सेवन मुमुक्षगण करते हैं।

उसका क्रोध उनकी इस कामनापूर्ति के लिये गुरु के उपदेश से भी उपयोगी सिद्ध हुआ और वह महाक्रूर, ब्रह्मघाती, परस्त्रीपरायण एवं भगवद्-विरोधी रावण, राम के वण से मरकर, बन्धनहीन होकर सायुज्यमोक्ष का अधिकारी हुआ।[4] वह राम से द्वेष करने के कारण सर्वत्र राम की ही भावना

---

1 राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्धयात्वपालयत्। अ० रा० 3/7/65

2 प्रक्षाल्य कल्मषाणहि मुक्तिं यास्यामि दुर्लभाम्।। अ० रा० 6/10/60

3 क्लेशादिप चक्तरङ्गयुतं भ्रमाढ्यं दाशत्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम्।
औवार्निलाभनिजरोषमनङ्गजालं संसारसागरमतीत्यहरिं ब्रजामि।।
— अ० रा० 6/10/6

रामेण निहतश्चान्तो निर्धूताशेषकल्मषः।
रामसायुज्यमेवाप रावणो मुक्तबन्धनः।। अ० रा० 6/11/86

करता था।[1] अत: उसके समस्त पाप धुल गये क्योंकि नित्यप्रति प्रेम से या भय से जो भगवान् राम का चिन्तन करता हुआ प्राण त्याग करता है वह नाना जन्मों के उपार्जित दु:खों से छूट जाता है।[2]

रावण के इस रूप के अतिरिक्त उसके चरित्र की अनेक विशिष्टताओं एवं दुर्गुणों का उल्लेख भी हुआ है।

अपने जीवन की प्रारम्भिक वेला में उसके दर्शन तपस्वी के रूप में होते हैं।[3] तपोबल से ही वरदान प्राप्त कर वह अजेय एवम् अमरवत प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर दिग्विजयी हुआ। उसकी दिग्विजय का वर्णन ग्रन्थ में हुआ है।

दिग्विजयी एवम् अजेय होकर उसमें गर्व का संचार होता है और तपस्वी रावण अत्याचारी रावण में परिवर्तित हो जाता है। और वह तीनों लोकों को कष्ट देता हुआ राज्य करता है।[4]

आकुल-धरा का सन्तप्त होकर भगवान् विष्णु की शरण में जाना, रावण के अनाचार का स्पष्ट चित्रण है। समस्त आरण्यक मुनिजन रावण से सताये हुये हैं, जो उसके त्रास के कारण अपने धार्मिक अनुष्ठानों को भी नहीं कर पाते।

रावण के आतङ्क एवं प्रभुत्व का चित्रण भी हुआ है। उसके आतङ्क मय रूप का चित्रण सीता-हरण के अवसर पर हुआ है। उसका भयङ्कर रूप महापर्वत के समान था। जिसके दशमुख और बीस भुजायें थीं तथा जिसकी काले मेघ के समान आभा थी। उसे देखकर वनदेवियाँ और वन्यजीव भयभीत हो गये।[5]

---

1 अ0 रा0 , युद्ध का0 सं0 11 श्लोक 83, 84, 85

2 अ0 रा0, यु0 का0 सं0 11, श्लोक 87

3 उ0 का0 सं0 1, श्लोक 37, 38

4 राज्यं चकारासुराणां त्रिलोकीं बाधयन्खल: । अ0 रा0 7/2/38

5 अ0 रा0 3/7/50, 51

युद्धस्थल पर भी रावण के भयङ्कर रूप के दर्शन होते हैं। यह तो उसका आतङ्ककारी वाह्य रूप था। उसके इस व्यक्तित्व का आतङ्क विश्वव्यापी था। जब सुरासुर सभी उसके भय से आक्रान्त थे, मानवों की तो गणना ही क्या थी

परम तेजस्वी, दिग्विजयी, सर्वभौम सम्राट की भाँति अपने सम्पन्न राज्य में वह शासन करता था। उसकी नगरी समृद्धि एवं शोभा में स्वर्गलोक के समकक्ष थी।

उसके राजा रूप तथा राजनीतिज्ञ रूप का चित्रण ग्रन्थ में हुआ है। उसके सभी रूपों में उसका राजनीतिज्ञ रूप विशिष्ट है।

वह कुशल राजनीतिज्ञ एवं वाक्यकोविद राजा की भाँति मंत्रि-मंडल से सदैव परामर्श करता है। इसका उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। वह अपने मंत्रियों से समय समय पर मंत्रणा करता था और उन पर विचार करता था। हनुमान् द्वारा लङ्का जलाने के पश्चात् वह अपने नीतिज्ञ मन्त्रियों से अपने हित की बात पूछता है।[1] मारीच द्वारा प्रदत्त मंत्रणा को सुनकर वह युक्ति-युक्त विचार करता है और प्रभु के हाथों सदगति पाने के लिये फिर मारीच को धमकाता है।[2] किन्तु रावण के हठधर्मी स्वभाव के उसके राजनीतिक कौशल को कलंकित कर दिया। इसी से हितकारी मंत्रणाओं का तिरस्कार कर वह विनाश को प्राप्त होता है। वह भाई विभीषण का तिरस्कार करता है[3], शुकनाम राक्षस का तिरस्कार करता है[4] तथा अपने मातामह का तिरस्कार करता है।[5] इसी प्रकार उसने अनेक हित मन्त्रणाओं को देने वालों का तिरस्कारकिया।

---

1 किं कर्तव्यमितो स्माभिर्ब्रूयं मन्त्रविशारदा: ।
मन्त्रमध्वं प्रयत्नेन यत्कतं मे हितं भवेत् ।। अ0 रा0 6/2/5

2 अ0 रा0 अर0 का0 सं0 6 श्लोक 34/35

3 अ0 रा0 6/2/28 से 31

4 अ0 रा0 6/5/1 से 4

5 अ0 रा0 6/5/39, 40

युद्ध कौशल में निपुण तथा परमवीर के रूप में भी रावण की विशेषता का चित्रण हुआ है। उसका युद्ध नैपुण्य उसके दिग्विजय अभियान में व्यक्त होता है तथा राम-रावण युद्ध के अवसर पर उसके युद्धकौशल का दर्शन होता है।

युद्धवीर के रूप में उसकी उदारता श्लाघनीय है। वह अपने शत्रु हनुमान् के शौर्य की प्रशंसा कर अपनी गुण ग्राहकता का परिचय देता है।

उसके सभी गुणों तथा अवगुणों में अहंभाव अथवा आत्मश्लाघा का सबसे अधिक वर्णन हुआ है। उसे स्वपराक्रम पर गर्व है।

उसकी मानवोचितदुर्बलताओं का भी चित्रण हुआ है। वह पुत्र शोक से अत्यन्त व्यथित होता है। राम के सैन्यबल तथा संतरण आदि से वह चिन्ताकुल भी होता है। यद्यपि वह दुःखित एवं चिन्ताकुल होता है, किन्तु उसमें असीम धैर्य एवं साहस है।

युद्ध क्षेत्र में जाते समय मन्दोदरी के द्वारा उपदेश देने पर वह मन्दोदरी से कहता है कि पुत्र, भ्राता और राक्षसादि का विनाश होने के बाद भला वह वनवासी होकर कैसे जीवित रह सकेगा।[2] वीर एवं साहसी रावण की उक्ति का चित्रण इस प्रकार हुआ है - रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः सुशीघ्रगैः।[3] और इसके द्वारा राम से वैर करने का उसका परम लक्ष्य[4] - विष्णुधाम की प्राप्ति उसको शीघ्र ही हो जायेगी -

' विदार्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम्।

<u>दशरथ</u> -

अथराजा दशरथः श्रीमान्सत्यपरायणः।
अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषुविश्रुतः ।।[5]

---

1 अ० रा०

2 अ० रा० 6/10/55, 56

3 अ० रा० 6/10/56

4 अ० रा० 6/10/57

उपर्युक्त श्लोक में राजा दशरथ का परिचयात्मक विवरण मिलता है। इसमें दशरथ के चरित्र का सारतत्व निहित है।

दशरथ के चरित्र की तीन प्रमुख विशिष्टताओं का वर्णन अध्यात्मरामायण में हुआ है -

1. सत्य प्रेम
2. पुत्र प्रेम
3. कामुक-प्रवृत्ति

अध्यात्मरामायण में दशरथ, कश्यप के अवतार है, जिन्होंने परात्पर ब्रह्म को ही अपने पुत्र रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा की थी।[1] दशरथ के रूप में वे पुत्र न होने के दुःख से दुःखी हैं और गुरू-वसिष्ठ के परामर्श से पुत्रकामेष्टियज्ञ के फलस्वरूप वे विष्णु को उनके चार अंशों सहित, पुत्र रूप में प्राप्त करते हैं।

अध्यात्मरामायण में वर्णित दशरथ का रूप-राजनीतिज्ञ एवं सत्य-परायण राजा का, पुत्र प्रेमी पिता का और कामुक प्रवृत्ति वाले दुर्बल व्यक्तित्व का है।

राजा के रूप में दशरथ वीर, लोक में विख्यात एवं कुशल राजनीतिज्ञ हैं। वे अपने मन्त्रियों से सर्वदा परामर्श लेते हैं। वे परम तेजस्वी सम्राट हैं।

अध्यात्मरामायण में महाराजदशरथ गुरू एवं ब्राह्मणों को सर्वोपरि मानते हैं। राम-जन्म के अवसर पर वे ब्राह्मणों को अतुल्यदान देते हैं।[2] दशरथ वसिष्ठ के प्रति अधिक श्रद्धालु हैं। प्रत्येक कार्य गुरू की आज्ञा एवं प्रेरणा से सम्पादित होता है। पुत्रहीनता के दुःख को गुरू से निवेदन करते हैं।[4] और पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछते हैं। विश्वामित्र के द्वारा पुत्र-याचना के समय धर्म-संकट होने पर वे गुरू से एकान्त में परामर्श करते हैं।[5] राम के राज्याभिषेक

---

1 अ० रा० 1/2/25 , 26

2 अ० रा० 1/2/39

4 अ० रा० 1/3/2, 3

5 अ० रा० 1/4/8से 11 तक

के लिये वे गुरु से परामर्श करते हैं।[1] विश्वामित्र की अभ्यर्थना एवं पूजन में उनके आतिथ्य धर्म का परिचय मिलता है।[2] दशरथ अत्यन्त दानशील भी हैं।[3]

सभी पुत्रों में राम उनको सर्वाधिक प्रिय हैं। राम के राज्याभिषेक के समय वे इसी के कारण शीघ्रता करते हैं और इस समय भरत की अनुपस्थिति का भी विचार नहीं करते हैं। वाल्मीकिरामायण में इस अवसर पर दशरथ का जो रूप वाल्मीकि ने आङ्कित किया है, उससे स्पष्ट होता है कि भरत की अनुपस्थिति को वे अपनी कार्य-सिद्धि में सहायक समझते हैं। इसमें वर्णन है कि वे अपने पुत्र भरत पर भी संदेह करते हैं।[4] इस प्रकार कवि ने उनके दुर्बल संशयशील मानव हृदय की झाँकी प्रस्तुत की है। अध्यात्मरामायण के वर्णन में उनकी यह संशय भावना स्पष्ट नहीं होने पाती। ग्रन्थकार केवल इतना ही वर्णन करता है कि यद्यपि भरत मामा के यहाँ गये हैं तथापि दशरथ कल ही राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। भरत के प्रति आशङ्का व्यक्ति का वर्णन नहीं हुआ है। राम के प्रति उनके उत्कट-प्रेम का दर्शन विश्वामित्र याचना प्रसङ्ग में भी होता है।[6] धनुर्भङ्ग के पश्चात् मार्ग में परशुराम के आगमन पर भयभीत राजा परशुराम को दण्डवत् प्रणाम कर यही कहते हैं - पुत्रप्राणं प्रयच्छ मे। इसी प्रकार कैकेयी को आश्वस्त करते हुये बहुत सी बातें कहते हैं और पक्का विश्वास दिलाने के लिये राम की शपथ करते हैं।[7]

---

1 अ० रा० 3/2/2, 3

2 अ० रा० 1/4/2, 3, 4

3 अ० रा० 1/2/39 - राम-जन्म के अवसर पर

4 बा० रा० 2/4/22, 27

5 भरतो मातुलं द्रष्टुं गतः शत्रुघ्नसंयुतः ।
अभिषेक्ष्ये श्वस्त्वांश्च भवांस्तच्चानुमोदताम्।। अ० रा० 2/2/4

6 चत्वारो भरतुल्यास्ते तेषां रामो तिवल्लभः ।। अ० रा० 1/4/10

7 अ० रा० 2/3/14

दशरथ का सत्यपरायण रूप भी चित्रित हुआ है।[1] विश्वामित्र द्वारा राम की याचना करने पर, विश्वामित्र को उत्तर देते समय उन्हें जितना भय मुनि के शाप से है उतना ही भय असत्य भाषण से भी है।[2]

इन विशेषताओं के अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व की दुर्बलता का भी चित्रण हुआ है। इनमें मुख्य दुर्बलता है उनकी कामुक प्रवृत्ति। इस दुर्बलता से अभिशप्त दशरथ की आलोचना ग्रन्थ में कई पात्रों के द्वारा हुई है। अभिषेक का समाचार प्राप्त होने पर कौशल्या यही सोचकर शङ्काकुला हो उठती हैं। उनकी सत्यपरायणता पर तो उनको विश्वास है[3] किन्तु वे कैकेयी के वशवर्ती हैं अतः प्रतिज्ञा पूर्ण कर सकें या नहीं।[4] राम-वन-गमन का समाचार सुनकर क्रोधावेग में लक्ष्मण के मुख से भी दशरथ के लिये - उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयी वशवर्तिनम्[5] इस प्रकार के शब्द निकलते हैं, जिनसे दशरथ की कामुक-प्रवृत्ति ही व्यंजित होती है। स्वयं दशरथ के मुख से इस प्रकार का वर्णन ग्रन्थकार ने कराया है - स्त्रीजितं भ्रान्त हृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम्।[6]

इस अवगुण के अतिरिक्त, दशरथ, शील, नियम, सत्य एवं धैर्य की प्रतिमूर्ति हैं। उनका राम-प्रेम अत्युत्कट है। यही उनकी दुर्बलता भी है। राम का वनगमन रूप भीषण कृत्य का कारण उनका पुत्र प्रेम एवं सत्य प्रेम ही है।

दशरथ के जीवन का संक्षिप्त सार यही है कि स्त्री प्रेम एवं पुत्रप्रेम

---

1 अ० रा० 1/3/1

2 प्रत्याख्यातो यदि मुनिः शापं दास्यत्यसंशयः
कथं श्रेयो भवेन्मह्यमसत्यं चापि न स्पृशेत्।। अ० रा० 1/4/1।

3 सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम् । अ० रा० 2/2/42

4 कैकेयी वशगः किन्तु कामुकः किं करिष्यति।। - अ० रा० 2/2/43

5 अ० रा० 2/4/15

6 अ० रा० 2/3/69

तथा सत्यनिष्ठा की धारा में वे बहते रहे। स्त्री-प्रेम एवं पुत्र मोह ही उनका प्राणविनाशक भी हुआ और जीवन के इस भीषण संघर्ष में वे पुत्र-वियोग में असमय धराशायी हो जाते हैं।

हनुमान् -

अध्यात्मरामायण में हनुमान् का चित्रण एक कुशल, निपुण वीर-सेनानी एवं निपुणदूत के रूप में किया गया है। साथ ही वे भक्तगण्य, राम के अनन्य सेवक के रूप में अपना मन-वचन-कर्म अर्पण करने वाले अतुलित बल सम्पन्न कार्यकर्ता के रूप में भी चित्रित हैं। बल के अनुरूप बुद्धि बिरले व्यक्तियों में ही होती है। किन्तु सुसंस्कृत पवन-तनय विविध भाषाओं के ज्ञाता हैं। सुग्रीव मैत्री के अवसर पर अनुमान् की प्रशंसा करते हुए राम लक्ष्मण से कहते हैं कि हनुमान् की भाषा में कोई भी त्रुटि नहीं है, उन्होंने शब्द-शास्त्र भली भांति पढ़ा है।[1] वे तत्वज्ञ, व्यवहाररज्ञ एवं नीतिज्ञ भी हैं। सीता एवं रावण के साथ उपयुक्त व्यवहार उनकी व्यवहार कुशलता के प्रमाण हैं। रावण के दरबार में पहुंचकर वे रावण को तत्व-ज्ञान का उपदेश देते हैं। हनुमान् का उपदेश ज्ञान वैराग्य और भक्ति से सम्पन्न है। राम के ब्रह्मरूप का निरूपण कर वे रावण को अध्यात्म-ज्ञान की शिक्षा और रामभक्ति का उपदेश देते हैं।[2] वे नीतिज्ञ भी हैं।

काचन कामिनी में लिप्त सुग्रीव को वे उसके कर्तव्य का स्मरण कराते हैं।[3]

---

1 शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा। अ0 रा0 5/1/17
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किं चदपशब्दितम्। अ0 रा0 5/1/18

2 अ0 रा0 5/4/16 से 25 तक

3 अ0 रा0 4/4/44 से 48 तक

हनुमान् कुशल एवं श्रेष्ठदूत तथा स्वामिभक्त सेवक हैं। उनका कुशल दूत का रूप राम-सुग्रीव मैत्री के अवसर पर[1] लड्0का में सम्पादित कार्यों एवं रावण के साथ संभाषणादि से प्रकट होता है। इस समय तत्वज्ञानी के रूप में उनके दर्शन होते हैं। वे रावण जीव, आत्मा माया, ब्रह्म, सृष्टि आदि - आदि तत्वों का निरूपण करते हैं।[2]

विभीषण से प्रथ परिचय-प्राप्ति, कालनेमि को समयोचित दीक्षा दान[3] तथा राम-गुण गान द्वारा सीता का ध्यान आकर्षित करना[4] आदि प्रसड्0गों में उनकी बुद्धिमता स्तुत्य है। उनके नैतिक रूप का भी चित्रण हुआ है।

हनुमान् राम के अनन्य भक्त और सेवक हैं।[5] वे सीता से अपना परिचय राम दास रूप में देते हैं।[6] वे राम से ही राम-चर्चा में अटल भक्ति एवं प्रीति की वर याचना करते हैं। राम उनका अभिलषित पूर्ण करते हैं।

विशाल व्यक्तित्व से युक्त होने पर भी विनम्रता, निरभिमानता दीनता, कृतज्ञता सत्वगुणों से युक्त हुनमान् का चरित्र अति महान् है।

समस्त वानर सेना के एकमात्र आधार, सेना के प्रमुख नेता तथा वानर सैन्य को प्रोत्साहन देने वाले हनुमान् का चरित्र अप्रतिम है।

निष्काम उतम भक्त एवं दास्य धर्म के श्रेष्ठ अनुयायी एवं उज्ज्वल आदर्श हैं। उनके प्रति जगत्पति राम एवं जानकी भी अपनी कृतज्ञतांजलि के भाव पुष्प अर्पित करते हैं।[7] निस्वार्थ सेवा-भाव और रामभक्ति, बुद्धिमता, शौर्य स्वामिभक्ति इन गुणों से हनुमान् का चरित्र विभूषित है।

---

1 अ0 रा0 4/1/11 से 16 तथा 21 से 25

2 अ0 रा0 5/4/16 से 25 तक

3 अ0रा0 65/7/30, 31

4 अ0 रा0 5/7/2 से 15 तक

5 नाहं तथाविधो मातस्त्यज शड0कामयिस्थिताम्।
दासो हं कौसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मन: । 5/3/23

6 वही, 5/3/23 7 अ0 रा0 5/5/60 से 63 तक

अन्य पात्र

वसिष्ठ -

इक्ष्वाकुवंश के कुल कुरू आचार्य वसिष्ठ का चित्रण अध्यात्मरामायण में नीति विशारद एवं पुरोधा के रूप में है। उनकी राजनीति निपुणता अनेक स्थलों पर परिलक्षित होती है। पुरोहित और गुरू के रूप में सम्पूर्ण मांगलिक आयोजनों के संचालन का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है।

इसके अतिरिक्त वे ब्रह्मज्ञानी एवं तपस्वियों में श्रेष्ठ हैं। वे राम के ब्रह्म स्वरूप से परिचित हैं और समय समय पर इस बात को अन्य लोगों को भी बताते रहते हैं। अध्यात्मरामायण में उनमें राम के प्रति प्रेम परायणता का चित्रण भी किया है। वे राम को परमात्मास्वरूप जानते हैं। अतएव गुरु की मर्यादा का निर्वाह करते हुए प्रच्छन्न राम भक्ति का भी प्रदर्शन यथासमय करते हैं।

> इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते।
> इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा।।
> ततो हंमारायाा राम तव सम्बन्ध काङ्क्षया
> अकार्षम् गर्हितामपि तवाचार्यत्वसिद्धये ।।[1]

इस निन्दनीय पुरोहिताई को केवल राम से सम्बन्ध जोड़ने के लिये स्वीकार करते हैं। तत्वज्ञानी वसिष्ठ गुरू दक्षिणा रूप में राम से वर मांगते हैं कि सर्वलोक विमोहिनी माया उन्हें मोहित न करे।[2]

---

1 अ० रा० 2/2/29, 30

2 ततो मनोरथो म द फलितो रघुनन्दन।
त्वधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी।। 31 ।।
मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरू रघूद्वह
गुरू निष्कृति कामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे ।। 32 सर्ग 2 अयो० का०

निषाद -

निषाद के चरित्र में वाल्मीकिरामायण से अध्यात्मरामायण में बहुत अन्तर है। रामायण में उसका कर्तव्य प्रधान रूप है। अध्यात्मरामायण में वह प्रिय-सखा एवं राम का भक्त है। उसमें तीव्र राम-भक्ति का दर्शन होता है। उसका भक्त एवं स्वामिभक्त का मधुरतम रूप अध्यात्म-रामायण में चित्रित है।

कुम्भकर्ण -

अध्यात्मरामायण में कुंभकर्ण के पर्वताकाररूप शौर्यादि के स्थान पर उसका प्रच्छन्न राम-भक्त रूप विशेष रूप से चित्रित है। उसके जीवन में हम उच्च कोटि की राम-भक्ति पाते हैं। उसके राक्षसत्व का अधिक वर्णन न कर ग्रन्थकार ने उसमें दूरदर्शिता, कर्तव्य बुद्धि, आश्चर्यमय-युद्धकौशल और निरपेक्ष राम-प्रेम है। अतः वह एक अद्भुत चरित्र है।

रावण जब कुंभकर्ण के पास सहायतार्थ जाता है तो कुंभकर्ण भाई को राम के विष्णु-अवतार के विषय में बताता है। वह रावण से कहता है कि राम कोब्रह्म रूप जानकर उनका भजन करो।[1] कुम्भकर्ण रावण को उपदेश देते हुए भक्ति की अत्यन्त श्रेष्ठता का निर्वचन करता हुआ कहता है कि भक्ति ज्ञान की जननी है और मोक्ष देने वाली है। वह कहता है कि विष्णु के अनेकों अवतारों में शिवस्वरूप ज्ञानमय, रामावतार एक सहस्त्र अवतारों के समान है।[2] मन, वचन से राम की भक्ति करने वाले परमधाम को जाते हैं।[3] युद्धस्थल में वह अपने भाई विभीषण से जब मिलता है तो उसे हृदय से लगाकर अपने अत्युत्कट भ्रातृप्रेम का परिचय देता है। वह विभीषण की प्रशंसा करके कहता है -

---

1 त्यज वैरं भजस्वाद्य मायामानुषविग्रहम्।
भजतो भक्तिभावेन प्रसीदति रघूत्तमः।। 6/8/66

2 अवतारा: सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः।
तेषां सहस्त्रसदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः।। 6/8/68

3 रामं भजन्ति निपुणा मनसा वचसानिशम्
अनायासेन संसारं तीर्त्वा यान्ति हरेः पदम् ।

समालिङ्गय च वत्स त्वं जीव राम पदाश्रयात्।। ।3 ।।
कुलसंरक्षणार्थाय राक्षसानां हिताय च ।
महाभागवतो ति त्वं पुरा मे नारदाच्छ्रुतम्।। ।4 ।।

मेघनाथ -

अध्यात्मरामायण में मेघनाद का दिग्विजयी इन्द्रजीत रूप वर्णित है। ग्रन्थ में उसका शौर्य अतुल पराक्रम उल्लिखित है। इसमें रामभक्ति नहीं है। वह यज्ञ करने वाला एवं मायामय युद्ध करने वाला है। उसका युद्धकौशल चरम सीमा पर चित्रित है। उसे अनेक शक्तियाँ वररूप में प्राप्त हैं। वह श्रू वीर, जयी, पराक्रमी योद्धा के रूप में चित्रित है।

विश्वामित्र -

विश्वामित्र के दर्शन धनुर्वेदाचार्य एवं तपोनिष्ठ आचार्य के रूप में होते हैं। वाल्मीकि रामायण की भाँति अध्यात्मरामायण में, उनकी तपस्यादि का पूर्व वृतान्त का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं हुआ है प्रत्युत केवल उतना ही प्रसंग उल्लिखित है जितना कि राम से सम्बन्धित है। अध्यात्म रामायण के प्रत्येक व्यक्तित्व में रामभक्ति का बीज अंकुरित है। अत: तपोनिष्ठ ब्रह्मर्षि भला उस भक्ति से शून्य कैसे हो सकते हैं। उनके राम प्रेम एवं राम भक्ति का प्रमाण है कि वे केवल राम लक्ष्मण को माँगने नहीं आये हैं अपितु वे राम-दर्शन की लालसावश अयोध्या आते हैं।[1]

विश्वामित्र राम के सर्वथा हितचिन्तक हैं। धनुर्वेद, अस्त्र-शस्त्र, विद्या के दाता के रूप में वे राम के आचार्य हैं, अनेक कथाओं के उपदेशक हैं तथा विवाहादि कार्यों के प्रमुख संपादनकर्ता।

---

1 कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्यां ज्वलनप्रभः।
दृष्टुं रामं परात्मानं जातं ज्ञात्वा स्वमायया।। ।/4/।

परशुराम -

मिथिला से लौटते समय मार्ग में परशुराम के दर्शन होते हैं। ग्रन्थ में उनका[1] परमतेजस्वी, उन्नतकाय, साक्षात् काल के समान, कार्तवीर्य का वध करने वाला एवं गर्वीले क्षत्रियों का मान करने वाला रूप चित्रित है। भयभीत दशरथ उनको देखकर, अर्घ्यादि भूलकर त्राहि त्राहि करने लगे।[2] पहले वह राम के प्रति रोष प्रकट करते हैं और उन्हें वैष्णव धनुष पर रौंदा चढ़ाने के लिए ललकारते हैं।[3] किन्तु राम के पराक्रम एवं तेज से अभिभूत होकर अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं। वे राम के ब्रह्मत्त्व को तथा उनके अवतार स्वरूप को जान कर उनकी स्तुति करते हैं।[4] इसी समय वे अपने पूर्व वृत्तान्त का भी वर्णन करते हैं जिसमें उनकी तपस्यादि का वर्णन तथा विष्णु के वर का वर्णन है।[5]

अन्य पात्रों की भाँति इनमें भी अन्त में राम भक्ति दर्शायी गयी है। राम की ज्ञान एवं भक्ति युक्त स्तुति कर वे राम से सुदृढ़ भक्ति की याचना करते हैं।[6] अपने पुण्यलोकों को राम के वाण का लक्ष्य बताकर वे राम की आज्ञा से महेन्द्र पर्वत पर चले जाते हैं।[7]

गौण नारी पात्र

शबरी -

शबरी का चित्रांकन अत्यन्त तपोनिष्ठा एवम् अनन्य रामभक्त के रूप में किया गया है। वह भक्ति मार्ग में विशारद कही गयी है।[8] राम

---

1 अ0 रा0 1/7/5 से 8 तक
2 अर्घ्यादिपूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहिति चाब्रवीत्।। 1/7/9
3 अ0 रा0 1/7/10 से 14 तक
4 अ0 रा0 1/7/20 से 49 तक
5 अ0 रा0 1/7/10 से 28 तक
6 अ0 रा0 1/7/48, 49
7 अ0 रा0 1/7/50
8 भक्त्या त्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा: । प्रथमचरण 3/10/2

जब उसके आश्रम में पहुंचते हैं उस समय उसका भक्ति विह्वलता का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है।[1] उसने प्रेम और भक्ति पूर्वक राम और लक्ष्मण का पूजन किया, इकत्रित किये हुये अमृत के समान दिव्य फल दिये।[2]

शबरी जब अपना सम्पूर्ण वृतान्त सुनाती है तो उसमें उसकी गुरू-भक्ति का भी वर्णन हुआ है।[3]

राम की अनन्य अनुरागिनी शबरी अपना दैन्य प्रदर्शन करती हुई प्रभु के दर्शन पाकर आत्म विभोर हो जाती है।

हीनजातिसमुद्भवा उस नारी को भक्ति परमाधिकारिणी समझ कर राम उसे नवधा-भक्ति का उपदेश भी देते हैं।[4] उसकी भक्ति को देखकर ही वे उससे मिलने आते हैं।[5]

मन्थरा -

मन्थरा कैकेयी की चिरकाल से पालिता दासी है जो राम का राज्याभिषेक सुनकर कैकेयी के पास आकर उसे प्रबुद्ध करती है -

किं शेषे दुर्भगे मूढे महद्भयमुपस्थितम् ।[6]

किन्तु इस प्रकार का कार्य करने के लिए ग्रन्थकार ने मन्थरा में आधिदैविक तत्व का योग कर मन्थरा को भी निर्दोष सा सिद्ध कर दिया है। उसके शरीर में सरस्वती ने प्रवेश किया था इसी कारण उसने ऐसा निन्दनीय कार्य किया।[7]

---

1 शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम्।
आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायचिरेण सा। 3/10/5
पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना।
स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने संन्यवेशयत् ।। 3/10/6

2 अ0 रा0 3/10/8, 9

3 अ0 रा0 3/10, 11 से 16 तक

4 अ0 रा0 3/10/20 से 31 तक

5 यस्मान्मद्भक्तियुक्तात्वं ततो हं त्वामुपस्थिता: । प्रथम चरण 3/10/31

6 अ0 रा0 2/2/52

7 अ0 रा0 2/2/45, 46

सूपर्णखा -

ग्रन्थ में राम के प्रति सूपर्णखा की आसक्ति वर्णित है। गौतमी नदी के किनारे वह राम के चरण चिन्हों को देखकर उनके सौन्दर्य से मोहित होकर कामासक्त हुई राम के आश्रम में जाती है। अध्यात्मरामायण में उसको कामातुरा एवं उच्छृंखल रमणी के रूप में वर्णन हुआ है।[2] वह राम से कहती है - कामार्ताहं न शक्नोमि त्युक्तं त्वां कमलेक्षणम् [3] पुनः लक्ष्मण से भी वह इसी प्रकार कहती है - भ्रातुराज्ञां पुरस्कृत्य संगच्छापो माचिरम्[4]। अन्त-अपमानिता सूपर्णखा ही रावण को युद्ध के लिये प्रेरित करती है।

अन्य पात्र -

अध्यात्मरामायण में मुनिवर्ग, तपस्वी, राम के परमभक्त एवं राममन्त्र के उपासक हैं। उनका रूप मुख्यतः राम-भक्त का है। सुतीक्ष्णादि श्रेष्ठ भक्त हैं।

वानर भालु गीध सभी कर्मनिष्ठ एवं पूर्णतः रामपरायण हैं। वे ही नहीं यहां तक कि विरोधी राक्षसवर्ग भी रामभक्त हैं। इनके प्रतिनिधि कुंभकर्ण कालनेमि आदि हैं।

समस्त चरित्र में ग्रन्थकार का भक्त -व्यक्तित्व सर्वत्र सफलरूपेण प्रतिबिम्बित है।

---

1 अ० रा० 3/5/2, 34

2 अ० रा० 3/5/11, 15

3 अ० रा० 3/5/11

4 अ० रा० 3/5/14

उपसंहार -

राम-कथा का रसमय आलम्बन लेकर अध्यात्म रामायण के कर्ता ने राम की ब्रह्मरूपता का, उनके सच्चिदानन्दघनरूप का अंकन किया है। भक्ति की प्रबल कन्या ने समस्त ग्रन्थ को आप्लावित कर दिया है। सभी चरित्र देवता, ऋषि, वनेचर, पक्षी, वानर, भालू, तथा राक्षस आदि भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी में आकण्ठ निमग्न हैं। सबको रामानन्दरसासिक्त करती हुई भक्ति गङ्गा ने ज्ञानपयोधि में अपने को पर्यवसित कर दिया है। अद्वैत-वेदान्त की भित्ति पर रामकथा को आंका गया है। सामान्यजनों में भक्ति के माध्यम से तथा कथा के द्वारा अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर शाङ्कर वेदान्त के प्रचार रूपी उद्देश्य को ग्रन्थकार ने विनम्रता एवं विदग्धता से पूरा किया है। कथा सूत्र में ही भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति और सदाचार सम्बन्धी दिव्य उपदेश, पिरोये हुये हैं। राम के मायाभानवलोकरंजनकारी अवतार की लीला भक्तों के लिये मनोहारिणी एवं परमप्रेमरूपा व अमृतस्वरूपा है। उनके लीलामय चरित्र में जीवनदर्शन ही नहीं जीवन से परे भी जो कुछ है, सभी प्रकाशमान हो उठता है। जिस प्रकार भक्तों की भक्ति की सिद्धि के लिये राम का अवतार हुआ उसी प्रकार राम भक्तों की सिध्यर्थ अध्यात्मरामायण की अवतारणा हुई। ग्रन्थ अपने आप में सफल, सशक्त एवं रामचरित की अलौकिक आभा से देदीप्यमान है।

सहायक ग्रन्थ सूची

कवीन्द्र वचन समुच्चय - वि0इण्डिका, इंग्लैण्ड, 1912

काव्यादर्श - ‡दण्डी‡ चौखम्बा

काव्यप्रकाश - डा0 सत्यव्रत सिंह, 1960

काव्यमीमांसा - बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1954

काव्यालङ्0कार - ‡भाहम‡ बिहार राष्ट्र भाषा, परिषद

काव्यालङ्0कार - ‡ रूद्रट‡ बम्बई, 1928, निर्णय सागर

ध्वन्यालोक - लोचन सहित - चौखम्बा 1940

महाभारत - गीताप्रेस, गोरखपुर, 2013 संवत्

मनुस्मृति - ठाकुरप्रसाद गुप्त, 2004 संवत्

रसगंगाधर - चन्द्रिका व्याख्या, चौखम्बा प्रथम संस्करण

रामकथा - कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद प्रयाग विश्व वि0 , 1962

रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना - श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव'

रामायण - ‡वाल्मीकि‡, गीताप्रेस : मूलभाग

वृत्तरत्नाकर - लक्ष्मी वेंकटेश्वर, देहली 1961

वाल्मीकि रामायण - गीताप्रेस, गोरखपुर, 2020 सं0

श्रीमद्भागवत - देवकीनन्द प्रकाशन, 1963 संवत्, वृन्दावन

साहित्यदर्पण - सत्यव्रत सिंह

काव्यालङ्0कारसूत्रवृत्ति - आत्माराम, देहली 1954

रसार्णवसुधाकर - त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सिरीज, 1916

सुभाषित रत्नकोष - हार्वर्ड ओरियन्टल सीरिज

सुवृत्ततिलक - क्षेमेन्द्र ‡चौखम्बा‡ 1933 हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला 26

अमरकोष - चौखम्बा 1960

अलङ्0कारसर्वस्व - ‡रूय्यक‡ निर्णयसागर, 1939

औचित्यविचारचर्चा - चौखम्बा 1933, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, 25

अध्यात्मरामायण - गीताप्रेस, गोरखपुर प्रकाशन

बंगला कृत्तिवासीय रामायण - [हिन्दी अनुवाद]

कंब रामायण - [हिन्दी अनुवाद]

अध्यात्मरामायण सेतु टीका सहित - हिम्मत वर्मा कृत, अध्यात्म रामायण
की सेतु नाम्नी टीका की हस्तलिपि [झा अनुसन्धानशाला]

ब्रह्माण्डपुराण

अध्यात्मरामायण का अंग्रेजी अनुवाद - लाला बैजनाथ

तुलसीदास और उनका युग - डा0 राजपति दीक्षित

तुलसीदर्शन - बलदेव मिश्र - साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1938 ई0

राम तापनीयोपनिषद् - हरिदास जानकीघाट, अयोध्या

रामार्चन पद्धति - स्वामीरामानन्द सं0 रामट हलदास, 1948 वि0

अगस्त्य संहिता - सं0 पं0 रामनारायणदास, अयोध्या, 1998

आल्वारचरितामृत - लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1989 ई0

भागवत - गीताप्रेस, 2018 वि0

वैष्णवधर्म - परशुराम चतुर्वेदी - भारती भण्डार, प्रयाग, 2008 वि0

राम-कथा - फादर कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद्, प्रयाग 1962

वैष्णवधर्म - परशुराम चतुर्वेदी, 1953

अष्टादशपुराण दर्पण - वेंकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, संवत् 1962

ब्रह्मसूत्र-भाष्य

हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा0 रामकुमार वर्मा

कबीर ग्रन्थावली - डा0 श्यामसुन्दर दास

कबीर - डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी

बीजक - सं0 प्रेमचन्द

वैष्णवमताब्जभास्कर - श्रीभगवद् रामानन्द स्वामि विरचित, प्रका0 श्री 108
श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज, जयपुर, संवत् 1985

भक्तमाल - नाभादास

नारदभक्तिसूत्र - ‡ना०भ० सू० ‡

गीता-भाष्य

शाङ्करकर-भाष्य

श्रीमद्भागवतगीता - गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रकाशन

भारतीय संस्कृति और साधना - गोपीनाथ कविराज - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

देवीभागवत

विष्णु-पुराण

महाभारत - गीताप्रेस, गोरखपुर प्रकाशन

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र ‡ शा०भ० सू०‡

प्रबोध सुधाकर

विवेकचूड़ामणि

वेदान्त कामधेनु ‡निम्बार्क‡

अद्वैत सिद्धि

भक्तिरसामृतसिन्धु

बृहन्नारदीय

नारदपंचरात्र

पंचदशी

शतपथ ब्राह्मण

निरूक्त ‡यास्क‡

पुराण विमर्श - बलदेव उपाध्याय 1965

महाभारत - पूना संस्करण

अभिषेक नाटक ‡भास‡

रघुवंश - कालिदास ‡मल्लिनाथ टीका ‡

मेघदूत-कालिदास

अष्टाध्यायी - पाणिनि

राजस्थान के शिलालेखों में रामकथा - रत्नचन्द्र अग्रवाल

देवगढा और इलोरा के रामायण सम्बन्धी दृश्य

मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ - भास्करनाथ मिश्र

प्रपन्नामृत

सहस्रगीति - शठकोपनामल्लवार

श्रीभाष्य

अथर्ववेद

श्वेताश्वतर उपनिषद् ‡श्वेता०उप०‡

केनोपनिषद ‡केन० उ०‡

छान्दोग्योपनिषद ‡छा०उ०‡

‡त्र‡× शिवपुराण ‡शि०पु०‡